संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० १९

आचार्य सकलकीर्ति विरचित

सिद्धान्तसार दीपक

अपर नाम

त्रिलोकसार दीपक

अनुवादकर्त्री

आर्यिका विशुद्धमति

सम्पादक

डॉ० चेतनप्रकाश पाटनी

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सिद्धान्तसार दीपक

कृतिकार	:	आचार्य सकलकीर्ति
अनुवादकर्त्री	:	आर्यिका विशुद्धमति
सम्पादक	:	डॉ॰ चेतनप्रकाश पाटनी
संस्करण	:	२८ जून, २०१७ (आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)
आवृत्ति	:	११००
वेबसाइट	:	www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म॰ प्र॰) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लाट नं. ४५, सेक्टर एफ, इन्डस्ट्रियल एरिया गोविन्दपुरा, भोपाल (म॰ प्र॰) ९४२५००५६२४

non copy right

अधिकार : किसी को भी प्रकाशित करने का अधिकार है, किन्तु स्वरूप, ग्रन्थ नाम, लेखक, सम्पादक एवं स्तर परिवर्तन न करें, हम आपके सहयोग के लिए तत्पर हैं, प्रकाशन के पूर्व हमसे लिखित अनुमति अवश्य प्राप्त करें। आप इसे डाउनलोड भी कर सकते हैं।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को शृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जो अनेक भाषाओं में अनुदित हुआ साथ ही अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी० लिट्०, पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की शृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

जैन भूगोल का विस्तार से वर्णन करने वाले तिलोयपण्णत्ति आदि अनेक ग्रन्थ दिगम्बर जैन परम्परा में उपलब्ध हैं, उसी परम्परा में सिद्धान्तसार दीपक आचार्य सकलकीर्ति द्वारा रचित यह ग्रन्थ उपलब्ध होता है, जिसका दूसरा नाम त्रिलोकसार दीपक है। पूर्व में यह ग्रन्थ श्री शिवसागर ग्रन्थमाला महावीरजी से प्रकाशित था। इस ग्रन्थ का अनुवाद करने वाली आर्यिका विशुद्धमती माताजी हैं एवं सम्पादन डॉ० चेतनप्रकाश पाटनी हैं। वर्तमान में ग्रन्थ की उपलब्धता सहज हो, इस भावना से संयम स्वर्ण महोत्सव में प्रकाशित किया जा रहा है। एतदर्थ पूर्व प्रकाशक संस्था, अनुवादक, सम्पादक का आभार व्यक्त करते हैं।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सम्पादन सामग्री

प्रतियों का परिचय

सिद्धान्तसार दीपक के प्रस्तुत संस्करण का सम्पादन विशेष अनुसन्धान पूर्वक निम्नलिखित प्रतियों के आधार पर किया गया है–

(१) मूल प्रति

यह प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर (राजस्थान) की है। इसमें १२''×५$\frac{१}{२}$'' के २४३ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में ९ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति में ३५ से ३८ अक्षर हैं। लाल और काली स्याही का उपयोग किया गया है। बीच-बीच में कहीं पर टिप्पण दिए गए हैं। पुस्तक का लेखन-काल विक्रम सम्वत् १७८९ आषाढ़ कृष्ण चतुर्दशी शनिवार है। प्रति की लिपि सुवाच्य है। पुस्तक दीमक का शिकार हुई है परन्तु प्रसन्नता की बात है कि दीमक का प्रकोप आजू-बाजू में ही हुआ है। लिपि सुरक्षित है।

प्राकृत संस्करण का सम्पादन इसी प्रति के आधार पर किया गया है।

(२) 'अ' प्रति का परिचय

इसमें ११''×४ $\frac{१}{४}$ '' के १९२ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में ११ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति में ३५ से ४० अक्षर हैं। काली स्याही का उपयोग किया गया है। प्रति का लेखन काल सम्वत् १५१९ श्रावण सुदी पंचमी गुरुवार है। अन्त में इसकी श्लोक संख्या ४५१६ दी हुई है। यह प्रति पड़ी मात्राओं से लिखी गई है। इसका पाठ उपलब्ध अन्य प्रतियों की तुलना में अधिक शुद्ध है।

परम पूज्य अजितसागर महाराजजी से प्राप्त होने के कारण इसका सांकेतिक नाम 'अ' है।

(३) 'स' प्रति का परिचय

यह प्रति श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भण्डार, बड़ा मन्दिर कैराना जिला मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) से स्व० श्री रतनचन्दजी मुख्तार के द्वारा प्राप्त हुई है। इसमें १०''×४ १/२'' के २७५ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में ९ से ११ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति में २८ से ३२ अक्षर हैं। लाल और काली स्याही का उपयोग किया गया है। बीच-बीच में कहीं पर हिन्दी भाषा में टिप्पण दिए गए हैं। प्रति का लेखन काल सम्वत् १८०४ चैत्र कृष्णा प्रतिपदा है।

स्व० श्री रतनचन्दजी मुख्तार ने यह प्रति सहारनपुर से भेजी थी, अतः इसका सांकेतिक नाम 'स' है।

(४) 'न' प्रति का परिचय

यह प्रति जयपुर से श्रीमान् डॉ० कस्तूरचन्दजी एवं अनूपलालजी के द्वारा प्राप्त हुई है। इसमें १०''×५ १/२'' के २२६ पत्र हैं प्रत्येक पत्र में ११ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति में ३३ से ३६ अक्षर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हैं। लाल और काली स्याही का उपयोग हुआ है। प्रति का लेखनकाल सम्वत् १७२९ माघ सुदी नवमी गुरुवार है। श्लोक संख्या ४५१६ दी हुई है। इस प्रति का सांकेतिक नाम 'न' है।

(५) 'ज' प्रति का परिचय

यह प्रति जयपुर से श्रीमान डॉ० कस्तूरचन्दजी एवं श्री अनूपलालजी के द्वारा प्राप्त हुई है। इसमें १२ ३ ६ के २३४ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में १० से १२ पंक्तियाँ हैं। प्रारम्भ के १३६ पत्रों में १०, १० पंक्तियाँ हैं, शेष में १२, १२ पंक्तियाँ हैं, प्रत्येक पंक्ति में ३० से ३५ अक्षर हैं। लाल और काली स्याही का उपयोग किया गया है। प्रति का लेखनकाल सम्वत् १८२३ आषाढ़ वदी एकम् है। श्लोक संख्या ४५१६ दी हुई है।

जयपुर से प्राप्त होने के कारण इसका सांकेतिक नाम 'ज' है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रस्तावना

सिद्धान्तसारदीपक अपर नाम त्रिलोकसार दीपक ग्रन्थ लोकानुयोग का वर्णन करने वाले संस्कृत ग्रन्थों में परवर्ती होने पर भी भाषा की सरलता और प्रमेय की बहुलता से श्रेष्ठतम ग्रन्थ माना जाता है। तिलोयपण्णत्ति तथा त्रिलोकसार आदि प्राकृत भाषा के ग्रन्थ गणित की दुरूहता के कारण जब जनसाधारण के बुद्धिगम्य नहीं रहे तब भट्टारक श्री सकलकीर्ति आचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना कर जनसाधारण के लिये लोक विषयक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इसमें गणित के दुरूह स्थलों को या तो छुआ नहीं गया है और छुआ गया है तो उन्हें सरलतम पद्धति से प्रस्तुत किया गया है।

सिद्धान्तसारदीपक के आधार का वर्णन करते हुए ग्रन्थान्त में लिखा है

एष ग्रन्थवरो जिनेन्द्र मुखजः सिद्धान्त सारादिक-
दीपोऽनेकविधस्त्रिलोकसकलप्रद्योतने दीपकः।
नानाशास्त्रपरान् विलोक्य रचितस्त्रैलोक्यसारादिकान्
भक्त्या श्रीसकलादिकीर्तिगणिना संधैर्गुणैर्नन्दतु॥१०२॥

यह सिद्धान्तसार दीपक नाम का ग्रन्थ अर्थ की अपेक्षा श्री जिनेन्द्र के मुख से समुद्भूत है, विविध प्रमेयों का वर्णन करने से अनेक प्रकार का है, तीन लोक की समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करने के लिए दीपक के समान है तथा त्रिलोकसार आदि अनेक उत्तम शास्त्रों का अवलोकन कर श्री सकलकीर्ति गणी के द्वारा भक्तिपूर्वक रचा गया है, अनेक गुण समूहों से यह ग्रन्थ समृद्धिमान् हो।

ग्रन्थ के आशीर्वचन में ग्रन्थकर्ता ने लिखा है–

सिद्धान्तसारार्थ निरूपणाच्छ्रीसिद्धान्तसारार्थभृतो हि सार्थः।
सिद्धान्तसारादिक दीपकोऽयं ग्रन्थो धरित्र्यां जयतात् स्वसङ्घैः॥१०६॥

जिनागम के सारभूत अर्थ का निरूपण करने से यह ग्रन्थ सिद्धान्त के सारभूत अर्थों से भरा हुआ है तथा 'सिद्धान्तसार दीपक' इस सार्थक नाम को धारण करने वाला है। अपने संघों के द्वारा यह ग्रन्थ पृथ्वी पर जयवन्त प्रवर्ते।

सिद्धान्तसार दीपक ग्रन्थ का परिमाण–

इस ग्रन्थ का परिमाण ग्रन्थकर्ता ने स्वयं ४५१६ अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण लिखा है। ग्रन्थ के १६ अधिकारों में ३१५८ पद्य हैं। इन पद्यों में कुछ पद्य शार्दूलविक्रीडित तथा इन्द्रवज्रा आदि विविध छन्दों में भी विरचित हैं। शेष प्रमाण की पूर्ति गद्यभाग से होती है। किसी वस्तु का सुविस्तृत और विशद वर्णन करने के लिये ग्रन्थकर्ता ने गद्यभाग को स्वीकृत किया है। उनकी इस शैली से जिज्ञासु जन सरलता से प्रतिपाद्य वस्तु को हृदयंगत कर लेते हैं।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय यद्यपि विषय सूची के द्वारा स्पष्ट है तथापि अधिकार क्रम से उसका

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

संक्षिप्त दिग्दर्शन करना आवश्यक लगता है। यह ग्रन्थ १६ अधिकारों में पूर्ण हुआ है–

प्रथम अधिकार में ९५ श्लोक हैं जिनमें मंगलाचरण के अतिरिक्त लोक के आकार आदि का वर्णन है। द्वितीयाधिकार में १२५ श्लोक हैं जिनमें अधोलोक के अन्तर्गत श्वभ्रलोक का वर्णन है। नरकों के प्रस्तार तथा उनमें रहने वाले नारकियों की अवगाहना और आयु का वर्णन है। तृतीयाधिकार में १२३ श्लोक हैं जिनमें नारकियों के दु:खों का लोम हर्षक वर्णन है। पढ़ते-पढ़ते पाठक का चित्त द्रवीभूत हो जाता है, शरीर रोमाञ्चित हो जाता है और नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। चतुर्थाधिकार में ११६ पद्य हैं जिनमें मध्यलोक के अन्तर्गत जम्बूद्वीप के छह कुलाचलों, छह सरोवरों तथा उनमें रहने वाली श्री आदि देव कुमारियों की विभूति का वर्णन है। पञ्चमाधिकार में १४७ श्लोक हैं जिनमें चौदह महानदियों, विजयार्धों, वृषभाचलों और नाभिगिरि पर्वतों का वर्णन है। षष्ठाधिकार में ११० श्लोक हैं जिनमें सुदर्शनमेरु, भद्रशाल आदि वन और जिन चैत्यालयों का वर्णन है। सप्तमाधिकार में २९१ श्लोक हैं जिनमें देवकुरु, उत्तरकुरु, कच्छादि देश, चक्रवर्ती की दिग्विजय और विभूति का वर्णन है, अष्टमाधिकार में १९१ श्लोक हैं जिसमें विदेह क्षेत्रस्थ समस्त देशों का वर्णन है। विदेह क्षेत्र में मोक्ष का द्वार सदा खुला रहता है, अत: उसकी प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकर्ता ने लिखा है–

यत्रोच्चै: पदसिद्धये सुकृतिनो जन्माश्रयन्तेऽमरा,
यस्मान्मुक्तिपदं प्रयान्ति तपसा केचिच्च नाकं व्रतै:।
तीर्थेशा गणनायकाश्च गणिन: श्री पाठका: साधव:,
सङ्घव्या विहरन्ति सोऽत्र जयतान्नित्यो विदेहो गुणै:॥१९०॥

जहाँ पर पुण्यशाली देव मोक्षपद की प्राप्ति के लिये जन्म लेते हैं, जहाँ से कितने ही भव्यजन तप के द्वारा मुक्ति को प्राप्त करते हैं, कितने ही व्रतों के द्वारा स्वर्ग जाते हैं और जहाँ तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु परमेष्ठी संघ सहित विहार करते हैं वह विदेह क्षेत्र इस जगत् में अपने गुणों के द्वारा निरन्तर जयवन्त रहे।

नवमाधिकार में ३६७ श्लोक हैं जिनमें अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी के छह कालों और उनमें होने वाले कुलकरों, तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, बलभद्रों, नारायणों, प्रतिनारायणों, रुद्रों और नारदों का वर्णन किया गया है।

दशमाधिकार में ४२५ श्लोक हैं जिनमें मध्यलोक का सुविस्तृत वर्णन है। एकादशाधिकार में २१९ श्लोक हैं जिनमें जीवों के कुल, काय, योनि, आयु संख्या तथा अल्पबहुत्व का वर्णन है। द्वादशाधिकार में १७३ श्लोक हैं जिनमें भवनवासी देवों के अवान्तर भेदों, इन्द्रों, निवास तथा आयु आदि का वर्णन है। त्रयोदशाधिकार में १२२ श्लोक हैं जिनमें व्यन्तर देवों के आठ भेदों उनके इन्द्रों तथा निवास आदि का वर्णन है। चतुर्दशाधिकार में १३५ श्लोक हैं जिनमें ज्योतिर्लोक का वर्णन है। उसके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्रमा, गृह, नक्षत्र आदि की संख्या तथा उनकी चाल आदि का निरूपण है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पञ्चदशाधिकार में ४०३ श्लोक हैं जिनमें वैमानिक देवों के अन्तर्गत सौधर्मादि स्वर्ग उनके पटल, इन्द्र, देवाङ्गना तथा वैभव आदि का वर्णन है। अन्तिम षोडशाधिकार में ११९ श्लोक हैं जिनमें पल्य आदि प्रमाणों का वर्णन है तथा ग्रन्थ के समारोप आदि की चर्चा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण ग्रन्थ उत्तमोत्तम सामग्री से परिपूर्ण है। नरक गति के दुःखों का वर्णन कर वहाँ से निकलने वाले सम्यग्दृष्टि जीवों के कैसे विचार होते हैं। इसका भी मार्मिक वर्णन है।

ग्रन्थ के रचयिता–

इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य सकलकीर्ति हैं। आचार्य सकलकीर्ति भट्टारक होते हुए भी नग्न मुद्रा में रहते थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थावली को देखते हुए लगता है कि इन्होंने अपना पूरा जीवन सरस्वती की आराधना में ही व्यतीत किया है। चारों अनुयोगों के आप ज्ञाता थे। संस्कृत भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार था। इन्हीं के द्वारा रचित और हमारे द्वारा संपादित तथा अनूदित पार्श्वनाथ चरित की प्रस्तावना में माननीय डॉ० कस्तूरचन्द्रजी कासलीवाल जयपुर ने इनका जो जीवन परिचय दिया है उसे हम उन्हीं के शब्दों में यहाँ साभार समुद्धृत करते हैं

जीवन परिचय–

भट्टारक सकलकीर्ति का जन्म संवत् १४४३ (सन् १३८६) में हुआ था। इनके पिता का नाम करमसिंह एवं माता का नाम शोभा था। ये अणहिलपुर पट्टण के रहने वाले थे। इनकी जाति हूमण थी[१] ''होनहार बिरवान के होत चीकने पात'' कहावत के अनुसार गर्भ धारण करने के पश्चात् इनकी माता ने एक सुन्दर स्वप्न देखा और उसका फल पूछने पर करमसिंह ने इस प्रकार कहा–

तजि वयण सुणीसार, कुमर तुम्ह होइसिइए।
निर्मल गंगानीर, चन्दन नन्दन तुम्ह तणुए॥९॥
जलनिधि गहिर गम्भीर खीरोपम सोहामणुए।
ते जिहि तरण प्रकाश जग उद्योतन जस किरणि॥१०॥

बालक का नाम पूनसिंह अथवा पूर्णसिंह रखा गया। एक पट्टावलि में इनका नाम पदर्थ भी दिया हुआ है। द्वितीया के चन्द्रमा के समान वह बालक दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। उसका वर्ण राजहंस के समान शुभ्र था तथा शरीर बत्तीस लक्षणों से युक्त था। पाँच वर्ष के होने पर पूर्णसिंह को पढ़ने बैठा दिया गया। बालक कुशाग्र-बुद्धि का था, इसलिये शीघ्र ही उसने सभी ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया। विद्यार्थी अवस्था में भी इनका अर्हद्-भक्ति की ओर अधिक ध्यान रहता था तथा वे क्षमा, सत्य, शौच

---

१. हरषी सुणीय सुवाणि पालइ अन्य ऊअरि सुपर। चोऊद त्रिताल प्रमाणि पूरइ दिन पुत्र जनमीउ।
न्याति मांहि मुहुतबंत हूँबड़ हरषि बखाणिइये। करमसिंह वितपन्न उदयवंत इम जाणीए ॥३॥
शामित रस अरधांगि, भूलि सरीस्य सुन्दरीय। सील स्यंगारित अगि पेखु प्रत्यक्ष पुरंदरीय ॥४॥ –सकलकीर्ति रास

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एवं ब्रह्मचर्य आदि धर्मों को जीवन में उतारने का प्रयास करते रहते थे। गार्हस्थ्य जीवन के प्रति विरक्ति देखकर माता-पिता ने उनका १४ वर्ष की अवस्था में ही विवाह कर दिया लेकिन विवाह बन्धन में बँधने के पश्चात् भी उनका मन संसार में नहीं लगा और वे उदासीन रहने लगे। पुत्र की गतिविधियाँ देखकर माता-पिता ने उन्हें बहुत समझाया लेकिन उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। पुत्र एवं माता-पिता के मध्य बहुत दिनों तक वाद-विवाद चलता रहा। पूर्णसिंह के समझ में कुछ नहीं आता और वे बार बार साधु-जीवन धारण करने की उनसे स्वीकृति माँगते रहते।

अन्त में पुत्र की विजय हुई और पूर्णसिंह ने २६ वें वर्ष में अपार सम्पत्ति को तिलांजलि देकर साधु-जीवन अपना लिया। वे आत्मकल्याण के साथ-साथ जगत्कल्याण की ओर चल पड़े। ''भट्टारक सकलकीर्ति नु रास'' के अनुसार उनकी इस समय केवल १८ वर्ष की आयु थी। उस समय भट्टारक पद्मनंदि का मुख्य केन्द्र नेणवां (उदयपुर) था और वे आगम ग्रन्थों के पारगामी विद्वान् माने जाते थे। इसलिये ये भी नेणवां चले गये और उनके शिष्य बनकर अध्ययन करने लगे। यह उनके साधु जीवन की प्रथम पदयात्रा थी। वहाँ ये आठ वर्ष रहे और प्राकृत एवं संस्कृत ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया। उनके मर्म को समझा और भविष्य में सत्साहित्य का प्रचार प्रसार ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। ३४ वें वर्ष में उन्होंने आचार्य पदवी ग्रहण की और नाम सकलकीर्ति रखा गया।

विहार–

सकलकीर्ति का वास्तविक साधु-जीवन सम्वत् १४७७ से प्रारम्भ होकर सम्वत् १४९९ तक रहा। इन २२ वर्षों में इन्होंने मुख्य रूप से राजस्थान के उदयपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि राज्यों एवं गुजरात प्रान्त के राजस्थान के समीपस्थ प्रदेशों में खूब विहार किया।

उस समय जन-साधारण के जीवन में धर्म के प्रति काफी शिथिलता आ गई थी। साधु-सन्तों के विहार का अभाव था। जन-साधारण की न तो स्वाध्याय के प्रति रुचि रही थी और न उन्हें सरल भाषा में साहित्य ही उपलब्ध होता था, इसलिये सर्वप्रथम सकलकीर्ति ने उन प्रदेशों में विहार किया और सारे समाज को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। इसी उद्देश्य से उन्होंने कितने ही यात्रा संघों का नेतृत्व किया। इसके पश्चात् उन्होंने अन्य तीर्थों की वन्दना की जिससे देश में धार्मिक चेतना फिर से जागृत होने लगी।

प्रतिष्ठाओं का आयोजन–

तीर्थ-यात्राओं के पश्चात् सकलकीर्ति ने नवीन मन्दिरों का निर्माण एवं प्रतिष्ठाएँ करवाने का कार्य हाथ में लिया। उन्होंने अपने जीवन में १४ बिम्ब-प्रतिष्ठाओं का संचालन किया। इस कार्य में योग देने वालों में संघपति नरपाल एवं उनकी पत्नी बहुरानी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। गलियाकोट में संघपति मूलराज ने इन्हीं के उपदेश से 'चतुर्विंशति-जिनबिम्ब' की स्थापना की थी। नागदा जाति के श्रावक संघपति ठाकुरसिंह ने भी कितनी ही बिम्ब प्रतिष्ठाओं में योग दिया। भट्टारक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सकलकीर्ति द्वारा सम्वत् १४९०, १४९२, १४९७ आदि सम्वतों में प्रतिष्ठापित मूर्तियाँ उदयपुर, डूँगरपुर एवं सागवाड़ा आदि स्थानों के जैन मन्दिरों में मिलती हैं। प्रतिष्ठा महोत्सवों के इन आयोजनों से तत्कालीन समाज में जो जनजागृति उत्पन्न हुई थी, उसने देश में जैनधर्म एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार में अपना पूरा योग दिया।

व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य–

भट्टारक सकलकीर्ति असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे। इन्होंने जिन-जिन परम्पराओं की नींव रखी। उनका बाद में खूब विकास हुआ। वे गम्भीर-अध्ययन-युक्त संत थे। प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं पर इनका पूर्ण अधिकार था। ब्रह्म जिनदास एवं भ० भुवनकीर्ति जैसे विद्वानों का इनका शिष्य होना ही इनके प्रबल पांडित्य का सूचक है। इनकी वाणी में जादू था इसलिये जहाँ भी इनका विहार हो जाता था, वहीं इनके सैकड़ों भक्त बन जाते थे। वे स्वयं तो योग्यतम विद्वान थे ही किन्तु इन्होंने अपने शिष्यों को भी अपने ही समान विद्वान् बनाया। ब्रह्म जिनदास ने अपने ग्रन्थों में भट्टारक सकलकीर्ति को महाकवि, निर्ग्रन्थराज शुद्ध चरित्रधारी एवं तपोनिधि आदि उपाधियों से सम्बोधित किया है।[१]

भट्टारक सकलभूषण ने अपनी उपदेश-रत्नमाला की प्रशस्ति में कहा है कि सकलकीर्ति जन-जन का चित्त स्वतः ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। ये पुण्यमूर्ति स्वरूप थे तथा अनेक पुराण ग्रन्थों के रचयिता थे।[२]

इसी तरह भट्टारक शुभचन्द्र ने सकलकीर्ति को पुराण एवं काव्यों का प्रसिद्ध प्रणेता कहा है। इनके अतिरिक्त इनके बाद होने वाले प्रायः सभी भट्टारकों ने सकलकीर्ति के व्यक्तित्व एवं विद्वता की भारी प्रशंसा की है। ये भट्टारक थे किन्तु मुनि नाम से भी अपने आपको सम्बोधित करते थे। धन्यकुमार चरित्र ग्रन्थ की पुष्पिका में इन्होंने अपने आपका मुनि सकलकीर्ति नाम से परिचय दिया है।

ये स्वयं नग्न अवस्था में रहते थे और इसलिये ये निर्ग्रन्थकार अथवा निर्ग्रन्थराज के नाम से भी अपने शिष्यों द्वारा संबोधित किये गये हैं। इन्होंने बागड़ प्रदेश में जहाँ भट्टारकों का कोई प्रभाव नहीं

---

१. ततोऽभक्तस्य जगत्प्रसिद्धः, पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्तिः।
महाकविः शुद्धचरित्रधारी, निर्ग्रन्थराजो जगति प्रतापी॥
जम्बूस्वामी चरित्र

२. तत्पट्ट पंकेजविकासमास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी।
महाकवित्वादिकला-प्रवीणः तपोनिधिः श्री सकलादिकीर्ति॥
हरिवंश-पुराण।

२. तत्पट्टधारी जनचित्तहारी पुराणमुख्योत्तम-शास्त्रकारी।
भट्टारकः श्रीसकलादिकीर्तिः प्रसिद्धनामाजनि पुण्यमूर्तिः॥
उपदेशरत्नमाला-सकलभूषण

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

था। सम्वत् १४९२ में गलियाकोट में एक भट्टारक गादी की स्थापना की और अपने आपको सरस्वती-गच्छ एवं बलात्कारगण की परम्परा का भट्टारक घोषित किया। ये उत्कृष्ट तपस्वी थे तथा अपने जीवन में इन्होंने कितने ही व्रतों का पालन किया था।

सकलकीर्ति ने जनता को जो कुछ चरित्र सम्बन्धी उपदेश दिया था, पहले उसे अपने जीवन में उतारा। २२ वर्ष के एक छोटे समय में ३५ से अधिक ग्रन्थों की रचना, विविध ग्रामों एवं नगरों में विहार, भारत के राजस्थान, उत्तरप्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि प्रदेशों के तीर्थों की पद यात्रा एवं विविध व्रतों का पालन केवल सकलकीर्ति जैसे महा विद्वान् एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले साधु से ही सम्पन्न हो सकते थे। इस प्रकार ये श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र से विभूषित उत्कृष्ट एवं आकर्षक व्यक्तित्व वाले साधु थे।

मृत्यु–

एक पट्टावलि के अनुसार भट्टारक सकलकीर्ति ५६ वर्ष तक जीवित रहे। सम्वत् १४९९ में महसाना नगर में उनका स्वर्गवास हुआ। पं० परमानन्दजी शास्त्री ने भी प्रशस्ति संग्रह में इनकी मृत्यु सम्वत् १४९९ में महसाना (गुजरात) में होना लिखा है। डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन एवं डॉ० प्रेमसागर भी इसी सम्वत् को सही मानते हैं लेकिन डॉ० ज्योतिप्रसाद इनका पूरा जीवन ८१ वर्ष स्वीकार करते हैं। जो अब लेखक को प्राप्त विभिन्न पट्टावलियों के अनुसार वह सही नहीं जान पड़ता।

सकलकीर्ति रास में उनकी विस्तृत जीवन गाथा है, उसमें स्पष्ट रूप से सम्वत् १४४३ को जन्म एवं सम्वत् १४९९ में स्वर्गवास होने को स्वीकृत किया है।

तत्कालीन सामाजिक अवस्था–

भट्टारक सकलकीर्ति के समय देश की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। समाज में सामाजिक एवं धार्मिक चेतना का अभाव था। शिक्षा की बहुत कमी थी। साधुओं का अभाव था। भट्टारकों के नग्न रहने की प्रथा थी। स्वयं भट्टारक सकलकीर्ति भी नग्न रहते थे। लोगों में धार्मिक श्रद्धा बहुत थी। तीर्थ-यात्रा बड़े-बड़े संघों में होती थी। उनका नेतृत्व करने वाले साधु होते थे। तीर्थ यात्राएँ बहुत लम्बी होती थीं तथा वहाँ से सकुशल लौटने पर बड़े-बड़े उत्सव एवं समारोह किये जाते थे। भट्टारकों ने पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाओं एवं अन्य धार्मिक समारोह करने की अच्छी प्रथा डाल दी थी। इनके संघ में मुनि, आर्यिका, श्रावक आदि सभी होते थे। साधुओं में ज्ञान-प्राप्ति की काफी अभिलाषा होती थी तथा संघ के सभी साधुओं को पढ़ाया जाता था। ग्रन्थ रचना करने का भी खूब प्रचार हो गया था। भट्टारक गण भी खूब ग्रन्थ रचना करते थे। वे प्रायः अपने ग्रन्थ श्रावकों के आग्रह से निबद्ध करते रहते थे। व्रत उपवास की समाप्ति पर श्रावकों द्वारा इन ग्रन्थों की प्रतियाँ विभिन्न ग्रन्थ-भण्डारों को भेंट स्वरूप दे दी जाती थीं। भट्टारकों के साथ हस्तलिखित ग्रन्थों के बस्ते के बस्ते होते थे। समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी और न उनके पढ़ने लिखने का साधन था। व्रतोद्यापन पर उनके आग्रह से

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ग्रन्थों की स्वाध्यायार्थ प्रतिलिपि कराई जाती थी और उन्हें साधु सन्तों को पढ़ने के लिये दे दिया जाता था।

साहित्य सेवा–

साहित्य सेवा में सकलकीर्ति का जबरदस्त योग रहा। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होने लगता है जैसे उन्होंने अपने साधु जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग किया हो। संस्कृत, प्राकृत एवं राजस्थानी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। वे सहज रूप में ही काव्य रचना करते थे, इसलिये उनके मुख से जो भी वाक्य निकलता था वही काव्यरूप में परिवर्तित हो जाता था। साहित्य रचना की परम्परा सकलकीर्ति ने ऐसी डाली कि राजस्थान के बागड़ एवं गुजरात प्रदेश में होने वाले अनेक साधु-सन्तों ने साहित्य की खूब सेवा की तथा स्वाध्याय के प्रति जन-साधारण की भावना को जागृत किया। इन्होंने अपने अन्तिम २२ वर्ष के जीवन में २७ से अधिक संस्कृत रचनाएँ एवं ८ राजस्थानी रचनाएँ निबद्ध की थीं।

राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों की जो अभी खोज हुई है उनमें हमें अभी तक निम्न रचनाएँ उपलब्ध हो सकी हैं।

संस्कृत की रचनाएँ–

१. मूलाचार प्रदीप २. प्रश्नोत्तरोपासकाचार ३. आदिपुराण ४. उत्तरपुराण ५. शांतिनाथ चरित्र ६. वर्द्धमान चरित्र ७. मल्लिनाथ चरित्र ८. यशोधर चरित्र ९. धन्यकुमार चरित्र १०. सुकुमाल चरित्र ११. सुदर्शन चरित्र १२. सद्भाषितावलि १३. पार्श्वनाथ चरित्र १४. व्रतकथा कोष १५. नेमिजिन चरित्र १६. कर्मविपाक १७. तत्त्वार्थसार-दीपक १८. सिद्धान्तसार-दीपक १९. आगमसार २०. परमात्मराज-स्तोत्र २१. सारचतुर्विंशतिका २२ श्रीपाल चरित्र २३. जम्बूस्वामी चरित्र २४. द्वादशानुप्रेक्षा।

पूजा ग्रन्थ–

२५. अष्टाह्निका पूजा २६. सोलहकारण पूजा २७. गणधरवलय पूजा।

राजस्थानी कृतियाँ–

१. आराधना प्रतिबोधसार २. नेमीश्वर गीत ३. मुक्तावलि गीत ४. णमोकार फल गीत ५. सोलहकारण रास ६. सारसिखामणि रास ७. शांतिनाथ फागु।

उक्त कृतियों के अतिरिक्त अभी और भी रचनाएँ हो सकती हैं जिनकी अभी खोज होना बाकी है। भट्टारक सकलकीर्ति की संस्कृत भाषा के समान राजस्थानी भाषा में भी कोई बड़ी रचना मिलनी चाहिए, क्योंकि इनके प्रमुख शिष्य ब्र० जिनदास ने इन्हीं की प्रेरणा एवं उपदेश से राजस्थानी भाषा में ५० से भी अधिक रचनाएँ निबद्ध की हैं।

उक्त संस्कृत कृतियों के अतिरिक्त पंचपरमेष्ठी पूजा, द्वादशानुप्रेक्षा एवं सारचतुर्विंशतिका आदि और भी कृतियाँ हैं। जो राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध होती हैं। ये सभी कृतियाँ जैन समाज

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

में लोकप्रिय रही हैं तथा उनका पठन-पाठन भी खूब रहा है।

भट्टारक सकलकीर्ति की उक्त संस्कृत रचनाओं में कवि का पाण्डित्य स्पष्ट रूप से झलकता है। उनके काव्यों में उसी तरह की शैली, अलंकार, रस एवं छन्दों की परियोजना उपलब्ध होती है जो अन्य भारतीय संस्कृत काव्यों में मिलती है। उनके चरित काव्यों को पढ़ने से अच्छा रसास्वादन मिलता है। चरित काव्यों के नायक त्रेसठ शलाका के लोकोत्तर महापुरुष हैं, जो अतिशय पुण्यवान् हैं, जिनका सम्पूर्ण जीवन अत्यधिक पावन है। सभी काव्य शांतरस पर्यवसानी हैं।

काव्य ज्ञान के समान भट्टारक सकलकीर्ति जैन सिद्धान्त के महान् वेत्ता थे। उनका मूलाचार प्रदीप, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, सिद्धान्तसार-दीपक एवं तत्त्वार्थसार-दीपक तथा कर्मविपाक जैसी रचनाएँ उनके अगाध ज्ञान के परिचायक हैं। इसमें जैन सिद्धान्त, आचार-शास्त्र एवं तत्त्वचर्चा के उन गूढ़ रहस्यों का निचोड़ है, जो एक महान् विद्वान् अपनी रचनाओं में भर सकता है।

इसी तरह सद्भाषितावलि उनके सर्वांग ज्ञान का प्रतीक है, जिसमें सकलकीर्ति ने जगत् के प्राणियों को सुन्दर शिक्षाएँ भी प्रदान की हैं, जिससे वे अपना आत्म-कल्याण करने की ओर अग्रसर हो सकें। वास्तव में वे सभी विषयों के पारगामी विद्वान् थे। ऐसे सन्त विद्वान् को पाकर कौन देश गौरवान्वित नहीं होगा?

राजस्थानी रचनाएँ—

सकलकीर्ति ने हिन्दी में बहुत ही कम रचना निबद्ध की है। इसका प्रमुख कारण संभवत: इनका संस्कृत भाषा की ओर अत्यधिक प्रेम था। इसके अतिरिक्त जो भी इनकी हिन्दी रचनाएँ मिली हैं वे सभी लघु रचनाएँ हैं, जो केवल अध्ययन की दृष्टि से ही उल्लेखनीय कही जा सकती हैं। सकलकीर्ति का अधिकांश जीवन राजस्थान में व्यतीत हुआ था। इनकी रचनाओं में राजस्थानी भाषा की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति ने संस्कृत भाषा में ३० ग्रन्थों की रचना करके माँ भारती की अपूर्व सेवा की और देश में संस्कृत के पठन-पाठन का जबरदस्त प्रचार किया।

आचार्य सकलकीर्ति विरचित संस्कृत ग्रन्थावली में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अब भी अप्रकाशित हैं और मूलाचार प्रदीप जैसे कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित होने पर भी इस समय अनुपलब्ध हो रहे हैं। अच्छा हो शांतिवीर ग्रन्थमाला महावीरजी या अन्य कोई प्रकाशन संस्था इन सब ग्रन्थों को सुसंपादित कराकर हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित कराने की योजना बनाए। भाषा की सरलता और प्रतिपाद्य विषयों की उपयोगिता को देखते हुए आशा है कि इनके ग्रन्थ लोकप्रिय सिद्ध होंगे।

सिद्धान्तसार-दीपक का सटीक संस्करण—

त्रिलोकसार की टीका करने के बाद पूज्य आर्यिका श्री १०५ विशुद्धमतिजी ने मुझसे पूछा कि अब मुझे बतलाइए किस ग्रन्थ पर काम करूँ? क्योंकि टीका करने में स्वाध्याय और ध्यान दोनों की

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सिद्धि होती है। विचार-विमर्श के बाद स्थिर हुआ कि 'सिद्धान्तसार दीपक' की टीका की जाये। इसका विषय त्रिलोकसार से मिलता जुलता है तथा जनसाधारण के स्वाध्याय के योग्य है। फलतः हस्तलिखित प्रतियाँ एकत्र कर उनके पाठभेद लेना शुरू किया गया। सवाई माधोपुर के चातुर्मास में इसके पाठ भेद लेने का कार्य सम्पन्न हुआ था उसमें श्री पं० जगन्मोहनलालजी और मैंने भी सहयोग किया था। टीका के लिये जो मूल प्रति चुनी गई थी वह १७८९ विक्रम सम्वत् की लिखी हुई थी। जैसा कि उसकी अन्तिम प्रशस्ति से स्पष्ट है।

ग्रन्थ पर्यायन्त्र समेत ४५१६, सम्वत् १७८९ वर्षे आषाढ मासे कृष्णपक्षे तिथौ चतुर्दशी शनिवासरे, लिखितं मानमहात्मा चाटसु मध्ये श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकजी श्री जगत्कीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री...द्रकीर्तिजी आचार्यजी श्री कनककीर्तिजी तत् शिष्य पं. रायमल तत् शिष्य पं०..दजी तत् शिष्य पं० वृन्दावनेन सुपठनार्थं लिखापितम्। लिखितं...ध्मे।

माताजी की अभीक्ष्ण ज्ञानाराधना और उसके फलस्वरूप प्रकट हुए क्षयोपशम के विषय में क्या लिखूँ? अल्पवय में प्राप्त वैधव्य का अपार दुःख सहन करते हुए भी इन्होंने जो वैदुष्य प्राप्त किया है वह साधारण महिला के साहस की बात नहीं है। वैधव्य प्राप्त होते ही तत्काल जो साधन जुटाये जा सके उनका इन्होंने पूर्ण उपयोग किया। ये सागर के महिलाश्रम में पढ़ती थीं, मैं धर्मशास्त्र और संस्कृत का अध्ययन कराने प्रातःकाल ५ बजे जाता था। एक दिन गृह प्रबन्धिका ने मुझसे कहा कि रात में निश्चित समय के बाद आश्रम की ओर से मिलने वाली लाईट की सुविधा जब बन्द हो जाती है तब ये खाने के घृत का दीपक जलाकर चुपचाप पढ़ती रहती हैं और भोजन घृत हीन कर लेती हैं। गृह प्रबन्धिका के मुख से इनके अध्ययनशीलता की प्रशंसा सुन जहाँ प्रसन्नता हुई वहाँ अपार वेदना भी हुई। प्रस्तावना की यह पंक्तियाँ लिखते समय वह प्रकरण स्मृति में आ गया और नेत्र सजल हो गये। लगा कि जिसकी इतनी अभिरुचि है अध्ययन में, वह अवश्य ही होनहार है। आश्रम में रहकर इन्होंने शास्त्री कक्षा तक पाठ्यक्रम पूरा किया और हिन्दी साहित्य सम्मेलन से साहित्य रत्न की उपाधि प्राप्त की। जबलपुर से प्रशिक्षित (ट्रेण्ड) होकर महिलाश्रम में अध्यापन शुरू किया तथा साधारण अध्यापिका के बाद प्रधानाध्यापिका और तदनन्तर कार्य छोड़कर अधिष्ठात्री पद को प्राप्त किया।

संभवतः सन् १९६३ में सागर में आचार्य श्री धर्मसागरजी, सन्मतिसागरजी और पदमसागरजी का चातुर्मास हुआ। श्री सन्मतिसागरजी के सम्बोधन से इनका हृदय विरक्ति की ओर आकृष्ट हुआ। फलस्वरूप इन्होंने सप्तम प्रतिमा धारण की और आगे चलकर पपौरा के चातुर्मास में आचार्य शिवसागरजी के पादमूल में आर्यिका दीक्षा ली। संघस्थ आचार्यकल्प श्रुतसागरजी ने इनका करणानुयोग में प्रवेश कराया और श्री अजितसागरजी महाराज ने संस्कृत भाषा का परिज्ञान कराया। निर्द्वन्द्व होकर इन्होंने धवलसिद्धान्त के सब भागों का स्वाध्याय कर जब मुझे कोटा के चातुर्मास में स्वनिर्मित अनेक संदृष्टियाँ और चार्ट दिखलाये तब मुझे इनके ज्ञान विकास पर बड़ा आश्चर्य हुआ। यही नहीं

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

त्रिलोकसार की टीका लिखकर प्रस्तावना लेख के लिये जब मेरे पास मुद्रित फार्म भेजे तब मुझे लगा कि यह इनके तपश्चरण का ही प्रभाव है कि इनके ज्ञान में आश्चर्यजनक वृद्धि हो रही है। वस्तुतः परमार्थ भी यही है कि द्वादशांग का जितना विस्तार हम सुनते हैं वह सब गुरु मुख से नहीं पढ़ा जा सकता। तपश्चर्या के प्रभाव से स्वयं ही ज्ञानावरण का ऐसा विशाल क्षयोपशम हो जाता है कि जिससे अंग-पूर्व का भी विस्तृत ज्ञान अपने आप प्रकट हो जाता है। श्रुतकेवली बनने के लिये निर्ग्रन्थ मुद्रा के साथ विशिष्ट तपश्चरण का होना भी आवश्यक रहता है।

त्रिलोकसारादि ग्रन्थों का गणित विधिवत् सम्पन्न कराने में इनके सहायक रहे श्री ब्र० रतनचन्द्रजी मुख्तार सहारनपुर। ये पूर्वभव के संस्कारी जीव थे जिन्होंने किसी संस्था या व्यक्ति के पास संस्कृत प्राकृत तथा हिन्दी का विशिष्ट अध्ययन किये बिना ही स्वकीय पुरुषार्थ से करणानुयोग में प्रशंसनीय प्रवेश प्राप्त किया। आचार्य शिवसागरजी तथा आचार्यकल्प श्रुतसागरजी महाराज के कितने ही चातुर्मासों में मुझे इनके साथ जाने का अवसर मिला है उस समय इनकी ज्ञानाराधना और विषय को स्पष्ट करने की रीति देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी। अब वे नहीं हैं उनकी स्मृति ही शेष है।

सिद्धान्तसार दीपक का सम्पादन–

त्रिलोकसार की तरह सिद्धान्तसार दीपक का सम्पादन भी डॉ० श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी प्राध्यापक, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर ने किया है। ये दिवंगत मुनि श्री १०८ समतासागरजी के सुपुत्र हैं। समता और भद्रता इन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली हुई है। संस्कृत के एम० ए० होने के साथ-साथ ये जैनागम के भी पारगामी हैं, कटी छटी और विविध टिप्पणों से अलंकृत पाण्डुलिपि को आप अपनी सम्पादन कला से व्यवस्थित करने में सिद्धहस्त हैं। कार्य के बोझ से कभी कतराते नहीं हैं किन्तु समता भाव से उसे वहन करते हैं। सिद्धान्तसार दीपक के संपादन में इन्होंने पर्याप्त श्रम किया है। विषय सूची आदि कष्टसाध्य परिशिष्टों से इन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ को सुशोभित किया है। शरीर के दुबले-पतले होने पर भी आप विशिष्ट क्षयोपशम के धनी हैं।

जैन भूगोल–

बारहवें दृष्टिवाद अंग के पाँच भेदों में पूर्वगत भेदों के अन्तर्गत एक लोकबिन्दुसार पूर्व है। उस पूर्व में तीन लोक सम्बन्धी विस्तृत वर्णन है। वह इस समय उपलब्ध नहीं है किन्तु उसके आधार पर तीन लोक का वर्णन करने वाले अनेक शास्त्र-तिलोयपण्णति, जंबूदीवपण्णति, त्रिलोकसार, लोकविभाग, हरिवंशपुराण तथा सिद्धान्तसार दीपक आदि दिगम्बर ग्रन्थ उपलब्ध हैं। आज का प्रत्यक्षवादी मानव, इन ग्रन्थों में प्रतिपादित जैन भूगोल को सुनकर झट से बोल उठता है कि कहाँ हैं ये स्थान? उपलब्ध दुनिया में जहाँ तक आज के मानव की गति है वहाँ तक इनका सद्भाव न देख वह इन्हें कल्पित मानने लगता है। मनुष्य अपनी हीन शक्ति का विचार किये बिना ही वीतराग सर्वज्ञदेव की वाणी को अपने ग्रन्थों के द्वारा प्रतिपादित करने वाले निःस्पृह आचार्यों के वचनों को संशय की दृष्टि से देखने लगता

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है। मध्यलोक एक राजू प्रमाण क्षेत्र में विस्तृत है, जिसमें असंख्यात द्वीप समुद्रों का समावेश है। आज का मानव जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र के सम्पूर्ण आर्यखण्ड में भी नहीं जा सका है। फिर संपूर्ण भरतक्षेत्र और जम्बूद्वीप की तो बात ही क्या है? लोग पूछते हैं कि सुमेरु पर्वत कहाँ है? मैं कह देता हूँ कि जहाँ सूर्योदय और सूर्यास्त होता है उस निषध पर्वत के आगे विदेह क्षेत्र में सुमेरु पर्वत है। जब सूर्य निषध पर्वत के पूर्व कोण और पश्चिम कोण पर प्रातः और सायंकाल पहुँचता है तब उसकी किरणें संतप्त सुवर्णाभ निषध पर्वत पर पड़ने से प्रातः पूर्व में और सायं पश्चिम में लालिमा प्रकट होती है, ज्यों ही सूर्य निषध पर्वत से दूर हो जाता है त्यों ही लालिमा समाप्त हो जाती है। अतः इस निषध पर्वत का अस्तित्व सिद्ध है उसके आगे जाने पर सुमेरु पर्वत के दर्शन हो सकते हैं। जिस मनुष्य की शक्ति कूपमण्डूक के समान अत्यन्त सीमित है वह अपनी गति से बाहर पाये जाने वाले पदार्थों के अस्तित्व के प्रति संशय का भाव रखे, यह आश्चर्य की बात है। मेरा तो विश्वास है कि जिस प्रकार जैन शास्त्र में प्रतिपादित तत्त्व आज विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं उसी प्रकार जैन भूगोल के सिद्धान्त भी विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरेंगे। असमञ्जसता वहाँ हो जाती है जहाँ जिन्हें जैन भूगोल का ज्ञान है उन्हें विज्ञान सिद्ध आधुनिक भूगोल का ज्ञान नहीं है और जिन्हें आधुनिक भूगोल का ज्ञान है उन्हें जैन भूगोल का ज्ञान नहीं है। काश, कोई दोनों भूगोलों का ज्ञाता हो और वह पक्षपात रहित होकर अनुसन्धान करे तो यथार्थता का निर्णय हो सकता है। फिर एक बात यह भी है कि सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थों का निर्णय आगम प्रमाण से ही हो सकता है, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से नहीं। जहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण की गति कुण्ठित हो जाती है वहाँ आगम प्रमाण का ही आश्रय लेना पड़ता है। आगम की प्रामाणिकता वक्ता की प्रामाणिकता पर निर्भर रहती है। जैन भूगोल के उपदेष्टा आचार्य विशिष्ट ज्ञानी तथा माया ममता से रहित थे, अतः उनकी प्रामाणिकता में संशय का अवकाश नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में पड़कर आगम की श्रद्धा से विचलित नहीं होना चाहिए।

सिद्धान्तसार दीपक का प्रकाशन–

मैंने देखा है कि आचार्यकल्प श्रुतसागरजी महाराज के हृदय में जिनवाणी प्रकाशन के प्रति अनुपम अभिरुचि है। उन्हीं की प्रेरणा से सम्बोधन पाकर भक्तजन जिनवाणी के प्रकाशन के लिये विशाल अर्थ राशि प्रदान करते हैं। उन्हीं का सम्बोधन पाकर शांतिवीर नगर महावीरजी में शिवसागर ग्रन्थमाला से पं० लालारामजी कृत हिन्दी टीका सहित आदिपुराण, पं० गजाधरलालजी कृत टीका सहित हरिवंशपुराण, पं० दौलतरामजी कृत टीका वाला पद्मपुराण और श्री १०५ आर्यिका आदिमतिजी द्वारा रचित विस्तृत हिन्दी टीका सहित कर्मकाण्ड का प्रकाशन हुआ है। सम्प्रति, सिद्धान्तसार दीपक का प्रकाशन भी उन्हीं का सम्बोधन प्राप्त कर श्रीमान् पूनमचन्दजी गंगवाल, श्रीमान् रामचन्द्रजी कोठारी जयपुर, श्रीमान् माणिकचन्दजी कोटा आदि दाताओं के द्वारा प्रदत्त अर्थ राशि से हो रहा है। श्रुतसागरजी

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

महाराज का कहना है कि समाज में सब प्रकार के श्रोता हैं, जो जिस प्रकार का श्रोता है उसके लिये उस प्रकार का ग्रन्थ स्वाध्याय के लिये अल्पमूल्य में मिलना चाहिए। त्रिलोकसार, सिद्धान्तसार दीपक और कर्मकाण्ड आदि गहन ग्रन्थ विशिष्ट श्रोताओं के लिये हैं तो आदिपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण तथा धन्यकुमारचरित आदि कथा ग्रन्थ साधारण श्रोताओं के लिये हैं।

आर्यिका विशुद्धमतिजी के ऊपर उनका उतना ही स्नेह मैंने देखा है जितना कि एक पिता का पुत्री के ऊपर रहता है। जब वे उनके साथ संघ में रहती थीं तब पितृ स्नेह का प्रकट रूप दिखाई देता ही था, पर अब कारणवश अलग रहने पर भी उनका स्नेह ज्यों का त्यों बना हुआ है। वे विशुद्धमतिजी के द्वारा लिखित शास्त्रों को प्रकाशित कराकर उन्हें बराबर प्रोत्साहित करते रहते हैं। जब भी इनके पास जाता हूँ तब बातचीत के प्रसंग में वे विशुद्धमतिजी की साहित्यिक आराधना की प्रशंसा करते रहते हैं।

ब्र० लाडमलजी बाबाजी अधिकांश आचार्यकल्प श्रुतसागरजी के साथ रहते हैं वे ग्रन्थ प्रकाशन आदि में पूर्ण सहयोग किया करते हैं। तात्पर्य यह है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जिनका जिस प्रकार का सहयोग उपलब्ध हुआ है वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। उन सबके ज्ञानावरण का क्षयोपशम वृद्धि को प्राप्त हो यह कामना है।

सिद्धान्तसार दीपक के मुद्रण का कार्य कमल प्रिन्टर्स मदनगंज (किशनगढ़) में सम्पन्न हुआ है। उसके संचालक श्रीमान् पाँचूलालजी ने छपाई सफाई का ध्यान रखते हुए इसे शुद्धता पूर्वक छापा है। चार्ट और चित्रों को यथास्थान लगाया है इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

माताजी का मुझ पर स्नेह है अतः वे अपनी छोटी-मोटी सभी रचनाओं पर कुछ पंक्तियाँ लिखने का आग्रह करती हैं उसी आग्रहवश इस संस्करण में प्रस्तावना लेख के रूप में मैंने कुछ लिखने का प्रयास किया है। इच्छा थी कि ग्रन्थ सम्बन्धी कुछ विषयों पर विशेष प्रकाश डाला जाये परन्तु माताजी के साथ रहने वाले ब्र० कजौड़ीमलजी का आग्रह रहा कि प्रस्तावना लेख शीघ्र ही लिखकर १-२ दिन में मुद्रित फार्म वापस भेज दें। ''माताजी ने ग्रन्थ में विशेषार्थों के माध्यम से सब विषय स्पष्ट किये ही हैं'' इसलिये इच्छा को सीमित कर एक दिन में ही प्रस्तावना लेख समाप्त कर वापस भेज रहा हूँ।

माताजी इसी तरह जिनवाणी की सेवा करती रहें, इस भावना के साथ उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

सागर
२४.०३.१९८१

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अनुक्रमणिका

क्रम सं॰ पृष्ठ सं॰

प्रथम अधिकार

लोकनाड़ी का स्वरूप

१. मंगलाचरण श्री अरहंत स्तवन १
२. श्री ऋषभदेव भगवान् का स्तवन १
३. श्री चन्द्रप्रभ भगवान् का स्तवन २
४. श्री शांतिनाथ भगवान् का स्तवन २
५. श्री नेमिनाथ भगवान् का स्तवन २
६. श्री पार्श्वजिनेन्द्र स्तवन ३
७. श्री वर्धमान जिनेन्द्र स्तवन ३
८. शेष तीर्थंकरों का स्तवन ३
९. विदेहक्षेत्रस्थ विद्यमान सीमन्धर आदि तीर्थंकरों का स्तवन ४
१०. तीन काल संबंधी चौबीस तीर्थंकरों का स्तवन ४
११. श्री सिद्ध परमेष्ठी का स्तवन ४
१२. श्री आचार्य परमेष्ठी का स्तवन ५
१३. श्री उपाध्याय परमेष्ठी का स्तवन ५
१४. श्री साधु परमेष्टी का स्तवन ५
१५. श्री वृषभसेन आदि गणधरों का स्तवन ६
१६. श्री स्याद्वादवाणीरूप सरस्वती का स्तवन ६
१७. श्री कुन्दकुन्दादि आचार्यों का स्मरण ६
१८. त्रिलोकवर्ती कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयों तथा उनमें विद्यमान जिनबिम्बों का स्तवन ६
१९. ग्रन्थकर्ता द्वारा ग्रन्थ रचना की प्रतिज्ञा ७
२०. जिनागम-महिमा ७
२१. ग्रन्थकर्ता द्वारा लघुता-प्रदर्शन ८
२२. लोकस्वरूप-कथन की प्रतिज्ञा ८
२३. लोकाकाश और अलोकाकाश की स्थिति व लक्षण ८
२४. लोक के विषय में मतान्तरों का खण्डन ९
२५. लोक का स्वरूप ९
२६. लोक के भेद एवं उनका प्रमाण ९

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

२७. अधोलोक का क्षेत्रफल एवं घनफल १२
२८. ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल एवं घनफल १३
२९. सम्पूर्ण लोक का घनफल १४
३०. लोक की परिधि का निरूपण १४
३१. तीन वातवलयों का स्वरूप १५
३२. त्रसनाली का स्वरूप १६
३३. अधिकारगत अन्तिम मंगलाचरण १७

द्वितीय अधिकार

अधोलोक में श्वभ्र स्वरूप

१. मंगलाचरण १९
२. अधोलोक के वर्णन का हेतु और प्रतिज्ञा १९
३. अधोलोक की सात पृथ्वियों की स्थिति और नाम १९
४. सातों नरकों के नाम २०
५. निगोद स्थान का कथन २०
६. प्रथम पृथ्वी के भेद-प्रभेद २०
७. खर आदि भागों में रहने वाले देवों का विवेचन २१
८. प्रथम पृथ्वी के तीन भागों की मोटाई २१
९. शेष छह पृथ्वियों का निरूपण २२
१०. सातों पृथ्वियों में स्थित पटल २२
११. सातों पृथ्वियों में बिलों की संख्या २२
१२. सातों नरक-पटलों की संख्या और उनके नाम २३
१३. सातों नरकों के इन्द्रादिक बिल २४
१४. पृथक्-पृथक् श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या २५
१५. पृथक्-पृथक् प्रकीर्णक बिलों की संख्या २६
१६. सम्पूर्ण बिलों का व्यास २७
१७. प्रत्येक नरक के संख्यात योजन विस्तार वाले और असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलों की संख्या २८
१८. इन्द्रकादि तीनों प्रकार के बिलों का प्रमाण ३१
१९. सातों पृथ्वियों के बिल व्याप्त क्षेत्र का प्रमाण ३४

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

२०. बिलों का तिर्यग् अन्तर... ३५
२१. प्रत्येक पटल की जघन्य और उत्कृष्ट आयु ३६
२२. प्रत्येक पटल के नारकियों के शरीर का उत्सेध - ३८
२३. नारकियों के उपपाद स्थानों का आकार, व्यास एवं दीर्घता ४३
२४. नरक प्राप्ति के कारणभूत परिणाम एवं आचरण ४४
२५. नारकियों की स्थिति, निपतन और उत्पतन ४५
२६. नरकों में सम्भव लेश्याएँ... ४५
२७. कितने संहननों से युक्त जीव किस पृथ्वी तक उत्पन्न होता है? ४६
२८. कौन जीव किस पृथ्वी तक जन्म ले सकते हैं? ४६
२९. कौन जीव किस नरक में कितनी बार उत्पन्न हो सकता है? ४७
३०. नरक से निकलने वाले जीवों की उत्पत्ति का नियम ४७
३१. नरकस्थ दुर्गन्धित मिट्टी की भीषणता ४८
३२. नारकियों के अवधि क्षेत्र का प्रमाण ४९
३३. पृथ्वियों में उत्कृष्ट रूप से जन्म-मरण का अन्तर ५१
३४. पृथ्वियों में उष्ण और शीत बाधा ५१
३५. नरक में भावी तीर्थंकर जीवों की विशेष व्यवस्था ५१
३६. रत्नत्रय धर्म के आचरण करने की प्रेरणा ५२
३७. अन्त मंगल ५२

तृतीय अधिकार
नरक दुःख वर्णन

१. मंगलाचरण ५३
२. वर्णन का हेतु और प्रतिज्ञा ५३
३. नरक-बिलों का स्वरूप ५३
४. नरक भूमियों के स्पर्श एवं दुर्गन्ध का कथन ५३
५. नरक स्थित नदी, वन, वृक्ष एवं पवन ५४
६. विक्रियाजन्य पशु-पक्षियों का स्वरूप ५४
७. संवेगोत्पादक अन्य भयंकर स्वरूप का वर्णन ५५
८. नरकों में रोगजन्य वेदना ५५
९. नरकों में क्षुधा-तृषा जन्य वेदना ५६
१०. नरक गत शीत-उष्ण वेदना ५७

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

११. नरक के अन्य दुःखों का विवेचन ५७
१२. पूर्वजन्म के पापों का चिंतन एवं पश्चाताप ५८
१३. अभक्ष्य भक्षण और पाँच पापों का चिंतन ५९
१४. धर्माचरण रहित एवं कुधर्म सेवनपूर्वक पूर्वभव व्यतीत करने का पश्चाताप ५९
१५. पश्चातापरूप भीषण संताप का विवेचन ६०
१६. अन्य नारकियों द्वारा प्रदत्त भयंकर दुःखों का वर्णन ६२
१७. जीवों के नेत्र फोड़ने का और अंगोपांग छेदने का फल ६२
१८. दूसरों के प्रति चित्त में उत्पन्न होने वाले पाप का फल ६२
१९. मद्यादि अपेय पदार्थ पीने का फल ६२
२०. परस्त्री सेवन का फल ६२
२१. जीवों को छेदन-भेदन आदि के दुःख देने का फल ६३
२२. मांसभक्षण का फल ६३
२३. भिन्न-भिन्न दुःखों का कथन ६३
२४. गर्व करने का फल ६५
२५. अयोग्य स्थान में शयन करने का फल ६५
२६. सप्त व्यसन सेवन का फल ६५
२७. वैरविरोध रखने का फल ६६
२८. असुरकुमारों द्वारा दिये जाने वाले दुःख ६६
२९. दुःखों के प्रकार एवं उनकी अवधि का वर्णन ६६
३०. नारकियों द्वारा चिन्तित विषयों का वर्णन ६७
३१. नारकी-शरीरों के रस, गन्ध और स्पर्श का वर्णन ६९
३२. अपृथक् विक्रिया का कथन ६९
३३. उपसंहार ६९
३४. पापाचारी जीवों को शिक्षा ७०
३५. धर्म की महिमा ७०
३६. चारित्र धारण करने की प्रेरणा ७०
३७. अन्तिम मंगलाचरण ७०

चतुर्थ अधिकार

मध्यलोक वर्णन

१. मंगलाचरण ७२

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

२. मध्यलोक वर्णन की प्रतिज्ञा एवं उसका प्रमाण ७३
३. आदि के सोलह द्वीपों के नाम ७३
४. द्वीप-समुद्रों की स्थिति व आकृति ७४
५. द्वीप-समुद्रों की संख्या का प्रमाण ७४
६. द्वीप-समुद्रों का व्यास ७५
७. सूची व्यास का लक्षण ७५
८. अढ़ाई द्वीप पर्यंत के द्वीप-समुद्रों का सूची व्यास ७५
९. स्थूल और सूक्ष्म परिधि ७६
१०. जम्बूद्वीप का बादर-सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त करने की विधि ७७
११. वलयाकार क्षेत्र का स्थूल, सूक्ष्म क्षेत्रफल ७७
१२. जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्रों एवं कुलाचलों के नाम ७८
१३. कुलाचलों का वर्ण ७८
१४. भरतक्षेत्र के व्यास का प्रमाण ७९
१५. क्षेत्र एवं कुलाचलों का विस्तार ७९
१६. कुलाचलों का व्यास ८१
१७. कुलाचलों की ऊँचाई ८१
१८. जीवा, धनुपृष्ठ, चूलिका और पार्श्वभुजा के लक्षण ८१
१९. कुलाचलों के गाध का एवं उन पर स्थित कूटों का प्रमाण ८५
२०. महाकूटों के नाम और स्वामी ८७
२१. कूट स्थित जिनालयों का वर्णन ८८
२२. भवनस्थ तोरणद्वारों का विस्तार ८९
२३. कूटस्थ भवनों में निवास करने वालों का दिग्दर्शन ८९
२४. कुलाचलों के पार्श्वभागों में वन खंडों की स्थिति एवं प्रमाण ८९
२५. वन वेदियों की स्थिति एवं उनके प्रमाण ८९
२६. पद्मवेदिका एवं देवों के प्रासादों का वर्णन ९०
२७. कूटों का अन्तर एवं विस्तार ९०
२८. कुलाचलस्थ सरोवरों के नाम व उनका विस्तार ९२
२९. सरोवरों में स्थित कमलों का विस्तार ९३
३०. श्री आदि देवियों के भवनों का प्रमाण ९४
३१. देवियों के निवास, आयु और स्वामी ९४

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

३२. श्रीदेवी के परिवार कमलों का अवस्थान ९५
३३. श्रीदेवी के सम्पूर्ण परिवार कमलों का प्रमाण ९६
३४. परिवार कमलों का और उनके भवनों का व्यास ९७
३५. दीर्घ व लघु भवनों की मुखदिश का वर्णन ९८
३६. सम्पूर्ण पद्मगृहों में जिनालय का स्वरूप ९८
३७. कमल भवनों का विशेष व्याख्यान ९९
३८. प्रत्येक कक्षा की संख्या का अवधारण ९९
३९. सात प्रकार की सेनाएँ ९९
४०. उत्तम चारित्र द्वारा पुण्यार्जन की प्रेरणा १००

पंचम अधिकार/महानदी, गिरि वर्णन

१. मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा १०२
२. चतुर्दश महानदियों के नाम १०२
३. नदियों के गिरने का स्थान १०२
४. द्रहों की वेदिकाओं का प्रमाण १०२
५. नदियों के निर्गमद्वार १०३
६. गंगानदी की उत्पत्ति और उसका गमन १०३
७. प्रणालिका की आकृति और प्रमाण १०४
८. गिरती हुई गंगानदी का विस्तार १०४
९. गिरी हुई नदी और स्वरूप १०५
१०. कुण्ड से निकली गंगा और उसके स्थान का स्वरूप १०७
११. उम्नगा और निम्नगा नदियों का वर्णन १०७
१२. गंगा के पतन का और पतन समय उसका व्यास १०८
१३. मागधद्वार का व्यास, तोरणद्वार स्थिति १०८
१४. निर्गमद्वार आदि का व्यास १०९
१५. तोरणद्वारों का विशेष वर्णन १०९
१६. जम्बूद्वीपस्थ समस्त कुण्ड आदि का व्यास १०९
१७. अवशेष नदियों के निर्गम आदि का कथन ११०
१८. गंगा के सदृश सिंधु का कथन ११०
१९. महानदियों की परिवार नदियाँ १२२

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

२०. समस्त नदियों की वेदिकाएँ १२४
२१. विजयार्ध पर्वत की स्थिति और व्यास १२४
२२. विद्याधरों के नगरों के नाम व वर्णन १२६
२३. विद्याधरों के नगरों का विस्तार १२८
२४. नवकूटों का नाम और विस्तार १२९
२५. विजयार्ध की द्वितीय श्रेणी का वर्णन १२९
२६. सिद्धायतन कूट का वर्णन १३०
२७. अवशेष कूटों के स्वामी १३१
२८. विजयार्ध सम्बन्धी वनों का विवेचन १३१
२९. भरतक्षेत्र के छह खण्ड और आर्यों का स्वरूप १३१
३०. म्लेच्छ खंडों की अवस्थिति एवं म्लेच्छों का स्वरूप १३२
३१. अयोध्या नगरी की स्थिति १३२
३२. वृषभाचल का स्वरूप निरूपण १३२
३३. जघन्य भोगभूमि का स्वरूप १३३
३४. नाभि पर्वतों के नाम, प्रमाण, स्थान व स्वामी १३३
३५. अधिकार का संकोच १३५
३६. अधिकारान्त मंगलाचरण १३५

षष्ठ अधिकार

विदेहक्षेत्र वर्णन

१. मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा १३६
२. सुदर्शन मेरु वर्णन १३६
३. ऐरावत हाथी का वर्णन १५०
४. ऐशान आदि अन्य इन्द्रों, अहमिन्द्रों की स्थिति १५१
५. तीर्थंकर जन्माभिषेक क्रिया १५२
६. भद्रशाल वनस्थित जिनालयों का प्रमाण १५३
७. त्रैलोक्यतिलक जिनालय का वर्णन १५४
द्वार वर्णन १५४
मालाओं, धूपघटों, स्वर्णघटों का प्रमाण १५४
पीठ, सोपान, जिनप्रतिमा वर्णन १५५
मंगल द्रव्यों का वर्णन १५६

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गर्भगृह का वर्णन १५७
ध्वजाओं, मुखमण्डपों और आकारों का निर्धारण १५७
प्रेक्षागृहों एवं सभागृहों का वर्णन १५७
नवस्तूप और मानस्तम्भ का वर्णन १५९
चैत्यवृक्ष का वर्णन १६०
ध्वजापीठ, स्तम्भ, वापियों का वर्णन १६०
क्रीड़ा प्रासादों व तोरणों का वर्णन १६१
प्रासादों, ध्वजाओं व वनखण्डों का निर्देश १६१
८. अन्य जिनालयों का वर्णन १६२
९. देवों, विद्याधरों एवं अन्य भव्यों द्वारा की जाने वाली भक्ति १६२
१०. मध्यम जिनालयों का वर्णन १६३
११. जघन्य जिनालयों का वर्णन १६४
१२. तीनों प्रकार के जिनालयों की अवस्थिति १६४
१३. अष्ट प्रातिहार्यों का कथन १६५
१४. लोकस्थ समस्त अकृत्रिम चैत्यालयों को नमन १६५
१५. अधिकारान्त मंगलाचरण १६६

सप्तम अधिकार

देवकुरु, उत्तरकुरु, कच्छादेश तथा चक्रवर्ती की दिग्विजय एवं विभूति वर्णन

१. मंगलाचरण १६७
२. गजदन्तों का अवस्थान एवं वर्ण १६७
३. गजदन्तों के विस्तार आदि का निर्धारण १६७
४. गजदन्तों पर स्थित कूटों के नाम १६८
५. कूटों के स्वामी एवं उदय १६९
६. भद्रशालवनों एवं उत्तम भोगभूमियों की अवस्थिति १७०
७. उत्कृष्ट भोगभूमियों के धनुः पृष्ठ का प्रमाण १७२
८. देवकुरु, उत्तरकुरु भोगभूमि की जीवा का प्रमाण १७२
९. देवकुरु, उत्तरकुरु भोगभूमियों के वाण का प्रमाण १७३
१०. भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले जीवों का वर्णन १७३
११. जम्बूवृक्ष का स्थानादिक परिकर १७४
१२. परिवार वृक्षों की संख्या, प्रमाण एवं स्वामियों का निदर्शन १७५

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

१३. शाल्मलि वृक्ष का वर्णन १७६
१४. यमक गिरि का स्वरूप १७७
१५. विचित्र-चित्र नामक यमक पर्वतों का विवेचन १७८
१६. सीता नदी स्थित पञ्च द्रहों का वर्णन १७८
१७. सीतोदा नदी स्थित पंच द्रहों का वर्णन १७९
१८. अन्य दस द्रहों की अवस्थिति १७९
१९. कमलों, उनके भवनों व नागकुमारियों का वर्णन १८१
२०. काञ्चन पर्वत का वर्णन १८१
२१. द्रहों व भद्रशाल की वेदियों के अंतराल १८२
२२. दिग्गज पर्वतों का स्वरूप १८२
२३. विदेह नाम की सार्थकता १८३
२४. भद्रशाल आदि की वेदियों का प्रमाण १८४
२५. विदेहस्थ कच्छा देश की अवस्थिति १८४
२६. विजयार्ध वर्णन १८५
२७. कूटों के नाम, स्वामी, प्रमाण एवं परिधि १८६
२८. तमिस्र एवं प्रपात गुफा १८७
२९. चौंसठ कुण्डों का वर्णन १८७
३०. विदेहस्थ रक्ता-रक्तोदा का स्वरूप १८८
३१. सीता सीतोदा के तोरण द्वारों का वर्णन १८८
३२. आर्यखण्ड और म्लेच्छ खण्ड १८९
३३. रक्ता-रक्तोदा का विस्तार १८९
३४. क्षेमपुरी की अवस्थिति एवं प्रमाण १९०
३५. राजाधिराजा के लक्षण १९२
३६. क्षेमपुरी के वनों की संख्या १९३
३७. चक्रवर्ती की दक्षिण दिग्विजय १९३
३८. उत्तर दिग्विजय में विजयार्ध की गुफा से निस्तीर्ण होने का विधान १९४
३९. मध्यम म्लेच्छ खण्ड में चक्रवर्ती का प्रवेश एवं उस पर आये हुए उपसर्ग १९६
४०. चक्रवर्ती के मद एवं निर्मद होने का कारण १९७
४१. वृषभाचल वर्णन १९८
४२. चक्रवर्ती के नगर प्रवेश का क्रम १९८

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

४३. चक्रवर्ती के ग्राम, पुर और मटम्बों आदि का वर्णन १९९
४४. चक्रवर्ती के बल, रूप और वैभव का वर्णन २००
४५. चक्रवर्ती की नव निधियों के नाम, कार्य एवं उनके आकार का वर्णन २०१
४६. चक्रवर्ती के चौदह रत्नों के नाम और उनके उत्पत्ति स्थान २०२
४७. चक्रवर्ती के अन्य भोग्य पदार्थ २०३
४८. चक्रवर्ती के हथियारों एवं चौदह रत्नों के नाम २०५
४९. चक्रवर्ती के भोज्य एवं पेय पदार्थ २०६
५०. चक्रेश की सम्पदा पुण्य का फल है २०७
५१. धर्म का फल २०७
५२. धर्म प्रशंसा २०८

अष्टम अधिकार

विदेह क्षेत्रस्थ देशों का वर्णन

१. मंगलाचरण २०९
२. चित्रकूट नाम के प्रथम वक्षार पर्वत का वर्णन २०९
३. वक्षार पर्वतस्थ कूटों के नाम, स्थान और स्वामी २०९
४. कूटों का उत्सेध पृथक्-पृथक् २१०
५. सुकच्छादेश और क्षेमपुरी का वर्णन २१०
६. विभंगा नदी का निर्गम स्थान, परिवार नदियाँ और लम्बाई २१०
७. विभंगा के अवशेष वर्णन का कथन २११
८. महाकच्छदेश स्थित अरिष्टानगरी २११
९. पद्मकूट वक्षार पर्वत की अवस्थिति २१२
१०. कच्छकावती देश, द्रहवती विभंगा, आवर्तदेश और नलिनकूट वक्षार की अवस्थिति २१२
११. आगे के देशों, विभंगा नदी और वक्षार पर्वतों का कथन २१३
१२. देवारण्य वन का वर्णन २१४
१३. देवारण्यस्थ प्रासादों का वर्णन २१४
१४. देवारण्य का विस्तार २१५
१५. अन्य वेदी, देश, वक्षार एवं विभंगा आदि की अवस्थिति २१५
१६. पूर्व विदेह क्षेत्र के अवशेष देशों, पर्वतों एवं विभंगा नदियों की अवस्थिति २१७
१७. सुदर्शन मेरु पर्यंत देशों, वक्षारों एवं नदियों का अवस्थान २१८

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

१८. पश्चिम विदेह गत देशों, वक्षारों एवं नदियों का अवस्थान २१९
१९. पद्मकावती देश के आगे अन्य-अन्य देशों, विभंगा नदियों एवं पर्वतों की अवस्थिति २२०
२०. अवशेष देशों का अवस्थान २२२
२१. पूर्व विदेहगत वक्षार पर्वतों आदि की अवस्थिति २२३
२२. भद्रशाल की वेदी पर्यंत देशों, वक्षारों एवं विभंगा नदियों का अवस्थान २२५
२३. वनों, वेदियों, वक्षार पर्वतों और देशों का आयाम २२६
२४. कुण्डों का व्यास एवं गहराई २२६
२५. विभंगा नदियों का आयाम २२६
२६. विदेहस्थ रक्तादि ६४ नदियों का आयाम २२७
२७. विदेह का विस्तृत वर्णन २२७
२८. जम्बूद्वीपस्थ समस्त पर्वतों की एकत्र संख्या २३१
२९. अवशेष द्वीपों के पर्वतों की संख्या २३१
३०. जम्बूद्वीपस्थ वन, वृक्ष, सरोवर एवं महादेशों की संख्या २३१
३१. जम्बूद्वीपस्थ समस्त नदियों का विवेचन २३२
३२. कुण्डों का प्रमाण एवं शेष द्वीपों के भद्रशाल आदि का प्रमाण २३३
३३. विदेहक्षेत्र के प्रति आशीर्वचन २३३
३४. अधिकारान्त मंगलाचरण २३३

नवम अधिकार

छह कालों का प्ररूपण

१. मंगलाचरण २३५
२. छह कालों का सामान्य वर्णन २३५
३. प्रथम काल का सामान्य वर्णन २३५
४. दस प्रकार के कल्पवृक्षों का वर्णन २३६
५. भोगभूमि का अवशिष्ट वर्णन २३७
६. भोगभूमिज जीवों की उत्पत्ति एवं वृद्धि का वर्णन २३८
७. भोगभूमिज जीवों की अन्य विशेषताएँ २३८
८. दाता और पात्रदान के भेद से फल में भेद २३९
९. भोगभूमिज जीवों की मृत्यु का कारण और गतिबंध २४०
१०. द्वितीय और तृतीय काल का वर्णन २४०
११. कुलकरों का उत्पत्ति समय, प्रथम दो कुलकरों का वर्णन २४१

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

१२. क्षेमंकर आदि तीन कुलकरों का वर्णन २४२
१३. सीमंधर आदि चार कुलकरों का स्वरूप वर्णन २४४
१४. अभिचंद्र और चंद्राभ कुलकरों का वर्णन २४६
१५. मरुदेव, प्रसेनजित और नाभिराय कुलकरों का वर्णन २४७
१६. कुलकरों की उत्पत्ति २५०
१७. ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती की दण्डनीति, ऋषभदेव का मोक्ष गमन २५१
१८. चतुर्थ काल का वर्णन २५१
१९. चौबीस तीर्थंकरों का वर्णन २५२
२०. तीर्थंकरों का अन्तरकाल २५६
२१. जिनधर्म का उच्छेदकाल २५८
२२. हुण्डावसर्पिणी काल की विशेषताएँ २५९
२३. बारह चक्रवर्तियों के नाम, उत्सेध व आयु २६०
२४. चक्रवर्तियों का वर्तनाकाल २६१
२५. चक्रवर्तियों की गति विशेष २६२
२६. नव बलदेवों के नाम, उत्सेध और आयु २६२
२७. अन्य सम्पदा, शरीर, वर्ण, गति आदि का कथन २६३
२८. बलभद्रों का वर्तना काल २६४
२९. नौ नारायण, नाम, स्वभाव, शरीर, वर्ण और उत्सेध २६४
३०. नारायणों की आयु का कथन २६५
३१. नारायणों की विभूति का वर्णन २६५
३२. नारायणों की गति विशेष का वर्णन २६६
३३. प्रतिवासुदेवों के नाम, उत्सेध, वर्ण एवं स्वभाव २६६
३४. प्रतिवासुदेवों की आयु और गति २६६
३५. रुद्रों के नाम, उत्सेध एवं आयु २६७
३६. रुद्रों का वर्तनाकाल २६९
३७. रुद्रों द्वारा प्राप्त नरकगति के मूल कारण २६९
३८. नौ नारदों का वर्णन २७०
३९. पंचम काल का वर्णन २७१
४०. शक राजा तथा प्रथम कल्की २७१
४१. प्रथम कल्की एवं उसके पुत्र के कार्य २७२

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

४२. अंतिम कल्की का स्वरूप एवं कार्य २७३
४३. अतिदु:खमा काल का दिग्दर्शन २७४
४४. दुर्वृष्टियों के नाम एवं फल २७५
४५. उत्सर्पिणी काल के प्रथम काल का वर्णन २७६
४६. उत्सर्पिणी काल के द्वितीय दुखमा काल का वर्णन २७७
४७. तृतीय काल की स्थिति एवं २४ तीर्थंकर २७७
४८. आगामी १२ चक्रवर्ती २७९
४९. भविष्यत् काल के बलभद्र, वासुदेव, प्रतिवासुदेव २७९
५०. अवशेष तीन कालों में भोगभूमि की रचना २८०
५१. काल और अन्य क्षेत्र २८०
५२. कालचक्र के परिभ्रमण से छूटने का उपाय २८२
५३. अधिकारान्त मंगलाचरण २८२

दशम अधिकार

मध्यलोक वर्णन

१. मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा २८३
२. जम्बूद्वीप की परिधि और आकार का परिमाण २८३
३. प्राकार स्थित वेदिका का निरूपण २८३
४. चारों दिशाओं में स्थित द्वारों के नाम, प्रमाण व उन पर स्थित जिनप्रतिमाओं का निरूपण २८४
५. गोपुरद्वारों के अधिनायक व नगरों का वर्णन २८४
६. चारों द्वारों का अन्तर व बाह्याभ्यन्तर स्थित वनों का निरूपण २८५
७. लवण समुद्र की अवस्थिति व स्वामी २८५
८. लवण समुद्रान्तर्गत पातालों के नाम, उनका अवस्थान व संख्या २८६
९. पातालों का अवगाह २८६
१०. पातालों के अभ्यन्तरवर्ती जल और वायु के प्रवर्तन का क्रम २८७
११. अमावस्या एवं पूर्णिमा को हानि वृद्धिरूप होने वाले जल के भूव्यास आदि का प्रमाण २८९
१२. पातालों के पारस्परिक अन्तर का प्रमाण २९०
१३. लवणसमुद्र के प्रतिपालक नागकुमार आदि देवों के विमानों की संख्या २९१
१४. बत्तीस पर्वतों के नाम, प्रमाण एवं आकार का निरूपण २९१
१५. पर्वतों पर स्थित द्वीपों का व पर्वत के स्वामियों का कथन २९२

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

१६. वायव्य दिशा स्थित गौतम द्वीप का विस्तृत वर्णन २९३
१७. २४ अन्तर द्वीपों का विस्तृत वर्णन २९३
१८. कुभोगभूमिज मनुष्यों की आकृति, आयु, वर्ण, आहार व उनके रहने के स्थान आदि का वर्णन २९५
१९. कुभोगभूमि में कौन जीव उत्पन्न होते हैं २९६
२०. लवणसमुद्र के अन्य २४ द्वीप २९७
२१. कालोदधि समुद्र के २४ द्वीप २९८
२२. लवणसमुद्र का अवगाह और उसकी सूक्ष्म परिधि का प्रमाण २९९
२३. धातकीखण्डस्थ मेरु पर्वतों का अवस्थान ३००
२४. धातकीखण्ड के पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण ३०२
२५. धातकीखण्ड स्थित क्षेत्रों एवं पर्वतों का विष्कम्भ ३०३
२६. ह्रद, कुण्ड और नदियों के विस्तार का निरूपण ३०५
२७. धातकीखण्डस्थ सरोवरों का व्यास ३०५
२८. धातकीखण्डस्थ कुण्डों का व्यास ३०६
२९. धातकीखण्डस्थ गंगादि नदियों का पर्वतों पर ऋजु प्रवाह का प्रमाण ३०६
३०. गंगा, सिन्धु आदि नदियों के निर्गम स्थानों का व्यास ३०६
३१. धातकीखण्डस्थ पूर्वविदेह के मेरुपर्वत का प्रमाण ३०७
३२. विजयमेरु पर्वत के सम्पूर्ण विष्कम्भ एवं परिधियों का प्रमाण ३०७
३३. भद्रशाल वन, गजदन्त और देवकुरु उत्तरकुरु का आयाम ३०८
३४. धातकी वृक्षों की अवस्थिति, विदेहक्षेत्र के विभाग व नाम ३१०
३५. देशों के खण्ड एवं कच्छादि देशों का विस्तार ३१०
३६. धातकीखण्ड विदेहस्थ वक्षार पर्वतों का आयाम ३११
३७. देवारण्य-भूतारण्य वनों का आयाम ३११
३८. विभंगा नदियों का आयाम ३११
३९. कुण्डों, विजयार्ध पर्वतों, गंगादि ६४ नदियों का विस्तार ३१२
४०. पश्चिम धातकीखण्ड की व्यवस्था ३१३
४१. धातकीखण्डस्थ यमकगिरि आदि पर्वतों की संख्या ३१४
४२. धातकीखंडस्थ भोगभूमियों, कर्मभूमियों, पर्वतों, नदियों एवं द्रहादिकों की संख्या व अधिपति देव ३१४

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

४३. कालोदधि समुद्र का विस्तृत वर्णन ३१५
४४. पुष्करद्वीप का विस्तृत वर्णन ३१५
४५. पुष्करार्ध द्वीप का सूची व्यास, परिधि और पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण ३१६
४६. पुष्करार्ध स्थित १२ कुलाचलों के व्यास आदि का प्रमाण ३१७
४७. पुष्करार्ध स्थित क्षेत्रों का आकार व व्यास ३१८
४८. पुष्करार्ध स्थित सरोवरों, नदियों, कुण्डों, वनों व गजदन्तों का व्यास ३२०
४९. देवकुरु-उत्तरकुरु के वाण तथा उभय विदेह, वक्षार पर्वत, विभंगा नदी और देवारण्य-भूतारण्य के व्यास का प्रमाण ३२१
५०. वक्षार, देश, देवारण्य आदि वन तथा विभंगा नदियों के आयाम व उसमें हानिवृद्धि का प्रमाण ३२२
५१. पुष्करार्धस्थ समस्त विजयार्धों के व्यास आदि का प्रमाण ३२२
५२. गंगादि क्षुल्लक नदियों के और कुण्डों का व्यास का प्रमाण ३२३
५३. पुष्करार्ध द्वीपस्थ वृक्ष, पर्वत, वेदी कुण्ड और द्वीप के रक्षक देव ३२४
५४. अढ़ाई द्वीपस्थ पर्वतों और नदियों की एकत्र संख्या ३२५
५५. सभी विदेहस्थ आर्य खंडों की विशेषताएँ ३२६
५६. मानुषोत्तर पर्वत का विस्तृत वर्णन ३२८
५७. ढ़ाईद्वीप के आगे मनुष्य नहीं; केवल तिर्यञ्च हैं ३२९
५८. पुष्करवर द्वीप के आगे के द्वीप समुद्रों के नाम व स्वामी ३३०
५९. नन्दीश्वर नाम के अष्टम द्वीप की अवस्थिति ३३१
६०. अंजनगिरि पर्वत और वापिकाओं का अवस्थान ३३२
६१. सोलह वापिकाओं के नाम और उनके स्वामी ३३२
६२. दधिमुख पर्वतों की संख्या, अवस्थान, वर्ण और व्यास ३३४
६३. रतिकर पर्वतों एवं सब जिनालयों का वर्णन ३३४
६४. अशोक आदि वन एवं चैत्यवृक्ष ३३५
६५. वन स्थित प्रासादों व अष्टाह्निकी पूजा का वर्णन ३३६
६६. इन्द्रों द्वारा एक ही दिन में चारों दिशाओं की पूजन का विधान ३३६
६७. नन्दीश्वर द्वीप के स्वामी ३३७
६८. नन्दीश्वर समुद्र की एवं दो द्वीपों की अवस्थिति ३३८
६९. कुण्डल द्वीपस्थ कुण्डलगिरि के व्यास का प्रमाण ३३९
७०. कुण्डलगिरिस्थ कूटों का अवस्थान, संख्या व व्यास ३३९

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

७१. शंखवरद्वीप और रुचकद्वीप की अवस्थिति ३४०
७२. रुचकगिरि पर स्थित कूटों का अवस्थान, संख्या और स्वामी ३४०
७३. कुछ द्वीप समुद्रों के नाम एवं उनकी अकृत्रिमता ३४३
७४. अन्तिम द्वीप एवं समुद्र का नाम, अवस्थान तथा व्यास ३४३
७५. नागेन्द्र पर्वत, तिर्यग्लोक के अन्त में अवस्थित कर्मभूमि और उसमें रहने वाले तिर्यंचों का कथन ३४४
७६. बाह्य पुष्करार्ध के रक्षक देव और मानुषोत्तर पर्वत की परिधि का प्रमाण ३४४
७७. महामत्स्यों का व्यास ३४५
७८. एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों के शरीर का आयाम ३४६
७९. समुद्रों के जलों का स्वाद ३४७
८०. स्वयम्भूरमण समुद्र का व्यास ३४८
८१. उपसंहार ३४८
८२. अधिकारान्त मंगलाचरण ३४८

एकादश अधिकार

जीवों के भेद-प्रभेदों का वर्णन

१. मंगलाचरण ३४९
२. जीव के भेद और सिद्ध जीव का स्वरूप ३४९
३. संसारी जीव के भेद कर स्थावर जीवों के भेद ३४९
४. त्रस और स्थावर जीवों की पृथक्-पृथक् संख्या ३४९
५. पृथ्वी के चार भेद और उनके लक्षण ३५०
६. जल, अग्नि और वायु के चार-चार भेद ३५०
७. वनस्पति के भेद और लक्षण ३५१
८. पंच स्थावरों के चेतन/अचेतन भेद ३५२
९. मृदु पृथ्वीकायिक जीवों के भेदों का निरूपण ३५२
१०. खर पृथ्वी के भेदों का निरूपण ३५३
११. पृथ्वीकायिक पृथ्वी से बने हुए पर्वत एवं प्रासादों का कथन ३५३
१२. जलकायिक जीवों के भेदों का प्रतिपादन ३५४
१३. अग्निकायिक जीवों का प्रतिपादन ३५४
१४. वायुकायिक जीवों के स्थानों का वर्णन ३५५

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

१५. वनस्पतिकायिक जीवों के भेद ३५५
१६. साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के लक्षण ३५७
१७. स्कन्ध, अण्डर आदि का प्रतिपादन ३५८
१८. बादर अनन्तकाय जीव ३५८
१९. साधारण, प्रत्येक, सूक्ष्म एवं बादर जीवों के लक्षण और उनके निवास क्षेत्र ३५९
२०. त्रस जीवों के भेद ३६०
२१. जीवों की कुलकोटियाँ ३६१
२२. योनियों के भेद-प्रभेद, आकार और स्वामी ३६२
२३. जीवों के शरीरों की अवगाहना ३६३
२४. जीवों के संस्थानों का कथन ३६४
२५. जीवों के संहननों का विवेचन ३६४
२६. जीवों के वेदों का कथन ३६६
२७. जीवों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु ३६६
२८. स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियों की आकृति ३६७
२९. इन्द्रियों के भेद-प्रभेद ३६७
३०. पाँचों इन्द्रियों के विषयों का स्पर्श ३६८
३१. एकेन्द्रियादि जीवों की संख्या का प्रमाण ३६९
३२. जीवों के प्रमाण का अल्पबहुत्व ३७२
३३. नरकगति अपेक्षा अल्पबहुत्व ३७२
३४. तिर्यञ्चगति अपेक्षा अल्पबहुत्व ३७३
३५. मनुष्यगति अपेक्षा अल्पबहुत्व ३७४
३६. देवगति अपेक्षा अल्पबहुत्व ३७५
३७. जीवों की पर्याप्ति और प्राणों का कथन ३७७
३८. जीवों की गति-आगति का प्रतिपादन ३७८
३९. धर्म-प्राप्ति के लिये जीवरक्षा का उपदेश ३७९
४०. अधिकारान्त मंगल ३८०

द्वादश अधिकार

चतुर्निकाय के देवों का वर्णन भवनवासी देव

१. मंगलाचरण ३८१
२. देवों के मूल चार भेद और उनके स्थान ३८१

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

३.	भवनवासी देवों के स्थान	३८२
४.	भवनवासी देवों का प्रमाण	३८२
५.	उनकी दस जातियाँ और उनकी कुमार संज्ञा की सार्थकता	३८३
६.	असुरकुमारादि देवों के वर्ण और चिह्न	३८३
७.	भवनवासी देवों के भवनों की पृथक्-पृथक् संख्या	३८३
८.	दस कुल सम्बन्धी २० इन्द्रों के नाम, उनका दिशागत अवस्थान और प्रतीन्द्रों की संख्या	३८४
९.	दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रों के भवनों की संख्या	३८५
१०.	भवनों का प्रमाण तथा कल्पवृक्षों का वर्णन	३८६
११.	मानस्तम्भों का वर्णन	३८७
१२.	इन्द्रादिक के भेद	३८७
१३.	इन्द्रादिक पदवियों के दृष्टान्त	३८८
१४.	लोकपालों का अवस्थान	३८८
१५.	प्रत्येक इन्द्र के त्रायस्त्रिंश, सामानिक और अंगरक्षक देवों की संख्या	३८९
१६.	पारिषद देवों की संख्या	३९०
१७.	अनीक देवों के भेद और चमरेन्द्र के महिषों की संख्या	३९१
१८.	चमरेन्द्र के अनीकों की सम्पूर्ण संख्या और वैरोचन के महिषों की संख्या	३९२
१९.	भूतानन्द की सातों अनीकों व धरणानन्द की प्रथम अनीक की संख्या	३९४
२०.	प्रत्येक इन्द्र की अनीकों का एकत्र योग	३९५
२१.	असुरकुमारादि देवों की देवांगनाओं का प्रमाण	३९५
२२.	चमरेन्द्रादि इन्द्रों के पारिषद, अंगरक्षक और अनीक आदि देवांगनाओं का प्रमाण	३९६
२३.	असुरेन्द्र आदि दसों इन्द्रों की आयु का कथन	३९८
२४.	इन्द्रादिकों की और उत्तरेन्द्रों की आयु का निरूपण	३९८
२५.	चमरेन्द्र आदि इन्द्रों की देवांगनाओं की आयु	३९९
२६.	चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के अंगरक्षकों, सेना महत्तरों व अनीक देवों की आयु	३९९
२७.	चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के पारिषद् देवों की आयु	४००
२८.	असुरकुमार आदि इन्द्रों के शरीर की ऊँचाई, उच्छ्वास एवं आहार का क्रम	४०१
२९.	भवनवासी देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र	४०१
३०.	इन्द्रों की परस्पर स्पर्धा	४०२
३१.	सिद्धान्तसाररूप श्रुत को पढ़ने की प्रेरणा	४०२

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

३२. अधिकारान्त मंगल ४०२

त्रयोदश अधिकार
व्यन्तर देवों का वर्णन

१. मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा ४०४
२. व्यन्तर देवों के आठ भेद ४०४
३. व्यन्तर देवों के शरीर का वर्ण ४०४
४. उनके मुख्य आठ कुलों के अवान्तर भेद ४०४
५. किन्नर और किम्पुरुष कुलों के अवान्तर भेद ४०५
६. अन्य देवों के अवान्तर नाम ४०५
७. प्रत्येक कुल के इन्द्र, प्रतीन्द्र और बल्लभिकाएँ ४०६
८. व्यन्तर देवों के निवास स्थान और उनके पुर ४०८
९. प्राकार, द्वार, प्रासाद, सभामण्डप एवं चैत्यवृक्ष ४०९
१०. चैत्यवृक्षों में स्थित प्रतिबिम्ब और मानस्तम्भ ४१०
११. वनों एवं नगरों का कथन ४११
१२. किन्नर आदि सोलह इन्द्रों की ३२ गणिका महत्तरों के नाम ४११
१३. व्यन्तर देवों के नगरों एवं कूटों का प्रमाण ४१२
१४. व्यन्तर देवों के निवास स्थानों का विभाग ४१३
१५. व्यन्तरेन्द्रों के परिवार देवों का विवेचन ४१३
१६. नित्योपपादादि वानव्यन्तर देवों का निवास क्षेत्र ४१५
१७. व्यन्तर देवों की जघन्योत्कृष्ट आयु, अवगाहना, आहार, श्वासोच्छ्वास और अवधिज्ञान के विषय का प्रमाण ४१६
१८. करणानुयोग पठन की प्रेरणा ४१७
१९. अधिकारान्त मंगल ४१७

चतुर्दश अधिकार
ज्योतिषी देवों का वर्णन

१. मंगलाचरण ४१८
२. ज्योतिषी देवों के भेदों का प्ररूपण ४१८
३. ज्योतिर्देवों के स्थान का निर्देश ४१८
४. ज्योतिर्विमानों का स्वरूप ४१९

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

५. उनके व्यास का प्रमाण ४२०
६. सूर्यचन्द्र आदि ग्रहों की किरणों का प्रमाण ४२२
७. तारागणों का तिर्यगन्तर, चन्द्र सूर्य ग्रहण का कारण एवं चन्द्र कलाओं में हानि-वृद्धि का कारण ४२३
८. अन्य प्रकार के चन्द्र कलाओं में हानि-वृद्धि का कथन ४२४
९. चन्द्रादिक ज्योतिषी देवों के विमान वाहक देवों का आकार और संख्या ४२४
१०. मनुष्यलोक में स्थित चन्द्र-सूर्यों की संख्या ४२५
११. एक चन्द्र के परिवार का निरूपण ४२६
१२. जम्बूद्वीपस्थ भरतादि क्षेत्रों और कुलाचलों की ताराओं का विभाजन ४२७
१३. अढ़ाई द्वीपस्थ प्रत्येक द्वीप के ज्योतिर्विमानों की पृथक्-पृथक् संख्या ४२८
१४. चन्द्रमा के अवशेष परिवार देवों के नाम, नृलोक में ज्योतिर्देवों का गमन, क्रम और मानुषोत्तर के आगे ज्योतिर्देवों की अवस्थिति ४२९
१५. मनुष्यलोक की ध्रुव ताराओं का प्रमाण ४२९
१६. मेरु से ज्योतिष्क देवों की दूरी का प्रमाण उनके गमन का क्रम, एक सूर्य से दूसरे सूर्य का एवं सूर्य से वेदी के अन्तर का प्रमाण ४३०
१७. मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य भाग में सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों के अवस्थान का निर्धारण ४३१
१८. प्रत्येक द्वीप-समुद्र में वलयों का प्रमाण ४३४
१९. सूर्यचन्द्रक चार क्षेत्रों का प्रमाण, उनका विभाग एवं उनकी वीथियों का प्रमाण ४३४
२०. सूर्य चन्द्र के गमन का प्रकार ४३७
२१. अट्ठाइस नक्षत्रों के नाम ४३८
२२. प्रत्येक नक्षत्र के ताराओं की संख्या तथा परिवार ताराओं का प्रमाण प्राप्त करने की विधि ४३८
२३. जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट नक्षत्रों के नाम व संख्या ४३९
२४. कृतिकादि ताराओं के आकार विशेष ४३९
२५. ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु ४४०
२६. सूर्य-चन्द्र की पट्ट देवियाँ, परिवार देवियाँ एवं उनकी आयु का प्रमाण ४४०
२७. ज्योतिष्क देवों के अवधि क्षेत्र और भवनत्रिक देवों के गमन क्षेत्र का कथन ४४२
२८. ज्योतिष्क देवों के शरीर का उत्सेध, निकृष्ट देवों की देवांगनाओं का प्रमाण और भवनत्रय में जन्म लेने वाले जीवों का आचरण ४४२

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

२९. करणानुयोग के शास्त्रों के अध्ययन की प्रेरणा ४४३
३०. अधिकारान्त मंगलाचरण ४४४

पञ्चदश अधिकार
ऊर्ध्वलोक वर्णन

१. मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा ४४५
२. सोलह स्वर्गों के नाम और उनका अवस्थान ४४५
३. इन्द्रों का प्रमाण ४४५
४. इन्द्रों के नाम और उनकी दक्षिणेन्द्र संज्ञा का विवेचन ४४६
५. कल्प-कल्पातीत विमानों का और सिद्धशिला का अवस्थान ४४६
६. मेरुतल से कल्प और कल्पातीत विमानों का अवस्थान ४४७
७. पटलों का प्रमाण ४४७
८. सौधर्मादि स्वर्गों के विमानों का प्रमाण ४४९
९. सोलह स्वर्गों के इन्द्रक विमानों के नाम ४५०
१०. ऋतु इन्द्रक की अवस्थिति एवं इन्द्रों के स्वामित्व की सीमा ४५२
११. इन्द्रक विमानों का प्रमाण ४५२
१२. श्रेणीबद्ध विमानों के अवस्थान का स्वरूप ४५४
१३. प्रकीर्णक विमानों का स्वरूप और अवस्थान ४५५
१४. इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों के प्रमाण का कथन ४५६
१५. विमानों के आधार स्थान का निरूपण ४५९
१६. स्वर्गस्थ विमानों का वर्ण ४६०
१७. प्रथम इन्द्रक के एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानों का अवस्थान ४६१
१८. दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के विमानों का विभाग ४६१
१९. इन्द्र स्थित श्रेणीबद्ध विमानों का कथन ४६२
२०. सौधर्मादि देवों के मुकुट चिह्न ४६३
२१. इन्द्रों के वाहनों का निरूपण ४६४
२२. प्रमुख विमानों की चारों दिशाओं में स्थित विमानों के नामों का निरूपण ४६४
२३. विमानों के तल बाहुल्य का निरूपण ४६५
२४. सौधर्मादि इन्द्रों के नगरों का विस्तार ४६६
२५. नगरों के प्राकारों की ऊँचाई ४६७

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

२६. प्राकारों की नींव और व्यास का प्रमाण ४६७
२७. सौधर्मादि बारह स्थानों में ग्रहों की स्थिति ४६९
२८. इन्द्र के नगर सम्बन्धी प्राकारों की संख्या और उनके पारस्परिक अंतर का प्रमाण ४७०
२९. कोटों के अन्तरालों में स्थित देवों के भेद ४७१
३०. सामानिक, तनुरक्षक और अनीक देवों का प्रमाण ४७१
३१. दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के अनीक नायकों के नाम ४७२
३२. नव स्थानों में तीनों परिषदों का पृथक्-पृथक् प्रमाण ४७२
३३. वनों के नाम तथा उनका प्रमाण, चैत्यवृक्षों का स्वरूप ४७६
३४. लोकपालों के नाम, उनके नगरों का स्वरूप एवं प्रमाण ४७६
३५. गणिका महत्तरियों के नाम एवं उनके आवासों के प्रमाण ४७७
३६. इन्द्रों की वल्लभाओं का प्रमाण एवं उनके प्रासादों की ऊँचाई आदि का प्रमाण ४७८
३७. प्रत्येक इन्द्र की आठ-आठ महादेवियाँ उनकी विक्रियागत देवांगनाएँ व परिवार देवांगनाएँ ४७९
३८. समस्त महादेवियों के प्रासादों की ऊँचाई आदि का प्रमाण ४८१
३९. इन्द्र के आस्थान मण्डप का अवस्थान एवं प्रमाण ४८२
४०. आस्थान मण्डप के द्वार, उनका प्रमाण एवं इन्द्र के सिंहासन का अवस्थान ४८२
४१. महादेवियों के, लोकपालों के और अन्य देवों के सिंहासनों का अवस्थान ४८२
४२. आस्थान मण्डप के आगे स्थित मानस्तम्भ का स्वरूप व प्रमाण ४८३
४३. इन्द्रों की उत्पत्ति गृह का अवस्थान ४८६
४४. कल्पवासी देवांगनाओं के उत्पत्ति स्थान ४८६
४५. कल्पवासी देवों के प्रवीचार का कथन ४८७
४६. वैमानिक देवों के अवधिज्ञान का विषय, क्षेत्र एवं विक्रिया शक्ति में प्रमाण का कथन ४८७
४७. वैमानिक देवों के जन्म-मरण के अन्तर का निरूपण ४८९
४८. इन्द्रादिकों के जन्म-मरण का उत्कृष्ट अंतर ४८९
४९. देव विशेषों के अन्तिम उत्पत्ति स्थानों का प्रतिपादन ४९०
५०. प्रथमादि युगलों में स्थित देवों की स्थिति विशेष ४९०
५१. देवों में आयु की हानि एवं वृद्धि के कारण तथा आयु का प्रमाण ४९४
५२. कल्पवासी देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण ४९५
५३. देवांगनाओं की (अन्य शास्त्रोक्त) उत्कृष्ट आयु ४९६

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

५४. देवों के शरीर का उत्सेध	४९६
५५. वैमानिक देवों के आहार एवं उच्छ्वास के समय का निर्धारण	४९७
५६. लौकान्तिक देवों के अवस्थान का स्थान एवं उनकी संख्या का प्रतिपादन	४९९
५७. लौकान्तिक देवों के कुलों के नाम एवं उनकी संख्या	५००
५८. लौकान्तिक देवों के विशेष स्वरूप का एवं उनकी आयु का प्रतिपादन	५००
५९. किस-किस संहनन वाले जीव कहाँ तक उत्पन्न होते हैं	५०२
६०. वैमानिक देवों की लेश्या का विभाग	५०३
६१. वैमानिक देवों के संस्थान एवं शरीर की विशेषता	५०३
६२. देवों की ऋद्धि आदि का वर्णन	५०४
६३. वैमानिक देवों का विशेष स्वरूप एवं उनके सुख का कथन	५०४
६४. उत्पन्न होने के बाद देवगण क्या-क्या विचार करते हैं	५०४
६५. पूर्वभव में किये हुए धार्मिक अनुष्ठान आदि का तथा धर्म के फल का चिंतन	५०५
६६. इन्द्रादि देवों द्वारा की जाने वाली जिनेन्द्र पूजा	५०७
६७. मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि की पूजन के अभिप्राय में अन्तर तथा सम्यक्त्व प्राप्ति का हेतु	५०८
६८. अकृत्रिम-कृत्रिम जिनबिम्बों के पूजन अर्चन का वर्णन	५०८
६९. इन्द्रादि देवों के इन्द्रियजन्य सुखों का वर्णन	५०९
७०. किन क्रियाओं द्वारा स्वर्गादि सुखों की प्राप्ति होती है	५१०
७१. कौन-कौन से जीव किन-किन स्वर्गों तक उत्पन्न होते हैं	५११
७२. स्वर्गों से च्युत होने वाले देवों की प्राप्त गति का निर्धारण	५१२
७३. स्वर्गस्थित मिथ्यादृष्टि देवों के मरणचिह्न; उन्हें देखकर होने वाला आर्तध्यान और उसका फल	५१३
७४. मरणचिह्नों को देखकर सम्यग्दृष्टि देवों का चिन्तन	५१४
७५. धर्म के फल का कथन तथा व्रत-तप आदि करने की प्रेरणा	५१५
७६. धर्म की महिमा	५१६
७७. अधिकारान्त मंगलाचरण	५१६

षोडश अधिकार/पल्यादि मान वर्णन

१. मंगलाचरण	५१७
२. अष्टम पृथ्वी की अवस्थिति और उसका प्रमाण	५१७
३. सिद्धशिला की अवस्थिति, आकार एवं प्रमाण	५१७

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

४. सिद्ध भगवान् का स्वरूप ५१७
५. सिद्धों के सुखों का वर्णन ५१८
६. अधोलोकजन्य प्रत्येक भूमिका भिन्न-भिन्न घनफल ५१९
७. प्रत्येक स्वर्ग का भिन्न-भिन्न घनफल ५१९
८. लोक और लोकोत्तर मानों का वर्णन ५२०
९. द्रव्यमान के भेद-प्रभेद ५२१
१०. उपमा मान के आठ भेद ५२६
११. व्यवहार पल्य और उसके रोमों की संख्या ५२६
१२. उद्धार पल्य और द्वीप समुद्रों का प्रमाण ५२७
१३. आधार (अद्धा) पल्य एवं आधार सागर का प्रमाण ५२७
१४. सूच्यंगुल से लेकर लोक पर्यन्त का प्रमाण ५२८
१५. अणु का लक्षण व अंगुल पर्यन्त मापों का प्रमाण ५२९
१६. अंगुलों के भेद और उनका प्रमाण ५३०
१७. किन अंगुलों से किन-किन पदार्थों का माप होता है? ५३०
१८. क्षेत्रमान का ज्ञापन कराने के लिये मान का प्रमाण ५३१
१९. काल मान के प्रमाण का दिग्दर्शन ५३१
२०. व्यवहार काल के भेदों में से पूर्वांग आदि के लक्षण ५३२
२१. भाव मान का वर्णन ५३४
२२. ग्रन्थ रचना का आधार ५३४
२३. ग्रन्थ के प्रति आशीर्वचन ५३५
२४. ग्रन्थ के स्वाध्याय से फल प्राप्ति ५३६
२५. शास्त्र श्रवण करने का फल ५३६
२६. शास्त्र लेखन का फल ५३७
२७. शास्त्र लिखवाने का फल ५३७
२८. शास्त्र अध्ययन कराने का फल ५३७
२९. इस ग्रन्थ की रचना करके आचार्यश्री क्या चाहते हैं? ५३७
३०. आचार्यश्री की मंगल याचना ५३८
३१. सिद्धान्त ग्रन्थ की वृद्धि की वाञ्छा ५३८
३२. कुल श्लोक संख्या की सूचना ५३९

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ॐ

आचार्य सकलकीर्ति विरचित

सिद्धान्तसार दीपक

(अपर नाम-त्रिलोकसार दीपक)

प्रथम अधिकार

लोकनाड़ी का स्वरूप

सर्वप्रथम ग्रन्थ के आदि में भट्टारक सकलकीर्त्याचार्य मंगलाचरण करते हुए कहते हैं कि–

श्रीमन्तं त्रिजगन्नाथं सर्वज्ञं सर्वदर्शिनम्।
सर्वयोगीन्द्रवन्द्याङ्घ्रिं वन्दे विश्वार्थदीपकम् ॥१॥

अर्थ–जो अनन्त चतुष्टयरूप अन्तरंग और अष्ट प्रातिहार्यरूप बहिरंग लक्ष्मी से युक्त हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, समस्त योगिराजों के द्वारा जिनके चरण वन्दनीय हैं तथा जो विश्व के पदार्थों को प्रकाशित करने के लिये दीपक हैं ऐसे तीन लोक के नाथ जिनेन्द्र भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अब आदि जिनेन्द्र श्री ऋषभदेव का स्तवन करते हैं–

दिव्येन ध्वनिना येन कालादौ धर्मवृत्तये।
लोकालोकपदार्थौघा विश्वतत्त्वादिभिः समम् ॥२॥
प्रोक्ता आर्यगणेशादीनग्रजं तं जिनेशिनाम्[१]।
विश्वार्च्यं विश्वकर्तारं धर्मचक्राधिपं स्तुवे ॥३॥

अर्थ–जिन्होंने युग के प्रारम्भ में (तृतीय काल के अन्त में) धर्म की प्रवृत्ति चलाने के लिये दिव्यध्वनि के द्वारा आर्यगणधरादिकों को समस्त तत्त्वों के साथ लोक, अलोक के पदार्थ समूह का उपदेश दिया था, जो अन्य तेईस तीर्थंकरों के अग्रज थे, विश्व के द्वारा पूजनीय थे, कर्मभूमि की व्यवस्था करने से विश्व के कर्ता और धर्म चक्र के अधिपति थे उन प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करता हूँ ॥२-३॥

---

१. गणेशनाम् अ.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आगे अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ भगवान् की स्तुति करते हैं–

प्रीणयित्त्वा जगद्भव्यान् यो ज्ञानामृतवर्षणैः।
विश्वमुद्योतयामास कृत्स्नाङ्गपूर्वभाषणैः ॥४॥
जगदानन्दकर्त्तारं धर्मामृतपयोधरम्।
नौमि चन्द्रप्रभं तं च योगिज्योतिर्गणावृतम् ॥५॥

अर्थ–जिन्होंने ज्ञानरूप अमृत की वर्षा से जगत् के भव्यजीवों को सन्तुष्ट किया, सम्पूर्ण अंग और पूर्व के व्याख्यानों द्वारा जगत् को प्रकाशित किया, जो सर्व प्रकार से जगत् में आनन्द के कर्ता एवं धर्मामृत को बरसाने के लिये मेघ स्वरूप हैं तथा जो योगिराजरूप ज्योतिष्क देवों से सदा घिरे रहते हैं ऐसे उन चन्द्रप्रभ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४-५॥

अब कामदेव, तीर्थंकर और चक्रवर्ती पद के धारक श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र की स्तुति करते हैं–

यो दिव्यध्वनिनोच्छिद्य मोहस्मराक्षतस्करान्।
कषायशत्रुभिः सार्द्धं व्यधाच्छान्तिं जगत्सताम् ॥६॥
तं कामचक्रितीर्थेश-पदत्रितयभागिनम्।
अनन्तर्द्धिगुणाम्भोधिं स्तौमि कर्मारिशान्तये ॥७॥

अर्थ–जिन्होंने अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा जगत् के भव्य जीवों के कषायरूप शत्रुओं के साथ साथ काम, मोह और इन्द्रियरूप चोरों का विनाश किया और उन्हें शान्ति प्रदान की तथा जो कामदेव, चक्रवर्ती एवं तीर्थंकर इन तीन पदों के भोक्ता हुए हैं, जो अनन्त ऋद्धियों एवं गुणों के समुद्र हैं ऐसे उन सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ भगवान् को मैं अपने ज्ञानावरणादि रूप कर्मशत्रुओं का विनाश करने के लिये नमस्कार करता हूँ ॥६-७॥

अब मोह तथा कामादि शत्रुओं को जीतने वाले श्री नेमिनाथ भगवान् को नमस्कार करते हैं–

मोहकामाक्षशत्रूणां भङ्क्त्वा बाल्येऽपि यो मुखम्।
वैराग्यज्ञानमुत्पाद्य दुर्लभां संयमश्रियम् ॥८॥
गृहीत्वाहत्य कर्मारीन् शुक्लध्यानासिनाकरोत्।
मुक्तिस्त्रीं स्ववशे नौमि नेमिनाथं तमूर्जितम् ॥९॥

अर्थ–बाल्य अवस्था में ही जिन्होंने मोह, काम और इन्द्रिय रूप शत्रुओं का मुख तोड़ कर वैराग्य और ज्ञान के बल पर दुर्लभ संयमरूपी लक्ष्मी को धारण किया, शुक्लध्यानरूप तलवार से जिन्होंने कर्म शत्रुओं का सर्वथा विनाश कर मुक्तिरूपी स्त्री को अपने स्वाधीन बना लिया है उन विशिष्ट बलशाली नेमिनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥८-९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आगे सर्व विघ्नों को नष्ट करने वाले श्री पार्श्वजिनेन्द्र की स्तुति करते हैं–

जित्वा यो ध्यानयोगेन वैरिदेवकृतान् परान्।
घोरोपसर्गजालांश्च महावाताम्बुवर्षणैः ॥१०॥
चकार केवलज्ञानं व्यक्तं विश्वाग्रदीपकम्।
स विश्वविघ्नहन्ता मे पार्श्वोऽस्तु विघ्नहानये ॥११॥

अर्थ–जिन्होंने अपने वैरी देव (कमठ के जीव) द्वारा प्रचण्ड वायु और वर्षाजन्य किये गये भयंकर उपसर्गों को अपने ध्यान के प्रभाव से जीतकर, तीन काल की पर्यायों से युक्त, समस्त द्रव्यों को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान को व्यक्त (प्राप्त) किया है, जिनके प्रभाव से संसार के समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं, ऐसे पार्श्वनाथ भगवान् मेरे विघ्नों की शान्ति करने वाले हों अर्थात् इस ग्रन्थ के निर्माण (या टीका) करने में आने वाले मेरे सम्पूर्ण विघ्नों को नष्ट करें ॥११-१२॥

अब धर्मतीर्थ नायक श्री वर्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार करते हैं–

येनोदितो द्विधा धर्मो यतिश्रावकसज्जनैः।
विश्वतत्त्वार्थसिद्धान्तैः सममद्यापि वर्तते ॥१२॥
स्थास्यत्यग्रे च कालान्तं स्वर्मुक्तिश्रीसुखप्रदम्।
वर्धमानं तमीडेऽहं वर्धमानगुणार्णवम् ॥१३॥

अर्थ–जिन वर्धमान जिनेन्द्र ने श्रावक और मुनिधर्म के भेद से दो प्रकार के धर्मों का प्रतिपादन किया था वह सात तत्त्व और नव पदार्थ रूप सिद्धान्त के साथ आज भी विद्यमान है और आगे भी इस काल के अन्तपर्यन्त विद्यमान रहेगा, ऐसे स्वर्ग और मोक्ष के सुख प्रदान करने वाले उन वर्धमान गुणशाली श्री वर्धमान प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ ॥१२-१३॥

आगे अजितनाथ आदि शेष तीर्थंकरों की स्तुति करते हैं–

शेषा ये तीर्थकर्तारो महान्तो धर्मचक्रिणः।
विश्वार्च्या धर्मराजा वा त्रिजगद्धितकारिणः ॥१४॥
लोकोत्तमाः शरण्याश्च विश्वमाङ्गल्यदायिनः।
तेषां पादाम्बुजान्[1] स्तौमि जगद्वन्द्यांस्तद्ऋद्धये ॥१५॥

अर्थ–शेष जो और तीर्थंकर हैं वे भी अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी के अधिपति होने से महान् हैं, धर्मचक्र के प्रवर्तक हैं, विश्वपूज्य एवं धर्म के सञ्चालक हैं, जो लोक में उत्तम एवं शरणभूत हैं, विश्व के पापहर्ता और सुख के दाता हैं ऐसे तीन लोकों के हितकारक उन समस्त तीर्थंकरों के जगद्वन्दनीय चरणों की मैं उनकी ऋद्धि प्राप्ति के निमित्त स्तुति करता हूँ ॥१४-१५॥

---

१. वन्दे अ.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब विदेह क्षेत्र के विद्यमान सीमन्धर आदि तीर्थंकरों का स्तवन करते हैं–

द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु ये श्रीसीमन्धरादयः[१]।
गणैर्वृताजिनाधीशा मुक्तिमार्गं च निस्तुषम् ॥१६॥
प्रवर्तयन्ति सद्धर्मं सर्वाङ्गार्थादिभाषणैः।
वर्तमानाः सुरार्च्यास्ते स्तुता मे सन्तु सिद्धये ॥१७॥

अर्थ–इस समय अढ़ाई द्वीप में गणधरादिकों के द्वारा पूजनीय विद्यमान सीमन्धर आदि तीर्थंकर हैं जो कि निष्कलंक मुक्ति मार्ग का प्रवर्तन कर रहे हैं, सम्पूर्ण (१२) अंगों एवं सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदि के उपदेशों द्वारा सद्धर्म का प्रचार कर रहे हैं तथा देव जिनकी पूजा करते रहते हैं, मैं सिद्धि प्राप्ति की कामना से उनकी स्तुति करता हूँ ॥१६-१७॥

आगे तीन काल सम्बन्धी चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करते हैं–

अन्ये तीर्थकृतो वा ये कालत्रितय सम्भवाः।
ते मया संस्तुता वन्द्या मे प्रदद्युर्निजान् गुणान् ॥१८॥

अर्थ–इसी प्रकार त्रिकालवर्ती और भी जो तीर्थंकर हैं मैं उन सबकी वन्दना करता हूँ। स्तुति करता हूँ। वे मुझे अपने सम्यग्दर्शनादि सद्गुणों को प्रदान करें। अर्थात् जो गुण उनमें प्रकट हो चुके हैं वे गुण मेरे में भी प्रकट हो जावें ऐसी भावना से मैं उनकी वन्दना और स्तुति करता हूँ ॥१८॥

आगे सम्यक्त्व आदि आठ गुणों के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी का स्तवन करते हैं–

अष्टकर्मारिकायादीन् ये महाध्यानयोगतः।
त्यक्त्वानन्तसुखोपेतं त्रैलोक्यशिखरं ययुः ॥१९॥
ताननन्तान् महासिद्धां-स्त्रिजगन्नाथवन्दितान्।
ध्येयानष्टगुणाधीशान् स्मरामि हृदि सिद्धये ॥२०॥

अर्थ–जो परमशुक्लध्यान के प्रभाव से अष्टकर्मरूपी शत्रुओं का विनाश और परमौदारिक शरीर का परित्याग कर अनन्त सुख सम्पन्न त्रैलोक्य शिखर पर जाकर विराजमान हो गये हैं, जिन्हें त्रिकालवर्ती समस्त तीर्थंकर देव नमस्कार करते हैं एवं जो ध्यान करने योग्य हैं, अष्ट कर्मों के विनाश से जिन्हें क्षायिक-सम्यक्त्वादि आठ गुण प्राप्त हो चुके हैं ऐसे उन अनन्त और महान् सिद्ध परमेष्ठियों का सिद्धि प्राप्ति की भावना से मैं अपने हृदय में ध्यान करता हूँ ॥१९-२०॥

---

१. सीमंधरः, युग्मंधरः, बाहुः, सुबाहुः, जम्बूद्वीपे। सुजातः, स्वयंप्रभः, वृषभाननः, अनन्तवीर्यः, शौरिप्रभः, सुविशालः, वज्रधरः, चन्द्राननः, एवं धातकीखण्डे। चन्द्रवाहः, भुजंगनाथः, ईश्वरः, नेमिप्रभः, वीरसेनः, महाभद्रः, देवयशाः, अतिवीर्यः, पुष्करार्धद्वीपे-एवं २०।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब छत्तीस गुणों के धारक आचार्य परमेष्ठी की स्तुति करते हैं–

पञ्चाचारान्जगत्ख्यातान् स्वर्मुक्तिश्रीवशीकरान्।
स्वयं चरन्ति ये मुक्त्यै चारयन्ति च योगिनः॥ २१॥
[१]षड्त्रिंशत्सद्गुणैः पूर्णाः सूरयो विश्वबान्धवाः।
तेषां पादाम्बुजान्नौमि शिरसाचारसिद्धये ॥ २२॥

अर्थ–मुक्ति प्राप्ति की कामना से जगत्प्रसिद्ध पाँच प्रकार के आचारों (दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चरित्राचार, तप आचार, वीर्याचार) का जो स्वयं पालन करते हैं और अन्य मुनिजनों को पालन करवाते हैं, जो स्वर्ग एवं मोक्ष लक्ष्मी को अपने स्वाधीन करने वाले हैं तथा जो छत्तीस गुणों से परिपूर्ण हैं ऐसे विश्वबन्धु रूप उन आचार्यों के चरण कमलों की मैं पाँच आचारों की प्राप्ति के लिये मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥२१-२२॥

आगे अंग और पूर्वों के ज्ञाता उपाध्याय परमेष्ठी की स्तुति करते हैं–

येऽङ्गपूर्वप्रकीर्णाब्धींस्तरन्ति शिवसिद्धये।
स्वयं सद्बुद्धिपोतेन तारयन्ति च सन्मुनीन् ॥२३॥
रत्नत्रयतपोभूषा अज्ञानध्वान्तनाशिनः।
तेषां [२]पाठकपूज्यानां स्तौमि क्रमाम्बुजांश्चिदे ॥२४॥

अर्थ–मुक्ति प्राप्ति के उद्देश्य से अपनी सद्बुद्धिरूपी जहाज के द्वारा जो स्वयं अंग, पूर्व और प्रकीर्णक रूप समुद्र को पार कर देते हैं तथा अन्य मुनिजनों को भी पार कराते हैं, जो रत्नत्रय से विभूषित और अज्ञानान्धकार के विनाशक हैं ऐसे उन पूज्य पाठकों (उपाध्यायों) के चरणकमलों को मैं ज्ञानप्राप्ति के निमित्त नमस्कार करता हूँ-उनकी स्तुति करता हूँ ॥२३-२४॥

अब आत्म साधना में लीन साधु परमेष्ठी का स्तवन करते हैं–

त्रिकाले दुष्करं योगं वृष्टिशीतोष्णसंकुले।
[३]साधयन्ति स्वसिद्ध्यै ये महान्तं भीरुभीतिदम् ॥२५॥
साधवस्ते मया वन्द्या महाघोरतपोन्विताः।
वनादौ ध्यानसंलीना मे भवन्तु स्वशक्तये ॥२६॥

अर्थ–जो वर्षा, शीत और ग्रीष्म इन तीन ऋतुओं में वर्षा, ठण्ड और गर्मी की बाधाओं को सहन करते हुए निर्जन वनादि में स्थित होकर आत्मसिद्धि के उद्देश्य से दुष्कर योग की साधना करते हैं ऐसे उन घोर तपस्वी साधुओं को मैं नमस्कार करता हूँ, वे मुझे आत्मशक्ति की प्राप्ति में निमित्त-कारण बनें ॥२५-२६॥

---

१. बारह तप छावासा पंचाचारा तहेव दह धम्मो। गुत्तितिए संजुत्ता छत्तीस गुणा मुणेयव्वा।
२. ग्यारह अंग वियाणइ चउदह पुव्वाइ णिरवसेसाइ। पणवीसं गुणजुत्ता णाणाए तस उवज्झाया।
३. दह दंसणस्स भेया पंचेव य हुंति णाणस्स। तेरह विहस्स चरणं अडवीसा हुंति साहूणं॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आगे चौबीस तीर्थंकरों के वृषभसेन आदि गणधरों की स्तुति करते हैं–

श्रीमद्वृषभसेनाद्या गौतमप्रमुखाश्च ये।
समस्तर्द्धिश्चतुर्ज्ञानं - भूषितागणनायकाः ॥२७॥
महाकविगुणैः पूर्णाः पूर्वाङ्गरचने क्षमाः।
मया वन्द्या स्तुता दद्युस्ते मे स्वगुणसन्मतीः ॥२८॥

अर्थ–वृषभसेन आदि और गौतम आदि समस्त गणधर जो कि सब प्रकार की ऋद्धियों एवं चार ज्ञानों से विभूषित हुए हैं, महाकवियों के श्रेष्ठ गुण वाले एवं अंगों और पूर्वों–आगमों की रचना करने में निपुण हुए हैं मैं उनकी वन्दना एवं स्तुति करता हूँ, वे मुझे आत्म गुणों की प्राप्ति में कारणभूत सन्मति–उत्तम बुद्धि प्रदान करे ॥२७–२८॥

अब जिनमुखोद्भूत स्याद्वाद वाणी रूप सरस्वती का स्तवन करते हैं–

यस्याः प्रसादतो मेऽभूद् सद्बुद्धिः श्रुतभूषिता।
रागातिगा पदार्थज्ञा सद्ग्रन्थकरणेक्षमा॥ २९॥
सा मया त्रिजगद्भव्यैर्मान्या वन्द्या स्तुता सदा।
शारदाऽर्हन्मुखोत्पन्नात्रास्तु विश्वार्थदर्शिनी ॥३०॥

अर्थ–जिसकी कृपा से मेरी बुद्धि श्रुतज्ञान से विभूषित हुई, रागद्वेष आदि से रहित हुई, पदार्थों के स्वरूप को जानने एवं समझने में समर्थ हुई और निर्दोष ग्रन्थों की रचना करने में पटु हुई तथा जिसकी प्रतिष्ठा तीनों जगत् के भव्यजीवों ने की है ऐसी वह जिनेन्द्रमुख से निर्गत हुई भारती शारदा मेरे द्वारा सदा वन्दनीय एवं स्तवनीय है। वह मुझे इस ग्रन्थ के निर्माण कार्य में एवं पूर्ण रूप से अर्थ के प्रदर्शन करने में सहायक होवे ॥२९–३०॥

आगे रत्नत्रय से विभूषित कुन्दकुन्दादि आचार्यों का स्मरण करते हैं–

अन्ये ये गुरवो ज्येष्ठा दृक्-चिद्-वृत्तादिसद्गुणैः।
सर्वसिद्धान्तवेत्तारः कुन्दकुन्दादिसूरयः ॥३१॥
बाह्यान्तर्ग्रन्थनिर्मुक्ता युक्ताः सद्गुणभूतिभिः।
कवयो वन्दनीयाश्च सतां मे सन्तु शुद्धये ॥३२॥

अर्थ–सर्व सिद्धान्त के ज्ञाता, बाह्य और अंतरंग परिग्रह से सर्वथा रहित, उत्तम–क्षमा आदि सद्गुणों से विभूषित, उत्तमोत्तम निर्दोष काव्यों की रचना करने में समर्थ मति वाले एवं सज्जनों द्वारा वंदनीय ऐसे कुन्दकुन्दादि आचार्यवर्य तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आदि सद्गुणों से विभूषित अन्य गुरुजन मुझे आत्मशुद्धि में निमित्तभूत बनें ॥३१–३२॥

अब त्रिलोकवर्ती कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय तथा उनमें विद्यमान जिनप्रतिमाओं की स्तुति करते हैं–

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

त्रैलोक्यसौधमध्ये ये कृत्रिमाः श्रीजिनालयाः।
अकृत्रिमा जिनेन्द्राणां प्रतिमाः कृत्रिमेतराः ॥३३॥
या हेम-रत्न-धात्वश्मादि मया यानि सन्ति च।
पुण्यनिर्वाणक्षेत्राणि तांस्तास्तानि स्तुवेऽर्चये ॥३४॥

अर्थ—तीन लोकरूपी भवन के बीच में जो कृत्रिम, अकृत्रिम श्री जिनालय हैं तथा उनमें जो हेम, रत्न, धातु एवं पाषाण आदि की बनी हुई कृत्रिम, अकृत्रिम प्रतिमाएँ हैं एवं जो पवित्र निर्वाण क्षेत्र हैं मैं उन सबकी स्तुति करता हूँ और पूजा करता हूँ ॥३३-३४॥

इस प्रकार मंगलाचरण कर ग्रन्थकर्त्ता सिद्धान्तसार दीपक ग्रन्थ के करने की प्रतिज्ञा करते हैं—

नत्वेति जिनतन्मूर्ति-सिद्धसिद्धान्तसद्गुरून्।
विश्वविघ्नहरान् स्वेष्टान् जगन्मांगल्यकारिणः ॥३५॥
विघ्नहान्यै च मांगल्याप्त्यै स्वान्यहितसिद्धये।
वक्ष्ये ग्रन्थं जगन्नेत्रं सिद्धान्तसारदीपकम् ॥३६॥

अर्थ—इस ग्रन्थ निर्माण में आने वाले समस्त विघ्नों की शान्ति एवं जगत् में मंगल प्राप्ति के उद्देश्य से मैं जिनेन्द्र, जिनेन्द्रप्रतिमा सिद्ध, सिद्धान्त एवं सद्गुरु इन सबको नमस्कार करके जगत् के नेत्र स्वरूप इस सिद्धान्तसार दीपक ग्रन्थ की स्व-पर के उपकारार्थ रचना करूँगा ॥३५-३६॥

आगे जिनागम की महिमा प्रकट करते हैं—

श्रुतेन येन भव्यानां करस्थामलकोपमम्।
त्रैलोक्यं निस्तुषं भाति ज्ञानं च वर्धतेतराम् ॥३७॥
संवेगादिगुणैः सार्धं रागोऽज्ञानं प्रणश्यति।
तदागमं जगच्चक्षु-र्ज्ञेयमत्रोदितं बुधैः ॥३८॥
यतः प्रोक्तं सुसाधूनां जिनैर्विश्वार्थदर्शने।
सदागममहाचक्षु - र्धर्मतत्त्वार्थदीपकम् ॥३९॥
तेनागमसुनेत्रेण विनान्धा इव देहिनः।
सचक्षुषोऽपि जानन्ति न किञ्चिच्च हिताहितम् ॥४०॥

अर्थ—इस सिद्धान्तसार ग्रन्थ के सुनने-पढ़ने से भव्यात्माओं को यह त्रिलोक हथेली में रखे हुए आंवले की तरह प्रतीत होने लगता है और उनके तत्सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि भी हो जाती है तथा संवेगादिक गुणों की प्राप्ति हो जाने से उनके अज्ञान एवं रागद्वेषादिरूप विकारों का भी विनाश हो जाता है, इसी कारण बुद्धिमानों ने आगम को 'जगत्चक्षु' कहा है और इसीलिये जिनेन्द्रदेव ने साधुओं को ऐसा उपदेश दिया है कि यदि तुम्हें सम्पूर्ण पदार्थों को जानना है तो सर्वप्रथम जीवादिक तत्त्वों, छह द्रव्यों और नौ पदार्थों को प्रकाशित करने वाले इस निर्दोष आगम रूप महाचक्षु का अवलम्बन करो, क्योंकि यही एक अति उत्तम नेत्र है। जिन प्राणियों के पास यह आगमरूप चक्षु नहीं है वे उसके बिना नेत्रों

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के रहते हुए भी, अन्धे के समान हैं, क्योंकि इसके अभाव में हिताहित का थोड़ा-सा भी ज्ञान नहीं हो सकता है ॥३७-४०॥

आगे ग्रन्थकर्ता अपनी लघुता प्रकट करते हैं–

यत्प्राक् पूर्वमुनीन्द्राद्यै-र्विश्वसिद्धान्तवेदिभिः।
सद्बुद्धिभिर्जगत्सारं प्रोक्तं सिद्धान्तमञ्जसा ॥४१॥
तद्दुर्गमार्थगम्भीर-मागमं विश्वगोचरम्।
कथं स्वल्पधिया वक्तुं मया शक्यं मनोहरम् ॥४२॥
अथवा प्राग्मुनीन्द्राणां प्रणामार्जितपुण्यतः।
स्तोकं सारं प्रवक्ष्यामि सिद्धान्तं विश्वसूचकम् ॥४३॥
निजशक्त्या मुदाभ्यस्य त्रैलोक्यसार दीपकम्।
सुगमं बालबोधायान्यान् ग्रन्थानागमोद्भवान् ॥४४॥

अर्थ–समस्त सिद्धान्त शास्त्रों के ज्ञाता एवं विशिष्ट ज्ञानी पूर्व मुनिराजों ने पहले त्रिलोकसार नामक सिद्धान्तग्रन्थ की रचना की है सो वह ग्रन्थ अति दुर्गम अर्थ वाला एवं गम्भीर है अतः मुझ अल्पज्ञ द्वारा वह जैसे का तैसा कैसे जाना जा सकता है, कहा जा सकता है? परन्तु फिर भी पूर्व मुनिराजों को किये गये नमस्कारजन्य पुण्य के प्रभाव से (उसका) थोड़ा-सा सार लेकर विश्वसूचक सिद्धान्त का कथन करूँगा। पहले मैं आगमों से जिनका सम्बन्ध है ऐसे उन ग्रन्थों का अपनी शक्ति के अनुसार प्रफुल्लित मन से अभ्यास करूँगा बाद में जिस प्रकार बालजनों को सुगम पड़े उस रूप से 'त्रैलोक्यसारदीपक' का कथन करूँगा ॥४१-४४॥

अब लोक के स्वरूप को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं–

तस्यादौ कीर्तयिष्यामि त्रैलोक्यस्थितिमूर्जिताम्।
तदाकारं समासेन भव्याः! शृणुत सिद्धये ॥४५॥

अर्थ–सर्वप्रथम अर्थात् सिद्धान्तसारदीपक की आदि में मैं तीनों लोकों की वास्तविक स्थिति का और फिर संक्षेप से उनके आकारों का वर्णन करूँगा, अतः हे भव्यजनों! सिद्धि के लिये तुम पहले उसे सावधान होकर सुनो ॥४५॥

लोकाकाश और अलोकाकाश की स्थिति एवं लक्षण कहते हैं–

सर्वोऽनन्तप्रदेशोऽस्त्याकाशः सर्वज्ञगोचरः।
नित्यस्तन्मध्यभागे स्याल्लोकाकाशस्त्रिधात्मकः ॥४६॥
[१]असंख्यातप्रदेशोऽसौ वातत्रितयवेष्टितः।
उडुवद्भाति खे पूर्णः षड्द्रव्यैश्चेतनेतरैः ॥४७॥

---

१. सुहुमेव होइ कालो तत्तो सुहुमो य होइ खित्तो य। अंगुल सेढी मित्तोऽसप्पिणी असंखिज्जा ॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—सर्वज्ञदेव के ज्ञान का विषयभूत सम्पूर्ण आकाश अनन्तप्रदेशी और शाश्वत है। उसके मध्यभाग में तीन प्रकार के भेदों से युक्त लोकाकाश है। जो असंख्यात प्रदेशी, तीन वातवलयों से वेष्टित और चेतन, अचेतन छह द्रव्यों से भरा हुआ है तथा अलोकाकाश में नक्षत्र के समान शोभायमान होता है ॥४६-४७॥

जीवाश्च पुद्गला धर्माधर्मकालाः स्थिताः सदा।
खे यावति विलोक्यन्ते लोकाकाशः स कथ्यते ॥४८॥
एतस्माच्च बहिर्भागे शाश्वतो द्रव्यवर्जितः।
सर्वज्ञगोचरोऽनन्तोऽलोकाकाशो जिनैर्मतः ॥४९॥

अर्थ—आकाश के जितने भाग में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल द्रव्य शाश्वत स्थित रहते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं और इसके (लोकाकाश के) बाह्य भाग में जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ पाँच द्रव्यों से रहित, सर्वज्ञगोचर, शाश्वत और अनन्त विस्तार वाला अलोकाकाश है ॥४८-४९॥

लोक के विषय में मतान्तरों का खण्डन करते हैं—

केनचिन्न कृतो लोको ब्रह्मादिनाथवा धृतः।
न च विष्णवादिना जातु न हृतश्चेश्वरादिना ॥५०॥

अर्थ—यह लोक न किन्हीं ब्रह्मा आदि के द्वारा बनाया हुआ है, न किन्हीं विष्णु आदि के द्वारा धारण, रक्षण किया हुआ है और न किन्हीं महादेव आदि के द्वारा विनाश को प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—यह लोक अकृत्रिम है, अतः ईश्वर आदि कोई इसके कर्ता नहीं हैं। अनादिनिधन है अतः कोई संहारक नहीं है और स्वभाव निवृत्त होने से इसका कोई रक्षक भी नहीं है।

अब सात श्लोकों द्वारा लोक का स्वरूप आदि कहते हैं—

किन्तु त्वचावृतो वृक्ष इव वातत्रयावृतः।
अनादिनिधनो लोको नानाकारस्त्रिधात्मकः ॥५१॥

अर्थ—किन्तु यह लोक त्वचा (छाल) से वेष्टित, वृक्ष के सदृश तीन वातवलयों से वेष्टित, अनादिनिधन अर्थात् आदि अन्त से रहित, अनेक संस्थानों (आकारों) से युक्त और ऊर्ध्व, मध्य एवं अधोलोक के भेद से तीन भेद वाला है ॥५१॥

स्थापितस्याप्यधोभागे मुरजार्धस्य मस्तके।
धृतेऽत्र मुरजे पूर्ण ह्याकारो यादृशो भवेत् ॥५२॥
तादृशाकारलोकोऽयं सार्धैकमुरजाकृतिः।
किन्तु स्यान्मुरजो वृत्तो लोकः कोणचतुर्मयः ॥५३॥

अर्थ—अर्धमुरजाकार अधोलोक के मस्तक पर पूर्ण मुरज को स्थापित करने से जैसा आकार बनता है वैसा ही अर्थात् डेढ़ मुरज के आकार वाला यह लोक है। मुरज (मृदंग) गोल होती है किन्तु लोक चार कोणों से युक्त है ॥५२-५३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विशेषार्थ—श्लोक में लोक का आकार डेढ़ मृदंगाकार कहा है, उसका भाव यह है कि जैसे अर्धमुरज नीचे चौड़ी और ऊपर सँकरी होती है, उसी प्रकार अधोलोक नीचे सात राजू चौड़ा और क्रम से घटता हुआ मध्य लोक में एक राजू चौड़ा रह गया है। इसके ऊपर एक मुरजाकार ऊर्ध्वलोक कहा गया है, इसका भाव भी यह है कि जैसे मुरज नीचे ऊपर सँकरी और बीच में चौड़ी होती है। उसी प्रकार ऊर्ध्वलोक भी नीचे मध्यलोक में एक राजू चौड़ा है। इसके ऊपर क्रम से बढ़ता हुआ बीच में पाँच राजू चौड़ा हो जाता है और पुनः क्रम से घटता हुआ अन्त में एक राजू चौड़ा रह जाता है।

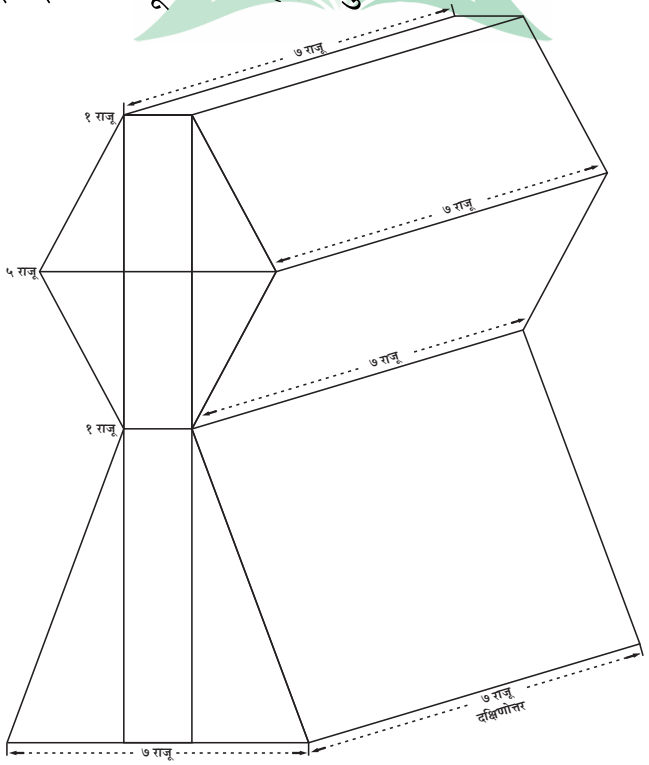
यहाँ लोक को मृदंगाकार कहा है उसका अर्थ यह नहीं है कि लोक मृदंग के सदृश बीच में पोला भी है, किन्तु वह तो ध्वजाओं के समूह सदृश भरा हुआ है। (त्रिलोकसार गा० ६) लोकाकाश मृदंग के सदृश गोल नहीं है किन्तु नीचे सात राजू लम्बा और सात राजू चौड़ा है, तथा बीच में मध्यलोक पर पूर्व-पश्चिम एक राजू, उत्तर-दक्षिण सात राजू है, ऊर्ध्वलोक भी मध्य में पूर्व-पश्चिम पाँच राजू, उत्तर-दक्षिण सात राजू तथा अन्त में एक राजू और सात राजू है।

मृदंगाकार कहने का यह भी भाव नहीं है कि लोक मृदंग के सदृश गोल है। यदि लोक को मृदंग समान गोल माना जाय तो उसकी आकृति निम्न प्रकार होगी तथा उसका सम्पूर्ण घनफल

(१०६ $\frac{२६१}{१३५६}$ घनराजू अधोलोक का + ५८ $\frac{६७}{१३५६}$ घनराजू ऊर्ध्वलोक का) = १६४ $\frac{३२८}{१३५६}$ घनराजू

प्रमाण प्राप्त होगा जो ३४३ घनराजू के संख्यात भाग प्रमाण होता है। (ध० पु० ४ पृ० १२-२२)

जिनेन्द्र भगवान् ने लोक का आकार चौकोर कहा है क्योंकि चौकोर लोक का घनफल ७ राजू (श्रेणी) के घनस्वरूप ३४३ घनराजू प्रमाण है। चतुरस्राकार लोक की आकृति-



FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उपर्युक्त चित्रण में अधोलोक के अन्त में चार कोण, मध्य लोक के समीप चार कोण, ब्रह्मलोक के समीप चार कोण और लोकान्त में चार कोण बनते हैं।

[१]वा प्रसारितपादस्य कटीधृतकरस्य च।
स्थितस्य पुरुषस्यैवात्राकारो यादृशो भवेत् ॥५४॥
लोकोऽयं तादृशाकारः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः॥
अधोमध्योर्ध्वभेदेन त्रिविधः शाश्वतः स्थितः ॥५५॥

अर्थ—अथवा पैर फैलाकर, कमर पर (दोनों) हाथ रखकर उत्तरमुख स्थित पुरुष का जैसा आकार बनता है वैसे ही आकार को धारण करने वाला यह लोक (षड्द्रव्यों की अपेक्षा) उत्पाद, व्यय और ध्रुव स्वभाव की त्रिविधता से युक्त, अथवा ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक के भेद की त्रिविधता से युक्त नित्य ही स्थित है ॥५४-५५॥

अधोवेत्रासनाकारो मध्येऽयं झल्लरीसमः।
मृदङ्गसदृशश्चोर्ध्वे त्रिधेति तस्य संस्थितिः ॥५६॥

अर्थ—अधोलोक का आकार वेत्रासन सदृश, मध्यलोक का झल्लरी सदृश और ऊर्ध्वलोक का आकार मृदंग के सदृश है, इस प्रकार लोक की संस्थिति (आकार) तीन प्रकार कहा गया है ॥५६॥

आमूलादूर्ध्वपर्यन्तं लोकोऽयमुन्नतो मतः।
विचित्राकार आप्तज्ञैः स्याच्चतुर्दशरज्जुभिः ॥५७॥

अर्थ—आप्त को जानने वालों के द्वारा नाना प्रकार के आकारों को धारण करने वाले इस लोक की नीचे से ऊर्ध्वलोक पर्यन्त की ऊँचाई चौदह राजू कही गई है ॥५७॥

अब सात श्लोकों द्वारा लोक के भेद एवं उनका प्रमाण कहा जाता है—

आमूलान्मध्यलोकान्तमाम्नाता योन्नतिर्जिनैः।
सप्तरज्जुप्रमाणास्या-धोलोकस्य जिनागमे ॥५८॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा जिनागम में आदि-मूल से मध्यलोक के अन्त तक की जो सात राजू प्रमाण आकाशोन्नति कही गई है वही अधोलोक की ऊँचाई है। अर्थात् अधोलोक की ऊँचाई सात राजू प्रमाण है ॥५८॥

मध्यलोकाद् बुधैर्ज्ञेया ब्रह्मकल्पान्तमुच्छ्रितिः।
अस्योर्ध्वलोकभागस्य सार्धरज्जुत्रयप्रमा ॥५९॥

अर्थ—विद्वानों के द्वारा मध्यलोक से ब्रह्मकल्प के अन्त तक की जो साढ़े तीन राजू प्रमाण ऊँचाई ज्ञात की गई है वही इस ऊर्ध्वलोक के एक भाग की ऊँचाई है। अर्थात् मध्यलोक से ब्रह्मलोक तक के ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई ३$\frac{१}{२}$ राजू प्रमाण है ॥५९॥

---

१. विगय सिरो कडिहत्थो ताडियजंघोजुउ णरो उड्ढो। तेणा यारेण ट्ठिउ त्तिविहो लोओ मुणेयव्वो॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ब्रह्मलोकात्ततोऽप्यूर्ध्वं यावल्लोकाग्रमस्तकम्।
उत्सेधोऽस्यागमे प्रोक्तः सार्धत्रिरज्जुसन्मितः ॥६०॥

अर्थ—ब्रह्मलोक से ऊपर लोक के मस्तक पर्यन्त जितना उत्सेध आगम में कहा है वह साढ़े तीन राजू प्रमाण है। अर्थात् ब्रह्मलोक से लोक के अन्त पर्यन्त ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई ३ $\frac{१}{२}$ राजू प्रमाण है ॥६०॥

अस्यायामोऽस्ति सर्वत्र दक्षिणोत्तरभागयोः।
सप्तरज्जुप्रमाणः किलामूलमस्तकान्तयोः ॥६१॥

अर्थ—इस लोक के दक्षिणोत्तर भाग का आदि से अन्त पर्यन्त अर्थात् नीचे से ऊपर तक का आयाम (दीर्घता) सर्वत्र सात राजू प्रमाण है। अर्थात् लोक दक्षिणोत्तर भाग में सर्वत्र सात राजू प्रमाण है ॥६१॥

पूर्वापरेणलोकस्य ह्रासवृद्धीस्मृते बुधैः।
मूलेऽस्य विस्तृति र्ज्ञेया सप्तरज्जुप्रमाखिला ॥६२॥
क्रमहान्या ततोऽप्यस्य मध्यलोके जिनागमे।
रज्ज्वेको व्यास आम्नातो गणाधीशैर्गणान् प्रति ॥६३॥
ततश्च क्रमवृद्ध्यास्य ब्रह्मलोकेऽस्ति विस्तृतिः।
पञ्चरज्जुप्रमामूर्ध्नि रज्ज्वेका क्रमहानितः ॥६४॥

अर्थ—ज्ञानियों के द्वारा लोक के पूर्व-पश्चिम भाग का विस्तार हानि-वृद्धि रूप माना गया है। लोक के मूल में पूर्व पश्चिम विस्तार सात राजू प्रमाण है। इसके बाद क्रम से हानि होते होते मध्यलोक पर पूर्व-पश्चिम विस्तार जिनागम में जिनेन्द्रों के द्वारा मुनिसमूह के लिए एक राजू प्रमाण कहा है। मध्यलोक के ऊपर क्रम से वृद्धि होते होते ब्रह्मलोक पर लोक का विस्तार पाँच राजू और वहाँ से क्रमशः हानि होते होते लोक के मस्तक का विस्तार एक राजू प्रमाण है ॥६२-६४॥

अब चार श्लोकों द्वारा अधोलोक का क्षेत्रफल एवं घनफल कहते हैं—

अधोभागेऽस्य लोकस्य व्यासेन सप्तरज्जवः।
रज्ज्वेकामध्यभागे च तयोः पिण्डीकृते सति ॥६५॥
जायन्ते रज्जवोऽप्यष्टौ तासामर्धी कृते पुनः।
चतस्रो रज्जवः स्युस्ता गुणिताः सप्तरज्जुभिः ॥६६॥
अष्टाविंशतिसंख्याश्चोत्पद्यन्ते रज्जवः पुनः।
अष्टाविंशतिसंख्यास्ता वर्गिताः सप्तरज्जुभिः ॥६७॥
शतैकं षण्णवत्यग्रं भवन्ति रज्जवोऽखिलाः।
पिण्डीकृता घनाकारेणाधोलोकस्य निश्चितम् ॥६८॥

अर्थ—इस लोक के अधोभाग में व्यास सात राजू और मध्यभाग (मध्यलोक) पर व्यास एक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

राजू प्रमाण है। इन दोनों को जोड़ देने से (७+१) आठ राजू होता है और इसे आधा करने पर (८/२) चार राजू प्राप्त होते हैं। (अधोलोक से मध्यलोक तक की ऊँचाई सात राजू है अतः) इन चार को सात से गुणित करने पर (४×७)=२८ वर्ग राजू अधोलोक का क्षेत्रफल उत्पन्न हो जाता है और इस २८ वर्ग राजू क्षेत्रफल को (दक्षिणोत्तर मोटाई) सात राजू से गुणित कर देने पर सम्पूर्ण अधोलोक का घनफल (२८×७)=१९६ घनराजू प्रमाण प्राप्त होता है। अर्थात् अधोलोक का क्षेत्रफल २८ वर्गराजू और घनफल १९६ घनराजू प्रमाण है ॥६५-६८॥

ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल एवं घनफल आठ श्लोकों द्वारा कहते हैं—

ब्रह्मकल्पेऽस्य विस्तारः पञ्चरज्जुप्रमाणकः।
मध्यभागे च रज्ज्वेकस्तयोर्मेलापके कृते ॥६९॥
षड्रज्जवो भवेयुश्च तासामर्धी कृते सति।
गृह्यन्ते रज्जवस्तिस्त्रः सप्तभिर्गुणिताश्च ताः ॥७०॥
एकविंशतिसंख्याता जायन्ते रज्जवः पुनः।
ताः सर्वा वर्गिताः सार्धत्रिकैर्भवन्ति पिण्डिताः ॥७१॥
रज्जवोऽप्यूर्ध्वभागेऽस्य ब्रह्मलोकान्तमञ्जसा।
घनाकारेण सर्वत्र सार्धत्रिसप्तति प्रमाः ॥७२॥

अर्थ—इस लोक का विस्तार ब्रह्मकल्प पर पाँच राजू और मध्यलोक पर एक राजू प्रमित है। इन दोनों को जोड़ देने से (५+१)=६ राजू होते हैं और उन्हें आधा करने पर (६ २)=३ राजू प्राप्त होते हैं। मध्यलोक से ब्रह्मलोक की ऊँचाई ३$\frac{१}{२}$ राजू है अतः तीन को ३$\frac{१}{२}$ राजू ऊँचाई से गुणित करने पर ($\frac{७}{२} \times \frac{३}{१}$) = $\frac{२१}{२}$ वर्ग राजू मध्यलोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त अर्थात् अर्ध ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ इसके उत्तर-दक्षिण सात राजू मोटाई से गुणित कर देने पर ब्रह्मलोक पर्यन्त ऊर्ध्वलोक का घनफल ($\frac{२१}{२} \times \frac{७}{१}$) = $\frac{१४७}{२}$ अर्थात् ७३ $\frac{१}{२}$ घनराजू प्रमाण प्राप्त होता है ॥६९-७२॥

नोट—श्लोक में तीन को पहले सात से गुणित करके २१ प्राप्त किये गये हैं, फिर ३ $\frac{१}{२}$ राजू ऊँचाई से गुणित किया गया है, इस प्रक्रिया से घनफल तो प्राप्त हो जाता है किन्तु क्षेत्रफल प्राप्त नहीं होता क्योंकि क्षेत्रफल निकालने का नियम है ''मुखभूमिजोगदलेपदहदे' अर्थात् मुख और भूमि के योगफल को आधा करके ऊँचाई से गुणित करने पर क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इसी नियम को दृष्टि में रखते हुए उपर्युक्त श्लोकों का अर्थ किया गया है और आगे श्लोक नं० ७४, ७५ का भी अर्थ किया जायेगा।

व्यासोऽस्य ब्रह्मकल्पान्ते रज्जुपञ्चप्रमः क्रमात्।
हीयमानश्च रज्ज्वेको मस्तकाग्रे तयोः प्रति ॥७३॥
पिण्डीकृते प्रजायन्ते षड्रज्जवोऽखिलास्ततः।
द्विभागीसंकृते तासां तिस्त्रः स्यू रज्जवश्च ताः ॥७४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सप्तभिर्गुणिता जायन्ते ह्येकविंश रज्जवः।
पुनस्ता वर्गिताः सार्धत्रिभिः सार्धत्रिसप्ततिः ॥७५॥
पिण्डीकृता भवन्त्यूर्ध्वलोकस्य रज्जवोऽखिलाः।
घनाकारेण लोकाग्रपर्यन्तं ब्रह्मकल्पतः ॥७६॥

अर्थ—ब्रह्मकल्प पर लोक का व्यास पाँच राजू प्रमाण है, और क्रम से हीन होते होते लोक के अग्रभाग का व्यास एक राजू प्रमित रह जाता है। इन दोनों को जोड़ देने से (५+१)=६ राजू होते हैं। इन्हें आधा करने पर (६ २) = ३ राजू प्राप्त होते हैं। इन तीन को $३\frac{१}{२}$ ऊँचाई से गुणित करने पर अर्ध ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल $(३ \times \frac{७}{२}) = \frac{२१}{२}$ अर्थात् $१०\frac{१}{२}$ वर्ग राजू प्राप्त होता है। इसको सात राजू मोटाई से गुणित कर देने पर $(\frac{२१}{२} \times \frac{७}{१}) = \frac{१४७}{२}$ अर्थात् $७३\frac{१}{२}$ घनराजू प्रमाण घनफल अर्ध ऊर्ध्वलोक का अर्थात् ब्रह्मलोक से लोकाग्र पर्यन्त का जानना चाहिए। लोक के दोनों अर्ध ऊर्ध्व भागों का घनफल मिला देने से सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक का घनफल $(७३\frac{१}{२} + ७३\frac{१}{२})$ = १४७ घनराजू प्रमाण होता है ॥७३-७६॥

अब सम्पूर्ण लोक का घनफल कहते हैं—

इति लोकत्रयस्यास्य सघनाकारेण रज्जवः।
शतत्रयत्रिचत्वारिंशदग्रप्रमिता मताः ॥७७॥

अर्थ—इस प्रकार तीनों लोकों का सम्पूर्ण घनफल (अधोलोक का १९६ घनराजू और ऊर्ध्वलोक का १४७ घनराजू, १९६+१४७)=३४३ घनराजू प्रमाण जानना चाहिए। अर्थात् सम्पूर्ण लोकाकाश के यदि एक राजू लम्बे, एक राजू चौड़े और एक राजू मोटे टुकड़े किये जायें तो सम्पूर्ण टुकड़ों की संख्या ३४३ प्राप्त होगी ॥७७॥

अब दो श्लोकों द्वारा लोक की परिधि का निरूपण किया जाता है—

लोकस्य परिधिर्ज्ञेया पूर्वपश्चिमभागयोः।
रज्जूनां साधिकैकोन चत्वारिंशत्प्रमाखिलाः ॥७८॥

अर्थ— लोक की पूर्व पश्चिम भाग की सम्पूर्ण परिधि कुछ अधिक ३९ राजू प्रमाण जानना चाहिए ॥७८॥

विशेषार्थ—लोक को पूर्व-पश्चिम दिशा से देखने पर उसमें त्रस नाली के द्वारा बनाये गये दो त्रिभुज अधोलोक में और चार त्रिभुज ऊर्ध्व लोक में दिखाई देते हैं, जिनके कारणों की परिधि क्रमशः $१५\frac{७}{३०}$ राजू और $१६\frac{४}{३२}$ राजू है। लोक के ऊपर की चौड़ाई १ राजू और नीचे की चौड़ाई ७ राजू प्रमाण है, इस प्रकार पूर्व पश्चिम अपेक्षा लोक की सम्पूर्ण परिधि $(१५\frac{७}{३०} + १६\frac{४}{३२} + १ + ७) = ३९\frac{४३}{१२०}$ राजू प्रमाण है। यह परिधि साधिक ३९ राजू कैसे है? इसका उत्तर ज्ञात करने के लिये त्रिलोकसार की गाथा १२२ दृष्टव्य है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ख्यातास्य परिधिर्दक्षैर्दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः।
मूलाग्रयोश्च रज्जुद्विचत्वारिंशन्मिता स्मृता ॥७९॥

अर्थ—लोक की दक्षिणोत्तर दिशा में दोनों पार्श्वभागों की तथा मूल और अग्रभाग की सम्पूर्ण परिधि दक्ष-ज्ञानी जनों के द्वारा ४२ राजू प्रमाण कही गई है ॥७९॥

विशेषार्थ—लोक की ऊँचाई चौदह राजू प्रमाण है और दक्षिणोत्तर लोक सर्वत्र सात राजू चौड़ा है, अतः लोक के ऊपर की ७ राजू चौड़ाई, नीचे की सात राजू चौड़ाई और दोनों पार्श्वभागों की १४, १४ राजू ऊँचाई जोड़ देने से (७ + ७ + १४ + १४) = ४२ राजू दक्षिणोत्तर लोक की परिधि होती है। इसका चित्रण त्रिलोकसार गाथा १२१ में देखना चाहिए।

लोक को परिवेष्टित करने वाले तीन वातवलयों का निरूपण ग्यारह श्लोकों द्वारा करते हैं—

घनोदधिघनाख्यश्च तनुवात इमे त्रयः।
सर्वतो लोकमावेष्ट्य नित्यास्तिष्ठन्ति वायवः ॥८०॥
आद्यो गोमूत्रवर्णोयं मुद्गवर्णो द्वितीयकः।
पञ्चवर्णस्तृतीयः स्याद् बहिर्वलयमारुतः ॥८१॥

अर्थ—सम्पूर्ण लोक को परिवेष्टित करते हुए घनोदधि, घन और तनु ये तीन पवन नित्य ही स्थित रहते हैं। इनमें आद्य अर्थात् घनोदधि वातवलय का वर्ण गोमूत्र के सदृश, दूसरे घनवातवलय का वर्ण मूँग (अन्न) के सदृश और तीसरे तनुवातवलय का वर्ण पञ्चवर्णों के सदृश है ॥८०-८१॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार वृक्ष छाल से वेष्टित रहता है उसी प्रकार यह लोक सर्वत्र तीन तहों या परतों के सदृश तीन पवनों से वेष्टित है। इसकी प्रथम तह लोक को स्पर्शित करने वाली एवं गोमूत्र वर्ण वाली घनोदधि नामक पवन की है। दूसरी तह मध्य में है, जिसका नाम घनवात है और वर्ण मूँग के सदृश है। तीसरी तह बाह्य में है जो पंच वर्ण वाली है और तनुवात के नाम से विख्यात है।

लोकस्याधस्तले भागे महातमःप्रभाक्षितेः।
पार्श्वयोरेकरज्ज्वन्तमन्तरेष्वपि सप्तसु ॥८२॥
सप्तनारक पृथ्वीनां स्थूलत्वं मरुतां मतम्।
प्रत्येकं योजनानां च सहस्रविंशतिप्रमम् ॥८३॥
दण्डाकारा[१] भवन्त्येते लोकाधोभूतलान्तरे।
दण्डाकारा घनीभूता लोकान्ते वायवस्त्रयः ॥८४॥

अर्थ— लोकाकाश के अधोभाग में, सातवें नरक से नीचे नीचे अर्थात् दोनों पार्श्व भागों में नीचे से ऊपर की ओर एक राजू की ऊँचाई (निगोद स्थान) पर्यन्त, लोक के अभ्यन्तर भाग में सातों नरक पृथिवियों के नीचे सातों नरकों की जो सात पृथिवियाँ हैं (और ८ वीं ईषत्प्राग्भार पृथ्वी के नीचे) उनमें

१ एष श्लोकः अ. ज. न. प्रतिषु नास्ति।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दण्डाकार (रज्जू आकार) प्रत्येक पवन बीस बीस हजार योजन की मोटाई को लिये हुए हैं। इस प्रकार ये तीनों पवन अधोलोक में सातों पृथिवियों के नीचे, लोक के अन्त में अर्थात् लोक के ऊपर प्राग्भार पृथ्वी के नीचे अर्थात् आठों पृथिवियों के नीचे सघन और दण्ड के आकार को धारण करने वालीं हैं ॥८२-८४॥

महातमः प्रभापार्श्वे वातानां स्थौल्यमञ्जसा।
सप्तैव पञ्चचत्वारि प्रत्येकं योजनान्यपि ॥८५॥
नृलोके क्रमहान्यात्र पञ्चचत्वारि त्रीणि च।
स्थौल्यं वातत्रयाणां हि योजनानि पृथक् पृथक् ॥८६॥
बाहुल्यं ब्रह्मलोकान्ते वायूनां योजनानि च।
सप्तपञ्चैव चत्वारि प्रत्येकं क्रमवृद्धितः ॥८७॥
क्रमहान्योर्ध्वलोकान्तेऽमीषां स्थूलत्वमञ्जसा।
प्रत्येकं पञ्च चत्वारि त्रीणि सद्योजनानि च ॥८८॥

अर्थ— सप्तम नरक के दोनों पार्श्व भागों में घनोदधिवातवलय सात योजन, घनवातवलय पाँच योजन और तनुवातवलय चार योजन मोटाई वाले हैं। इसके ऊपर क्रम से घटते हुए मनुष्य (मध्य) लोक के समीप तीनों वातवलय क्रम से पृथक्-पृथक् पाँच योजन, चार योजन और तीन योजन बाहुल्य वाले प्राप्त होते हैं तथा यहाँ से ब्रह्मलोक पर्यन्त क्रमशः बढ़ते हुए सात योजन, पाँच योजन और चार योजन मोटाई वाले हो जाते हैं और ब्रह्मलोक से क्रमानुसार हीन होते हुए तीनों पवन लोक के अन्त में अर्थात् ऊर्ध्वलोक के निकट क्रमशः पाँच योजन, चार योजन और तीन योजन बाहुल्य वाले हो जाते हैं ॥८५-८८॥

घनोदधौ च लोकाग्रे स्थौल्यं क्रोशाद्वयं मतम्।
क्रोशैकं घनवाते च तनुवाते धनूंषि वै ॥८९॥
पञ्चसप्तति युक्तानि शतपञ्चदशेत्ययम्।
सर्वतोप्यावृतो लोकः सर्वो वातत्रयैर्भवेत्॥९०॥

अर्थ— लोक के अग्रभाग पर घनोदधिवातवलय की मोटाई २ कोश, घनवातवलय की एक कोश और तनुवातवलय की मोटाई १५७५ धनुष प्रमाण है। इस प्रकार यह लोक सभी ओर से तीन वातवलयों के द्वारा वेष्टित है ॥८९-९०॥

अब चार श्लोकों द्वारा त्रसनाली के स्वरूप आदि का विवेचन करते हैं—

उदूखलस्य मध्याधोभागे छिद्र कृते यथा।
वंशादिनालिका क्षिप्ता चतुष्कोणा तथास्य च॥९१॥

अर्थ—ऊखली के मध्य बीचों बीच अधोभाग पर्यन्त छिद्र करके उसमें बाँस आदि की चतुष्कोण नाली डाल देने पर जैसा आकार बनता है वैसा ही आकार लोक नाली का है ॥९१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

लोकस्य मध्यभागेऽस्ति त्रसनाडी त्रसान्विता॥
चतुर्दशमहारज्जूत्सेधा रज्ज्वेक विस्तृता॥९२॥
त्रसनाड्या बहिर्भागे त्रसाः सन्ति न जातुचित्।
समुद्घातौ विना केवलिमारणान्तिकात्मनौ ॥९३॥

अर्थ—लोक के मध्यभाग में त्रस जीवों से समन्वित, चौदह राजू ऊँची और एक राजू चौड़ी त्रसनाड़ी (नाली) है। इस त्रस नाड़ी के बाह्य भाग में केवलि समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात (और उपपाद) के बिना कभी भी अर्थात् अन्य किसी भी अवस्थाओं में त्रस जीव नहीं पाये जाते ॥८२-८३॥

विशेषार्थ—लोक ३४३ घनराजू प्रमाण है। उसमें त्रसनाड़ी का घनफल (१४×१×१) १४ घनराजू प्रमाण है और इतने ही क्षेत्र में त्रसजीवों का सद्भाव पाया जाता है, शेष (३४३-१४ घनराजू)=३२९ घनराजू क्षेत्र त्रसनाड़ी से बाह्य क्षेत्र कहलाता है। इस बाह्य क्षेत्र में मात्र स्थावर जीव ही पाये जाते हैं, त्रस नहीं। अर्थात् त्रसपर्याय समन्वित जीव नहीं पाये जाते किन्तु उपपाद, मारणान्तिक और केवलि समुद्घात वाले त्रस जीवों के आत्मप्रदेशों का सत्त्व वहाँ अवश्य पाया जाता है। जीव का अपनी पूर्व पर्याय को छोड़ने पर नवीन आयु के प्रथम समय को उपपाद कहते हैं। पर्याय के अन्त में मरण के निकट होने पर बद्धायु के अनुसार जहाँ पर उत्पन्न होना है, वहाँ के क्षेत्र को स्पर्श करने के लिए जो आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना है वह मारणान्तिक समुद्घात है। १३ वें गुणस्थान के अन्त में आयु कर्म के अतिरिक्त शेष तीन अघातिया कर्मों की स्थिति क्षय के लिए केवली के (दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण आकार से) आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना केवली समुद्घात है।

इति बहुविधरूपां लोकनाडीं समग्रां,
जिनगणधरदेवैः प्रोदितामङ्गपूर्वे।
शिवगतिसुखकामाश्चावबुद्ध्याश्रयध्वं ,
सकलचरणयोगैर्लोकमूर्ध्वस्थमोक्षम् ॥९४॥

अर्थ—हे मोक्ष सुख के इच्छुक! श्रेष्ठ गणधरदेवों के द्वारा अंगपूर्व में कही गई अनेक स्वरूप वाली सम्पूर्ण लोकनाड़ी को जानकर सकल चारित्र के योग द्वारा लोक के अग्रभाग में स्थित मोक्ष का आश्रय करो ॥९४॥

अधिकार गत अन्तिम मङ्गलाचरण—

तन्निर्वाणमनन्तसौख्यजनकं ये सिद्धनाथाः श्रिता-
स्तीर्थेशाश्च तपोवरैः सुचरणैर्गन्तुं द्रुतं प्रोद्यताः।
पञ्चाचार परायणाश्च गणिनो ये पाठकाः साधव-
स्तेषां पादसरोरुहान् स्वशिरसा तद्भूतये नौम्यहम्॥९५॥

इति श्री सिद्धान्तसार दीपके महाग्रन्थे भट्टारक-श्री-सकलकीर्ति-विरचिते लोकनाड़ीरूप-वर्णनोनाम प्रथमोधिकारः ॥१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—जो सिद्ध परमेष्ठी और तीर्थंकर देव अनन्त सुख को उत्पन्न करने वाले निर्वाण का आश्रय ले चुके हैं, तथा उत्कष्ट तप और सम्यक्चारित्र के द्वारा पञ्चाचार परायण आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय एवं साधुगण शीघ्र ही मोक्ष में जाने के लिये उद्यमवान् हो रहे हैं ऐसे उन पञ्चपरमेष्ठियों के चरण कमलों को मैं मोक्ष की विभूति के लिये शिर से नमस्कार करता हूँ ॥९५॥

इस प्रकार श्री सकलकीर्ति भट्टारक द्वारा विरचित महाग्रन्थ सिद्धान्तसारदीपक में लोकनाड़ी का वर्णन करने वाला प्रथम अधिकार सम्पूर्ण हुआ।

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

द्वितीय अधिकार

अधोलोक में श्वभ्र स्वरूप

अधिकार के आदि में मङ्गलाचरण करते हैं–

लोकनाडिगतान् पञ्च महतः परमेष्ठिनः।
स्वर्गमुक्तिकरान् वन्दे सतां श्वभ्रनिवारकान् ॥१॥

अर्थ–लोकनाड़ी में स्थित, स्वर्ग और मुक्ति सुखों को करने–देने वाले तथा सज्जन पुरुषों का नरकगति से निवारण करने वाले परमोत्कृष्ट पञ्चपरमेष्ठियों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

वक्ष्यमाण अधोलोक के वर्णन का हेतु और प्रतिज्ञा–

अथ वैराग्यसंसिद्ध्यै पाप्यङ्गिभीतिहेतवे।
अधोलोकं प्रवक्ष्येऽहं लोकस्य श्वभ्रवर्णनैः॥२॥

अर्थ–वैराग्य की प्राप्ति के लिए और लोक के पापी जीवों को भय उत्पन्न कराने के लिए अब मैं नरकों के वर्णन द्वारा अधोलोक को कहूँगा। अर्थात् नरकों के दुःखों को सुनकर–पढ़कर वैराग्य की प्राप्ति हो और पापों से भय हो इसलिए नरकों के कथन द्वारा आचार्य अधोलोक का विस्तृत वर्णन करेंगे।

अधोलोक में सातों पृथिवियों की स्थिति एवं नाम तीन श्लोकों द्वारा कहते हैं–

महामेरोरधोभागे रज्ज्वैकैकान्तरस्थिताः।
स्पृशन्त्यः सर्वलोकान्तं सप्तेमाः श्वभ्रभूमयः ॥३॥
आद्या रत्नप्रभाशर्कराप्रभाबालुकाप्रभा।
पङ्कधूमप्रभाभिख्ये तमोमहातमःप्रभे ॥४॥
इतिप्रभोत्थनामानि पृथ्वीनां श्रीजिना विदुः।
तथा पर्यायनामानीमानि ज्ञेयानि कोविदैः॥५॥

अर्थ–सुदर्शनमेरु के अधोभाग में सात नरक भूमियाँ लोक के अन्त को स्पर्श करती हुई एक एक राजू के अन्तराल से स्थित हैं। इनमें १. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा, ३. बालुका प्रभा, ४. पङ्कप्रभा ५. धूमप्रभा, ६. तमःप्रभा और ७. महातमःप्रभा नाम वाली पृथिवियाँ हैं, अपनी अपनी प्रभा से उत्पन्न होने वाले ये पृथिवियों के नाम जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं तथा विद्वानों के द्वारा जाने गये इन्हीं पृथिवियों के पर्यायवाची नाम आगे कहे जावेंगे ॥३–५॥

विशेषार्थ–अधोभाग में स्थित सात नरक भूमियों में से रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा ये दोनों मेरु के नीचे एक राजू में हैं और शेष पाँच भूमियाँ एक–एक राजू के अन्तर से हैं, इस प्रकार छह राजू में सात नरक हैं और इनके नीचे एक राजू में मात्र पंचस्थावर स्थान है। ये रत्नप्रभा आदि सातों पृथिवियाँ

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सार्थक नाम वाली हैं क्योंकि इनमें क्रम से रत्न, शक्कर, रेत, कीचड़, धुँआ, अन्धकार और महा अन्धकार के सदृश प्रभा पाई जाती है।

अब सातों नरकों के नाम कहते है–

घर्मावंशह्वयामेघाञ्जनारिष्टाभिधाततः ।
मघवीमाघवी चैता अधोऽधः सप्तभूमयः ॥६॥

अर्थ–(१) घर्मा, (२) वंशा, (३) मेघा, (४) अञ्जना, (५) अरिष्टा, (६) मघवी और (७) माघवी ये सात पृथ्वियाँ नीचे-नीचे अर्थात् क्रमशः एक के नीचे एक हैं ॥६॥

सातवें नरक के नीचे निगोद स्थान का कथन करते हैं–

सप्तानां श्वभ्रपृथ्वीनामधो भागेऽस्ति केवलम्।
एक रज्जुप्रमं क्षेत्रं पृथिवीरहितं भृतम्॥७॥
नानाभेदैर्निकोतादिपञ्चस्थावरदेहिभिः ।
रत्नप्रभाधरायाश्च त्रयो भेदा इमे स्मृताः ॥८॥

अर्थ–सातों नरक पृथ्वियों के नीचे एक राजू प्रमाण क्षेत्र नरक पृथ्वी से रहित है, उसमें केवल पञ्चस्थावरों के शरीर को धारण करने वाले नाना प्रकार के निगोद आदि स्थावर जीव रहते हैं। रत्नप्रभा पृथिवी के आगे कहे जाने वाले तीन भेद जानना चाहिए ॥७-८॥

चार श्लोकों द्वारा प्रथम पृथिवी के भेद, प्रभेदों को कहते हैं–

खरभागोऽथ पङ्कांशस्ततोऽप्यब्बहुलांशकः।
खरभागे भवन्त्यस्याः इमे षोडशभूमयः॥९॥
चित्रावज्राथ वैडूर्या लोहिता च मसारिका।
गोमेदा हि प्रवालाख्याः ज्योतिरसाञ्जनाह्वया ॥१०॥
अञ्जनाभाभिधा मूला स्फटिकाख्याथ चन्दना।
सपर्वावकुलाशैला खरे पृथ्व्यो हि षोडश ॥११॥
एकैकस्याः[१] सुबाहुल्यं सहस्त्रगुणयोजनम्।
भूमेश्चैव तदात्मासौ खरभागो मतो बुधैः ॥१२॥

अर्थ–प्रथम रत्नप्रभा पृथिवी खरभाग, पङ्कभाग और अब्बहुल भाग के भेद से तीन प्रकार की है, जिसमें खरभाग में नीचे कही जाने वाली सोलह भूमि पडत हैं। १. चित्रा, २. वज्रा, ३. वैडूर्या, ४. लोहिता, ५. मसारिका, ६. गोमेदा, ७. प्रवाला, ८. ज्योतिरसा, ९. अञ्जना, १०. अञ्जनाभा, ११. मूला, १२. स्फटिका, १३. चन्दना, १४. सपर्वा, १५. वकुला और १६. शैला, ये खर भाग में सोलह पृथ्वियों के पडत हैं। इनमें प्रत्येक पृथिवी (परत) का बाहुल्य (मोटाई) एक एक हजार योजन प्रमाण

१. एष श्लोकः प्र. प्रतौ नास्ति।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है। इन सोलह पृथिवी पडतात्मक भूमि ही विद्वानों के द्वारा खरभाग माना गया है। अर्थात् खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है जिसमें एक एक हजार योजन मोटी सोलह पृथ्वियाँ (परत) हैं अतः सोलह पृथिवी पडतात्मक ही खर भाग है ऐसा कहा गया है ॥९-१२॥

नोट—त्रि. सा. गा. १४८ में ११ वीं पृथिवी का नाम अङ्का और १४ वीं का सर्वार्थका कहा गया है।

खर आदि भागों में रहने वाले देवों का विवेचन दो श्लोकों द्वारा करते हैं—

खरभागे वसन्त्यत्र सप्तधा व्यन्तरामराः॥
राक्षसानां कुलं मुक्त्वा नवभेदाश्च भावनाः ॥१३॥
असुराणां कुलं त्यक्त्वा पङ्कभागेऽसुरव्रजाः।
राक्षसाश्च वसन्त्येव तृतीयांशे च नारकाः ॥१४॥

अर्थ—राक्षस कुल को छोड़कर शेष सात प्रकार के व्यन्तर देव और असुरकुमार देवों को छोड़ कर शेष नौ प्रकार के भवनवासी देव खरभाग में व राक्षस और असुरकुमार पंक भाग में रहते हैं, तथा तृतीय अब्बहुल भाग में नारकी जीवों का वास है ॥१३-१४॥

विशेषार्थ—व्यन्तर देवों के आठ कुल हैं—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच। इनमें से राक्षस कुल को छोड़कर शेष सात कुलों के व्यन्तरवासी देव खरभाग में रहते हैं। इसी प्रकार भवनवासी देवों के दश कुल हैं—असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार। इनमें से असुरकुमार के कुल को छोड़कर शेष कुलों के भवनवासी देव भी खरभाग में रहते हैं, तथा राक्षस और असुरकुमार (द्वितीय) पंक भाग में रहते हैं और तृतीय अब्बहुल भाग में प्रथम नरक के नारकी रहते हैं।

प्रथम पृथिवी के तीन भागों की मोटाई तीन श्लोकों द्वारा कहते हैं—

रत्नप्रभात्रिपृथिवीनामिदं स्थौल्यं त्रिधा मतम्।
योजनानि खरांशस्य स्युः सहस्राणि षोडश ॥१५॥
योजनानां सहस्राणि ह्यशीतिश्चतुरुत्तरा।
स्थूलत्वं पङ्कभागस्य तृतीयांशस्य निश्चितम् ॥१६॥
अशीतिसहस्राणि त्रिभूमीनां पिण्डितानि च।
लक्षाशीतिसहस्राणि सर्वाणि योजनान्यपि ॥१७॥

अर्थ—इस (कहे जाने वाले) रत्नप्रभा पृथिवी के तीनों भेदों का बाहुल्य भी तीन प्रकार का माना गया है। यथा-प्रथम खरभाग की मोटाई १६००० योजन, द्वितीय पंकभाग की मोटाई ८४००० योजन और तृतीय अब्बहुल भाग की मोटाई ८०००० योजन की है। इन तीनों पृथ्वियों के बाहुल्य को जोड़ने से (१६०००+८४०००+ ८००००)=१८०००० एक लाख अस्सी हजार योजन प्राप्त होते हैं, अतः रत्नप्रभा पृथिवी की मोटाई १८०००० योजन मानी गई है ॥१५-१७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब शेष छह पृथिवियों का निरूपण चार श्लोकों द्वारा किया जाता है–

शेषषट् श्वभ्रभूमीनां बाहुल्यं कथ्यतेऽधुना।
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्त्राणि स्थूलत्वं शर्कराक्षितेः ॥१८॥
अष्टाविंशतिमानानि सहस्त्रयोजनानि च।
बाहुल्यं वालुका पृथ्व्याः सन्ति पङ्कप्रभावनेः ॥१९॥
योजनानां चतुर्विंशति सहस्त्राणि शाश्वतम्।
स्थौल्यं धूमक्षितेर्विंशति सहस्त्राणि सम्मतम्॥२०॥
तमःप्रभावनेः स्थौल्यं सहस्त्राणि च षोडश।
योजनाष्टसहस्त्राणि महातमः प्रभाक्षितेः॥२१॥

अर्थ–अब अवशेष छह नरक पृथिवियों का बाहुल्य (मोटाई) कहते हैं। शर्करा पृथिवी की मोटाई ३२००० योजन, वालुका प्रभा पृथिवी की २८००० योजन, पंकप्रभा की २४००० योजन, धूमप्रभा पृथिवी की २०००० योजन, तमःप्रभा पृथिवी की १६००० योजन और महातमः पृथिवी की मोटाई ८००० योजन है ॥१८-२१॥

दो श्लोकों द्वारा उन सातों पृथ्वियों में स्थित पटलों के स्थान का निरूपण करते हैं–

घर्मादिषड्धराणां प्रत्येकमूर्ध्वेऽप्यधस्तले।
सहस्त्रयोजनान्मुक्त्वा भवेयुः पटलानि च॥२२॥
पटलं मध्यभागेऽस्ति महातमः प्रभाक्षितेः।
इदानीं सप्तभूमीनां विलसंख्योच्यते क्रमात्॥२३॥

अर्थ–प्रथम पृथिवी के अब्बहुल भाग में और वंशा आदि शेष पाँच अर्थात् घर्मा आदि छह पृथ्वियों में ऊपर नीचे एक एक हजार योजन की मोटाई छोड़ कर पटलों की स्थिति है और सातवीं महातमःप्रभा पृथिवी के मध्य भाग में एक ही पटल है। अब सातों पृथ्वियों के बिलों की संख्या क्रम से कहते हैं॥२२-२३॥

प्रथमादि पृथ्वियों में बिलों का निरूपण–

आदिमे नरके त्रिंशल्लक्षाणि स्युर्बिलानि च।
पञ्चविंशतिलक्षाणि द्वितीये दुष्कराण्यपि॥२४॥
तृतीये नरके पञ्चदशलक्ष बिलानि च।
चतुर्थे दशलक्षाणि लक्षत्रयाणि पञ्चमे॥२५॥
षष्ठे बिलानि पञ्चोनैक लक्षप्रमितानि च।
सप्तमे नरके सन्ति बिलानि पञ्च केवलम्॥२६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पिण्डीकृतानि सर्वाणि बिलानि सप्तभूमिषु।
लक्षाश्चतुरशीतिः स्युर्विश्वदुः खाकराण्यपि॥२७॥

अर्थ—प्रथम नरक में ३००००० (तीस लाख) बिल हैं। दूसरे नरक में २५००००० (पच्चीस लाख), तीसरे में १५००००० (पन्द्रह लाख), चौथे में १००००० (दश लाख), पाँचवें में ३००००० (तीन लाख), छठवें में पाँच कम एक लाख (९९९९५) और सातवें नरक में मात्र ५ (पाँच) बिल हैं। सम्पूर्ण दुःखों के आकर (खानि) स्वरूप इन सातों नरकों के सम्पूर्ण बिलों को जोड़ देने से योगफल (३० लाख + २५ लाख+१५ लाख+१० लाख + ३ लाख+ ९९९९५+५)=८४००००० (चौरासी लाख) प्रमाण होता है। अर्थात् सातों नरकों में ८४ लाख बिल हैं ॥२४-२७॥

अब ग्यारह श्लोकों द्वारा सातों नरक पटलों की संख्या एवं उनके नामों का दिग्दर्शन कराते हैं—

आदिमे नरके सन्ति प्रतराणि त्रयोदश।
एकादश द्वितीये तृतीये नव चतुर्थके॥२८॥
सप्ताथ पञ्चमे पञ्च षष्ठे त्रीणि च सप्तमे।
एकमेकोन पञ्चाशत्सर्वाणि प्रतराणि च॥२९॥
आद्यः सीमन्तकाभिख्यो नारकाख्यश्च रौरवः।
भ्रान्तोभ्रान्तौ हि सम्भ्रांतोऽथासम्भ्रान्तश्च सप्तमः ॥३०॥
विभ्रान्ताख्योऽष्टमो ज्ञेयस्त्रसस्त्रसित संज्ञकः।
वक्रान्तः स्यादवक्रान्तो विक्रान्तः प्रथमावनौ ॥३१॥
ततकस्तवको नाम्ना वनको मनकाह्वयः।
खटकः खटिकाभिख्यो जिह्वाख्यो जिह्विकाभिधः ॥३२॥
लोलो लोलुपसंज्ञोऽथ तनलोलुपनामकः।
अमी एकादश प्रोक्ता वंशायां प्रतरा जिनैः ॥३३॥
तप्ताख्यस्तपिताभिख्यस्तपनस्तपनाह्वयः ।
निदाघसंज्ञकोऽथोज्वलितः प्रज्वलिताख्यकः ॥३४॥
ततः संज्वलितः संप्रज्वलितो वालुकाक्षितौ॥
आरस्ताराभिधो मारश्चञ्चाख्यस्तपनीयकः ॥३५॥
घटः संघटनामैते चतुर्थ्यां प्रतरा मताः।
तमो भूमः शङ्खाख्योऽन्धस्तमिस्रः पञ्चमीक्षितौ ॥३६॥
हिमाख्यो मर्दको लल्लकः षष्ठयां प्रतरास्त्रयः।
अवधिस्थाननामैको महातमःप्रभावनौ ॥३७॥
सर्वेष्वेकोनपञ्चाशत्प्रतरेषु भवन्ति च।
तत्समा इन्द्रकाः श्रेणीबद्धाः प्रकीर्णका बिलाः ॥३८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—प्रथम नरक में तेरह (१३) पटल हैं। दूसरे में ग्यारह (११), तीसरे में नव (९), चौथे में सात (७), पाँचवें में पाँच (५), छठवें में ३ और सातवें नरक में १ पटल है। इस प्रकार सातों नरकों के सम्पूर्ण पटल ४९ हैं। पटलों के नाम– १ सीमन्त, २ नारक, ३ रौरव, ४ भ्रान्त, ५ उद्भ्रान्त, ६ सम्भ्रान्त, ७ असम्भ्रान्त, ८ विभ्रान्त, ९ त्रस, १० त्रसित, ११ वक्रान्त, १२ अवक्रान्त और १३ विक्रांत, ये १३ पटल प्रथम पृथिवी अर्थात् अब्बहुल भाग में हैं। १ ततक, २ स्तवक, ३ वनक, ४ मनक, ५ खटक, ६ खटिका, ७ जिह्वा, ८ जिह्विका, ९ लोलो, १० लोलुप और ११ तनलोलुप नाम के ये ११ पटल द्वितीय शर्करा प्रभा पृथ्वी में हैं। १ तप्त, २ तपित, ३ तपन, ४ तापन, ५ निदाघ, ६ उज्ज्वलित, ७ प्रज्वलित, ८ सज्ज्वलित और ९ सम्प्रज्वलित नाम के ९ पटल तृतीय वालुका प्रभा पृथिवी में हैं। १ आर, २ तार, ३ मार, ४ चञ्चा, ५ तपनीय, ६ घट और ७ संघाटन नाम वाले ये ७ पटल चतुर्थ पंकप्रभा पृथिवी में हैं। १ तम, २ भ्रम, ३ शंख, ४ अन्ध और ५ तमिस्र नामक ये ५ पटल पञ्चम धूमप्रभा पृथिवी में हैं। (१) हिम, (२) मर्दक और (३) लल्लक ये ३ पटल तमःप्रभा पृथिवी में हैं तथा अवधिस्थान नाम का १ पटल सप्तम महातमः पृथिवी में है। ये सम्पूर्ण पटल ४९ हैं और इनसे सम्बन्धित इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिल भी होते हैं॥२८-३८॥

अब सात श्लोकों द्वारा सातों नरकों के इन्द्रादिक बिलों का निरूपण करते हैं—

सर्वेषां प्रतराणां स्युर्मध्यभागेषु चेन्द्रकाः।
श्रेणीबद्धाः क्रमात् पङ्क्त्याकारेणैव दिगष्टसु॥३९॥
श्रेणीबद्धाश्चतुर्दिक्षु प्रथमे पटले पृथक्।
भवन्त्येकोनपञ्चाशत् प्रत्येकं चतुरस्रकाः॥४०॥
अस्यादि पटलस्यापि चतुर्विदिक्षुसंस्थिताः।
श्रेणीबद्धाश्च सन्त्यष्टचत्वारिंशत् पृथक् पृथक्॥४१॥
ततः क्रमाद् द्वितीयादि पटलानां दिगष्टसु।
अष्टावैकैक रूपेण श्रेणीबद्धाः पृथक् पृथक्॥४२॥
हीयन्ते तावदेवान्तिमे यावत् पटले स्फुटम्।
श्रेणीबद्धा हि चत्वारस्तिष्ठन्ति तुर्यदिग्गताः॥४३॥
सन्ति प्रकीर्णकाः सर्वे श्रेणीबद्धान्तराष्टसु।
इन्द्रकश्रेणिसम्बन्धहीनाः पृथक् पृथक् स्थिताः॥४४॥
प्रकीर्णका न सप्तभ्यां श्रेणीबद्धा महत्तराः।
स्युश्चतुर्दिक्षु चत्वारो मध्ये चैकेन्द्रको भवेत्॥४५॥

अर्थ—सम्पूर्ण पटलों के मध्यभाग में एक एक इन्द्रक बिल होता है और इस इन्द्रक की आठों दिशाओं में क्रम से पंक्ति के आकार श्रेणीबद्ध बिल होते हैं। प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल (सीमन्त नामक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इन्द्रक बिल) की चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में चतुष्कोण आकार को धारण करने वाले ४९, ४९ श्रेणीबद्ध बिल हैं और इसी पटल के इसी इन्द्रक की चारों विदिशाओं में से प्रत्येक विदिशा में पृथक्-पृथक् ४८, ४८ श्रेणीबद्ध बिल हैं। इसी प्रकार क्रम से द्वितीयादि पटलों की आठों दिशा, विदिशाओं में से प्रत्येक दिशा, विदिशा में ये एक एक कम होते हुए एक पटल में एक साथ आठ श्रेणीबद्ध बिल घट जाते हैं, और ये इस प्रकार तब तक घटते जाते हैं जब तक कि अवधिस्थान नाम के अन्तिम इन्द्रक की चारों दिशाओं में चार श्रेणीबद्ध बिल रह जाते हैं। [छह नरकों में] श्रेणीबद्ध बिलों के आठ अन्तरालों में इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलों के सम्बन्ध से रहित प्रकीर्णक बिल पृथक् पृथक् अर्थात् पुष्पों की भाँति यत्र तत्र स्थित हैं। सातवें नरक में चार दिशाओं में चार महान् श्रेणीबद्ध बिल हैं और इनके मध्य में एक इन्द्रक है। यहाँ प्रकीर्णक नहीं होते ॥३९-४५॥

अथ रत्नप्रभादिसप्तपृथ्वीनाम् विस्तारेण पृथक् पृथक् श्रेणीबद्धानां संख्या प्रोच्यते–

रत्नप्रभाया: प्रथमे पटले श्रेणीबद्धा अष्टाशीत्यधिक त्रिशतानि। द्वितीये अशीत्यधिक त्रिशतानि। तृतीये द्वासप्तत्यधिक त्रिशतानि। चतुर्थे चतु:षष्ट्यधिक त्रिशतानि। पञ्चमे षट्पञ्चाशदधिक त्रिशतानि। षष्ठे अष्टचत्वारिंशदधिक त्रिशतानि। सप्तमे चत्वारिंशदधिक त्रिशतानि। अष्टमे द्वात्रिंशदधिक त्रिशतानि। नवमे चतुर्विंशत्यधिक त्रिशतानि। दशमे षोडशाधिक त्रिशतानि। एकादशे अष्टाधिक त्रिशतानि। द्वादशे त्रिशतानि। त्रयोदशे पटले श्रेणीबद्धा द्विनवत्यधिकशतद्वय प्रमाणा भवन्ति। शर्करा प्रभेति-शर्करायां प्रथमे पटले श्रेणीबद्धाः चतुरशीत्यधिक शतद्वयं। द्वितीये षट्सप्तत्यधिकशतद्वयं। तृतीये अष्टषष्ट्यधिकशतद्वयं। चतुर्थे षष्ट्यधिकशतद्वयं। पञ्चमे द्विपञ्चाशदधिकशतद्वयं। षष्ठे चतुश्चत्वारिंशदधिकशतद्वयं। सप्तमे षट्त्रिंशदधिकशत्द्वयं। अष्टमे अष्टाविंशत्यधिकशतद्वयं। नवमे विंशत्यधिकशतद्वय। दशमे द्वादशाधिकशतद्वयं। एकादशे प्रतरे श्रेणीबद्धाः चतुरधिक द्विशतप्रमा भवेयु:। वालुकाप्रभेति-वालुकायां आदिमे प्रतरे श्रेणीबद्धाः षण्णवत्यधिकशत प्रमाः। द्वितीये अष्टाशीत्यधिकशतप्रमाः। तृतीये अशीत्यधिक शतप्रमाः। चतुर्थे द्वासप्तत्यधिकशतप्रमाः। पञ्चमे चतु:षष्ट्यधिकशतप्रमाः। षष्ठे षट्पञ्चाशदधिकशतप्रमाः। सप्तमे अष्टचत्वारिंशदधिक शतप्रमाः। अष्टमे चत्वारिंशदधिकशतप्रमाः। नवमे प्रतरे सर्वे च श्रेणीबद्धाः द्वात्रिंशदधिकशतप्रमाणा विज्ञेयाः। पङ्कप्रभेति-पङ्कप्रभायां प्रथमे पटले श्रेणीबद्ध बिलानि चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्यानि। द्वितीये षोडशाधिकशतसंख्यानि। तृतीये अष्टाधिकशतसंख्यानि। चतुर्थे शतसंख्यानि। पञ्चमे द्विनवतिसंख्यानि। षष्ठे चतुरशीति संख्यानि। सप्तमे श्रेणीबद्धबिलानि षट्सप्तति संख्यानि स्यु:। धूमप्रभेति-धूमप्रभायां आद्ये पटले अष्टषष्टि: श्रेणीबद्धाः। द्वितीये षष्टिश्च। तृतीये द्विपञ्चाशत्। चतुर्थे चतुश्चत्वारिंशत्। पञ्चमे षड्त्रिंशत् श्रेणीबद्धा ज्ञातव्याः। तम:प्रभेति-तमः प्रभायां श्रेणीबद्धबिलानि प्रथमे प्रतरे अष्टाविंशतिः। द्वितीये विंशतिः। तृतीये द्वादश। महातम:प्रभेतिमहातमः प्रभायां पटले चत्वारः श्रेणीबद्धाः स्यु:।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—उपर्युक्त गद्य में सातों नरकों में स्थित ४९ पटलों में से प्रत्येक पटल के श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या पृथक् पृथक् दर्शाई गई है, जिसका अर्थ निम्नांकित तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

रत्नादि सातों पृथ्वियों के प्रत्येक पटलों में श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या –

रत्नप्रभा		शर्कराप्रभा		वालुकाप्रभा		पंकप्रभा		धूमप्रभा		तम:प्रभा		महातम:प्रभा	
पटल संख्या	श्रेणी की संख्या	पटल संख्या	श्रेणी की संख्या	पटल संख्या	श्रेणी की संख्या	पटल संख्या	श्रेणी की संख्या	पटल संख्या	श्रेणी की संख्या	पटल संख्या	श्रेणी की संख्या	पटल संख्या	श्रेणी की संख्या
१	३८८	१	२८४	१	१९६	१	१२४	१	६८	१	२८	१	४
२	३८०	२	२७६	२	१८८	२	११६	२	६०	२	२०	२	४
३	३७२	३	२६८	३	१८०	३	१०८	३	५२	३	१२		
४	३६४	४	२६०	४	१७२	४	१००	४	४४		६०		
५	३५६	५	२५२	५	१६४	५	९२	५	३६				
६	३४८	६	२४४	६	१५६	६	८४		२६०				
७	३४०	७	२३६	७	१४८	७	७६						
८	३३२	८	२२८	८	१४०		७००						
९	३२४	९	२२०	९	१३२								
१०	३१६	१०	२१२		१४७६								
११	३०८	११	२०४										
१२	३००		२६८४										
१३	२९२												
	४४२०												

अथ सप्तमहीनां प्रत्येक इन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकानां गणना कथ्यते–

घर्मायामिन्द्रकास्त्रयोदश, श्रेणीबद्धा विंशत्यधिक चतुश्चत्वारिंशच्छतानि, प्रकीर्णका: एकोन त्रिंशल्लक्ष-पञ्चनवतिसहस्र-पञ्चशत-सप्तषष्टिसंख्याश्च भवन्ति। वंशायां एकादशेन्द्रका:। चतुरशीत्यधिकषड्विंशतिशतप्रमा: श्रेणीबद्धा:। चतुर्विंशतिलक्ष-सप्तनवतिसहस्र-त्रिशतपञ्चोत्तर प्रमाणा: प्रकीर्णका:। मेघायां नवेन्द्रका:। षट्सप्तत्यधिकचतुर्दशशतसंख्या: श्रेणीबद्धा:। चतुर्दशलक्षाष्टनवति सहस्रपञ्चशतपञ्चदशप्रमा: प्रकीर्णका:। अञ्जनायां इन्द्रका: सप्त। सप्तशत श्रेणीबद्धा:। नवलक्ष-

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नवनवतिसहस्र-द्विशत-त्रिनवति प्रमाणाः प्रकीर्णकाः। अरिष्टायां इन्द्रकाः पञ्च। श्रेणीबद्धाः षष्ट्यधिक-द्विशतप्रमाः। प्रकीर्णकाः द्विलक्ष-नवनवतिसहस्र-सप्तशत-पञ्चत्रिंशत्यसंख्याः स्युः। मघव्यां इन्द्रकाः त्रयः। श्रेणीबद्धाः षष्टिश्च। प्रकीर्णकाः नवनवतिसहस्रनवशतद्वात्रिंशत्प्रमाः भवन्ति। माघव्यां इन्द्रकः एकोऽस्ति। श्रेणीबद्धाः चत्वारः सन्ति।

अर्थ—सातों पृथ्वियों में से प्रत्येक पृथ्वी के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों की पृथक् पृथक् संख्या-

क्रमांक	पृथ्वी नाम	इन्द्रक बिल	श्रेणीबद्ध बिल	प्रकीर्णक बिल
१	धम्मा	१३	४४२०	२९९५५६७
२	वंशा	११	२६८४	२४९७३०५
३	मेघा	९	१४७६	१४९८४१५
४	अंजना	७	७००	९९९२९३
५	अरिष्टा	५	२६०	२९९७३५
६	मघवी	३	६०	९९९३२
७	माघवी	१	४	०

अब आठ श्लोकों द्वारा सम्पूर्ण बिलों के व्यास का विवेचन करते हैं—

बिलानि सप्तभूमीनां चतुर्भागाश्रितानि च।
असंख्ययोजन व्यासानि प्रोक्तानि जिनागमे ॥४६॥
तेषां पञ्चमभागस्थ-बिलानि दुष्कराणि च।
संख्ययोजनविस्ताराणि बीभत्साशुभान्यपि ॥४७॥

अर्थ—जिनागम में सातों नरकों में से अपने-अपने नरक बिलों की संख्या का $\frac{४}{५}$ भाग असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलों का प्रमाण कहा गया है, और उन्हीं अपने सम्पूर्ण बिलों का $\frac{१}{५}$ भाग वीभत्स, अशुभ और दुःखोत्पादक संख्यात योजन विस्तार वाले बिलों का प्रमाण कहा है ॥४६-४७॥

विशेषार्थ—यथा-प्रथम पृथ्वी के कुल बिलों की संख्या तीस लाख है, इसका $\frac{४}{५}$ भाग अर्थात् ३०००००० × $\frac{४}{५}$ = २४००००० (चौबीस लाख) बिल असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं और ३०००००० × $\frac{१}{५}$ = ६००००० (छह लाख) बिल संख्यात योजन व्यास वाले हैं। (२४ लाख+६ लाख=३० लाख)। इसी प्रकार द्वितीयादि पृथ्वियों में भी जानना चाहिए।

योजनानां च संख्यातविस्तारा इन्द्रका मताः।
श्रेणीबद्धा असंख्यातविस्तृता दुःखभाजनाः ॥४८॥
केचित् प्रकीर्णका ज्ञेयाः संख्ययोजनविस्तराः।
असंख्ययोजनव्यासाः केचित्पुष्पप्रकीर्णकाः ॥४९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—दु:ख के भाजनस्वरूप सम्पूर्ण इन्द्रक बिल संख्यात योजन विस्तार वाले और सम्पूर्ण श्रेणीबद्ध असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। पुष्पों के सदृश यत्र तत्र स्थित प्रकीर्णक बिलों में कुछ प्रकीर्णक बिल संख्यात योजन विस्तार वाले और कुछ असंख्यात योजन विस्तार वाले जानना चाहिए ॥४८-४९॥

योजनै: पञ्चचत्वारिंशल्लक्षैर्विस्तरान्वित:।
सीमन्तकेन्द्रकश्चाद्य: प्रथमे पटलेमत:॥५०॥
वृत्ताकारोऽन्तिमेश्वभ्रेऽवधिस्थानेन्द्रकोऽन्तिम: ॥
लक्षैकयोजनव्यासो निष्कृष्टो दु:खपूरित:॥५१॥

अर्थ—प्रथम पृथिवी के प्रथम पटल में स्थित सीमन्त नामक प्रथम इन्द्रक बिल (गोलाकार) ४५००००० (४५ लाख) योजन विस्तार वाला है और अन्तिम (सप्तम) नरक का गोलाकार, निकृष्ट और जीवों को दु:खों से पूरित करने वाला अवधिस्थान नाम का अन्तिम इन्द्रक बिल १००००० योजन विस्तार वाला है ॥५०-५१॥

सहस्रैकानवत्याषट्शतै: षट्षष्टि संयुतै:।
योजनानां द्वित्रिभागाभ्यां शेषा: सर्वेन्द्रका मता:॥५२॥
व्यासेन क्रमतो हीयमानाश्च पटलं प्रति।
जम्बूद्वीपप्रमो यावत् स्यादेकश्चरमेन्द्रक:॥५३॥

अर्थ— $\frac{२}{३}$ भाग से संयुक्त ९१६६६ योजन व्यास प्रत्येक पटल के प्रत्येक इन्द्रक के व्यास में से तब तक हीन करते जाना चाहिए जब तक कि अन्तिम इन्द्रक का व्यास जम्बूद्वीप अर्थात् १००००० योजन का प्राप्त होता है ॥५२-५३॥

विशेषार्थ—प्रथम इन्द्रक बिल के विस्तार में से अन्तिम इन्द्रक का विस्तार घटा कर अवशेष में एक कम इन्द्रकों के प्रमाण का भाग देने पर हानि चय का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा-प्रथम इन्द्रक का विस्तार मनुष्य क्षेत्र सदृश (४५००००० योजन) है और अन्तिम इन्द्रक का विस्तार जम्बूद्वीप सदृश (एक लाख योजन) है। इन दोनों का शोधन (घटाने) करने पर (४५०००००-१००००००) = ४४००००० योजन अवशेष रहते हैं, इनको एक कम (४९-१=४८) इन्द्रकों के प्रमाण से भाजित करने पर (४४००००० ४८) = ९१६६६ $\frac{२}{३}$ योजन प्रत्येक इन्द्रक का हानि चय होता है। इस हानि चय को उत्तरोत्तर घटाते हुए भिन्न-भिन्न इन्द्रक बिलों का विस्तार प्राप्त कर लेना चाहिए।

अथ सप्तनरकेषु संख्यातासंख्यातयोजनविस्तृतबिलानां पृथग् रूपेण संख्या प्रोच्यते—

रत्नप्रभायां बिलानि षट्लक्षाणि संख्येययोजन विस्ताराणि, चतुर्विंशतिलक्षाणि असंख्येय-योजनविस्ताराणि। शर्करापृथिव्यां पञ्चलक्षाणि संख्या व्यासानि, विंशतिलक्षाणि असंख्यात विस्ताराणि च। बालुकायां त्रिलक्षाणि संख्ययोजन विस्ताराणि, द्वादशलक्षाणि असंख्ययोजनविस्ताराणि। पङ्कप्रभायां

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

द्विलक्षसंख्य व्यासानि, अष्टलक्षाण्यसंख्यातयोजन व्यासानि। धूमप्रभायां षष्टि सहस्त्राणि संख्य विस्तृतविलानि, द्विलक्षचत्वारिंशत्सहस्त्राणि असंख्य विस्तृतविलानि। तमःप्रभायां एकोनविंशति-सहस्त्रनवशतनवनवति प्रमाणानि संख्य व्यासविलानि, एकोनाशीतिसहस्त्रनवशत षण्णवति प्रमाणि असंख्यव्यासविलानि। महातमः प्रभायां एकं विलं संख्येय योजनविस्तृतं, चत्वारि विलानि असंख्ययोजन विस्तृतानि। एवं सर्वारण्येकत्रीकृतानि विलानि सप्तभूमिषु षोडशलक्षशीति सहस्त्राणि संख्यात विस्ताराणि भवन्ति, सप्तषष्टिलक्षविंशतिसहस्त्राणि–असंख्यातविस्तराणि भवन्ति च।

विशेष–उपर्युक्त गद्य भाग में प्रत्येक नरक के संख्यात योजन विस्तार वाले और असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलों की संख्या भिन्न-भिन्न दर्शायी गई है, जिसका सम्पूर्ण अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित किया जा रहा है। इन संख्यात असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलों की संख्या प्राप्त करने का विधान इसी अध्याय के ४६-४७ श्लोक में बतलाया गया है।

सातों नरकों के संख्यात असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलों का भिन्न-भिन्न दिग्दर्शन–

क्रमांक	पृथ्वी नाम	संख्यात यो.वि. वाले बिलों की संख्या	अंख्यात यो.वि. वाले बिलों की संख्या
१	रत्नप्रभा	६००००० (६ लाख)	२४००००० (२४ लाख)
२	शर्कराप्रभा	५००००० (५ लाख)	२०००००० (२० लाख)
३	वालुकाप्रभा	३००००० (३ लाख)	१२००००० (१२ लाख)
४	पंकप्रभा	२००००० (२ लाख)	८००००० (८ लाख)
५	धूमप्रभा	६०००० (६० हजार)	२४०००० (२ लाख ४० हजार)
६	तमःप्रभा	१९९९९	७९९९६
७	महातमःप्रभा	१	४
योग		१६८०००० (१६ लाख ८० हजार)	६७२०००० (६७ लाख २० हजार)

इस प्रकार सातों नरकों के एकत्र किये हुए संख्यात योजन विस्तार वाले बिलों का प्रमाण सोलह लाख अस्सी हजार और असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलों का प्रमाण ६७ लाख बीस हजार है, इन दोनों को एकत्रित कर देने पर सातों नरकों के सम्पूर्ण बिलों का प्रमाण (१६८०००० + ६७२०००० = ८४००००० अर्थात् चौरासी लाख होता है।

इदानीं सप्तपृथ्वीषु एकोनपञ्चाशदिन्द्रकाणां पृथक् पृथक् विस्तारः कथ्यते–

घर्मायां प्रथमे इन्द्रके व्यासः योजनानां पञ्चचत्वारिंशल्लक्षाणि। ततः एक नवति सहस्त्र-षट्शत-षट्षष्टि योजनैर्योजनस्य द्विभागाभ्यां प्रत्येकं हीयमान क्रमेण व्यासो। द्वितीये चतुश्चत्वारिंश-ल्लक्षाष्टसहस्त्र त्रिशतत्रयस्त्रिंशद्योजनानि योजनस्य त्रिभागानामेको भागः। तृतीये त्रिचत्वारिंशल्लक्ष षोडशसहस्त्र षट्शत षट्षष्टिप्रमः द्वौ भागौ। चतुर्थे द्विचत्वारिंशल्लक्ष पञ्चविंशति सहस्त्राणि। पञ्चमे

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एक चत्वारिंशल्लक्षत्रयस्त्रिंशत् सहस्र त्रिशतत्रयस्त्रिंशच्च एको भागः। षष्ठे चत्वारिंशल्लक्षैक-चत्वारिंशत्सहस्र षट्शतषट्षष्टिश्च द्वौ भागौ। सप्तमे एकोन चत्वारिंशल्लक्षपञ्चाशत्सहस्राणि अष्टमे अष्टत्रिंशल्लक्षाष्ट पञ्चाशत्सहस्र त्रिशतत्रयस्त्रिंशत् एको भागः। नवमे सप्तत्रिंशल्लक्षषट्षष्टि-सहस्रषट्षष्टिश्च द्वौ भागौ। दशमे षट्त्रिंशल्लक्षपञ्चसप्तति-सहस्राणि। एकादशे पञ्चत्रिंशल्लक्षत्र्यशीति-सहस्रत्रिंशत त्रयस्त्रिंशच्चैको भागः। द्वादशे चतुस्त्रिंशल्लक्षैका-नवतिसहस्रषट्शत षट्षष्टिश्च द्वौ भागौ। त्रयोदशे पटले इन्द्रकस्य विस्तारः चतुस्त्रिंशल्लक्षाणि। वंशायां आद्ये इन्द्रके विस्तारः त्रयस्त्रिंशल्लक्षाष्ट-सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशच्चैको भागः। द्वितीये द्वात्रिंशल्लक्ष षोडशसहस्र षट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। तृतीये एकत्रिंशल्लक्ष पञ्चविंशतिसहस्राणि चतुर्थे त्रिंशल्लक्षत्रयस्त्रिंशत्सहस्र त्रिशतत्रयस्त्रिंशदेको भागः। पञ्चमे एकोन त्रिंशल्लक्षैकचत्वारिंशत्सहस्र षट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। षष्ठे अष्टाविंशतिलक्षपञ्चाशत्सहस्राणि। सप्तमे सप्तविंशति लक्षाष्टपञ्चाशत्सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशच्चैको भागः। अष्टमे षड्विंशतिलक्षषट्षष्टिसहस्र षट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। नवमे पञ्चविंशतिलक्षपञ्चसप्ततिसहस्राणि। दशमे चतुर्विंशतिलक्षत्र्यशीति-सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशदेको भागः। एकादशे इन्द्रके विस्तारः योजनानां त्रयोविंशतिलक्षैकनवति सहस्रषट्शतषट्षष्टिश्च त्रिभागीकृते योजनस्य द्वौ भागौ। मेघायामादिमे इन्द्रके व्यासः योजनानां त्रयोविंशतिलक्षाणि। द्वितीये द्वाविंशतिलक्षाष्टसहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशदेको भागः। तृतीये एकविंशति-लक्षषोडशसहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। चतुर्थे विंशतिलक्षपंचविंशतिसहस्राणि। पञ्चमे एकोनविंशति-लक्षत्रयस्त्रिंशत् सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशच्चैको भागः। षष्ठे अष्टादशलक्षैकचत्वारिंशत् सहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौः। सप्तमे सप्तदशलक्षपञ्चाशत्सहस्राणि। अष्टमे षोडशलक्षाष्टपञ्चाशत् सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशदेको भागः। नवमे इन्द्रके पञ्चदशलक्षषट्षष्टिसहस्रषट्शत षट्षष्टिर्योजनत्रिभागीकृतस्य द्वौ भागौ। अञ्जनायां प्रथमे इन्द्रके विस्तृतिः योजनानां चतुर्दशलक्ष पञ्चसप्ततिसहस्राणि। द्वितीये त्रयोदशलक्षत्र्यशीति-सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशदेको भागः। तृतीये द्वादशलक्षैकनवतिसहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। चतुर्थे द्वादशलक्षाः। पञ्चमे एकादशलक्षाष्टसहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशदेको भागः। षष्ठे दशलक्षषोडश-सहस्रषट्शत-षट्षष्टिर्द्वौ भागौ। सप्तमे नवलक्षपञ्चविंशति सहस्राणि। अरिष्टायां आदिमे इन्द्रके अष्टलक्ष त्रयस्त्रिंशत्सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशच्चैको भागः। द्वितीये सप्तलक्षैकचत्वारिंशत्सहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। तृतीये षट् लक्षपञ्चाशत्सहस्राणि। चतुर्थे पञ्चलक्षाष्टपञ्चाशत् सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशदेको भागः। पञ्चमे इन्द्रके व्यासो योजनानां चतुर्लक्षषट्षष्टिसहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। मघव्यां प्रथमे इन्द्रके विस्तृतिः योजनानां त्रिलक्षपञ्चसप्ततिसहस्राणि। द्वितीये द्विलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशत् योजनस्य त्रिभागानां मध्ये चैको भागः। तृतीये एकलक्षैकनवतिसहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। माघव्यां इन्द्रके विस्तारः लक्षयोजनं प्रमाणः।

अर्थ—घर्मा पृथ्वी के प्रथम सीमन्त नामक इन्द्रक बिल का व्यास ४५ लाख योजन है, इसमें से ९१६६६ $\frac{२}{३}$ योजन घटाते जाने पर उसी पृथ्वी के द्वितीयादि इन्द्रकों का विस्तार प्राप्त होता जाता

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है क्योंकि हानि चय का प्रमाण सर्वत्र ९१६६६$\frac{२}{३}$ योजन ही है। इस हानि चय आदि के निकालने की विधि इसी अधिकार के नं. ५२-५३ श्लोकों के विशेषार्थ में देखना चाहिए।

उपर्युक्त सम्पूर्ण गद्यभाग का अर्थ निम्नांकित तालिका में अन्तर्निहित कर दिया गया है। [उपर्युक्त गद्य भाग की तालिका पृष्ठ सं॰ ३२-३३ पर देखें]

इन्द्रकादि तीनों प्रकार के बिलों का प्रमाण चार श्लोकों द्वारा कहते हैं–

आद्यश्वभ्रेन्द्रकाणास्यात्स्थौल्यं क्रोशैकसम्मितम्॥
शेषश्वभ्रेन्द्रकाणां च क्रोशार्धार्धाधिकं क्रमात्॥५४॥

अर्थ–प्रथम पृथिवी के इन्द्रक बिलों का बाहुल्य एक कोश प्रमाण है और अन्य शेष पृथ्वियों के बिलों का बाहुल्य क्रमशः आधा-आधा कोश अधिक अधिक है। अर्थात् प्रत्येक पृथ्वियों के इन्द्रकों का बाहुल्य क्रमशः १ कोश, १ $\frac{१}{२}$, २, २$\frac{१}{२}$, ३, ३$\frac{१}{२}$ और ४ कोश प्रमाण है ॥५४॥

स्थूलत्वं प्रथमे श्वभ्रे श्रेणीबद्धेषुकीर्तितम्।
क्रोशैकं ज्ञानिभिः क्रोशतृतीयभागसंयुतम्॥५५॥
ततः षट्श्वभ्रभूमीनां श्रेणीबद्धेषुनिश्चितम्।
स्थौल्यं क्रोशद्विभागाभ्यां प्रत्येकमधिकं क्रमात्॥५६॥

अर्थ–प्रथम पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिलों का बाहुल्य ज्ञानियों के द्वारा १$\frac{१}{३}$कोश माना गया है, और शेष छह पृथ्वियों में से प्रत्येक भूमि के श्रेणीबद्धों का प्रमाण $\frac{२}{३}$ भाग अधिक अधिक माना गया है। अर्थात् प्रत्येक पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण क्रमशः १ $\frac{१}{३}$कोश, २ कोश, २$\frac{२}{३}$ कोश, ३ $\frac{१}{३}$ कोश, ४ कोश, ४ $\frac{२}{३}$ कोश और ५ $\frac{१}{३}$कोश है ॥५५-५६॥

पिण्डितं यच्च बाहुल्यमिन्द्रकश्रेणिबद्धयोः।
पृथक् षट्पृथिवीनां तत् प्रकीर्णकेषु सम्मतम्॥५७॥

अर्थ–प्रथम आदि छह पृथ्वियों के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलों के बाहुल्य का जो प्रमाण है उसे पृथक् पृथक् पृथ्वी का जोड़ने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है वही उस पृथ्वी के प्रकीर्णक बिलों के बाहुल्य का प्रमाण माना गया है। अर्थात् १(१+१$\frac{१}{३}$)=२ $\frac{१}{३}$कोश, २(१$\frac{१}{२}$+२)=३ $\frac{१}{२}$कोश। ३ (२+२ $\frac{२}{३}$)=४ $\frac{२}{३}$ कोश। ४ (२$\frac{१}{२}$ +३$\frac{१}{३}$)=५ $\frac{५}{६}$ कोश। ५(३+४)=७ कोश। ६ (३$\frac{१}{२}$+४ $\frac{२}{३}$)=८ $\frac{१}{६}$ कोश, सातवीं पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का अभाव है ॥५७॥

अतोऽमीषां सुखबोधाय पृथग् व्याख्यानं क्रियते–

रत्नप्रभायामिन्द्रकाणां स्थूलत्वं क्रोशः स्यात्। श्रेणीबद्धानां क्रोशत्रिभागीकृतस्यैकभागाधिकक्रोशः। प्रकीर्णकानां क्रोशतृतीयभागाधिकौ द्वौ क्रोशौ। शर्करायां चेन्द्रकानां स्थौल्यं सार्धक्रोशः। श्रेणीबद्धानां द्वौ क्रोशौ। प्रकीर्णकानां सार्धत्रिकोशाः। बालुकायां इन्द्रकाणां बाहुल्यं द्वौ कोशौ। श्रेणीबद्धानां द्वौ क्रोशौ क्रोशत्रिभागानां द्वौ भागौ। प्रकीर्णकानां चत्वारः क्रोशाः क्रोश त्रिभागानां द्वौ भागौ। पङ्कप्रभायां इन्द्रकाणां

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सातों नरकों में स्थित ४९ इन्द्रक बिलों का पृथक्-पृथक् विस्तार

धम्मा पृथ्वी			वंशा पृथ्वी			मेघा पृथ्वी		
क्र.	नाम इन्द्रक	विस्तार यो. में	क्र.	नाम इन्द्रक	विस्तार यो. में	क्र.	नाम इन्द्रक	विस्तार यो. में
१	सीमन्त	४५०००००	१	ततक	३३०८३३३ १/३	१	तप्त	२३०००००
२	नारक	४४०८३३३ १/३	२	स्तवक	३२१६६६६ २/३	२	तपित	२२०८३३३ १/३
३	रौरव	४३१६६६६ २/३	३	वनक	३१२५०००	३	तपन	२११६६६६ २/३
४	भ्रान्त	४२२५०००	४	मनक	३०३३३३३ १/३	४	तापन	२०२५०००
५	उद्भ्रान्त	४१३३३३३ १/३	५	खटक	२९४१६६६ २/३	५	निदाघ	१९३३३३३ १/३
६	सम्भ्रान्त	४०४१६६६ २/३	६	खटिका	२८५००००	६	उज्ज्व.	१८४१६६६ २/३
७	असम्भ्रान्त	३९५००००	७	जिह्वा	२७५८३३३ १/३	७	प्रज्जव.	१७५००००
८	विभ्रान्त	३८५८३३३ १/३	८	जिह्विका	२६६६६६६ २/३	८	संज्व.	१६५८३३३ १/३
९	त्रस	३७६६६६६ २/३	९	लोलो	२५७५०००	९	सम्प्रज्व	१५६६६६६ २/३
१०	त्रसित	३६७५०००	१०	लोलुप	२४८३३३३ १/३			
११	वक्रान्त	३५८३३३३ १/३	११	तनलोलुप	२३९१६६६ २/३			
१२	अवक्रान्त	३४९१६६६ २/३						
१३	विक्रान्त	३४०००००						

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अंजना पृथ्वी			अरिष्टा पृथ्वी			मघवी पृथ्वी			माघवी पृथ्वी		
क्र.	नाम इन्द्रक	विस्तार यो. में	क्र.	नाम इन्द्रक	विस्तार यो. में	क्र.	नाम इन्द्रक	विस्तार यो. में	क्र.	नाम इन्द्रक	विस्तार यो. में
१	आरा	१४७५०००	१	तम	८३३३३३$\frac{१}{३}$	१	हिम	३७५०००	१	अवधि स्थान	१०००००
२	तारा	१३८३३३३$\frac{१}{३}$	२	भ्रम	७४१६६६$\frac{२}{३}$	२	मर्दक	२८३३३३$\frac{१}{३}$			
३	मारा	१२९१६६६$\frac{२}{३}$	३	शंख	६५००००	३	लल्लक	१९१६६६$\frac{२}{३}$			
४	चञ्चा	१२०००००	४	अन्ध	५५८३३३$\frac{१}{३}$						
५	तपनीय	११०८३३३$\frac{१}{३}$	५	तमिश्र	४६६६६६$\frac{२}{३}$						
६	घट	१०१६६६६$\frac{२}{३}$									
७	घटनीय	९२५०००									

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सार्धद्विक्रोशौ। श्रेणीबद्धानां क्रोशास्त्रयः क्रोशतृतीयभागः। प्रकीर्णकानां स्थौल्यं क्रोशाः पञ्च, क्रोशषड्भागानां मध्ये पञ्चभागाः। धूमप्रभायां स्थूलत्वमिन्द्रकाणां त्रयः क्रोशाः। श्रेणीबद्धानां चत्वारः क्रोशाः। प्रकीर्णकानां च सप्तक्रोशाः। तमः प्रभायां इन्द्रकाणां बाहुल्यं सार्धत्रयः क्रोशाः। श्रेणीबद्धानां चत्वारः क्रोशाः क्रोशत्रिभागानां द्वौ भागौ। प्रकीर्णकानां अष्टौक्रोशाः क्रोशस्य षड्भागानामेको भागः। महातमः प्रभायां इन्द्रकस्य चत्वारः क्रोशाः। श्रेणीबद्धानां पञ्चक्रोशाः क्रोशस्यतृतीयो भागः। सप्तमे प्रकीर्णका न सन्ति।

उपर्युक्त गद्य में सातों पृथ्वियों के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों का पृथक् पृथक् बाहुल्य बताया गया है जिसका सम्पूर्ण अर्थ निम्नांकित तालिका के माध्यम से दर्शाया जा रहा है।

सातों नरकों के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों की मोटाई

क्रमांक	पृथ्वी नाम	इन्द्रक बिलों का बाहुल्य	श्रेणीबद्धों का बाहुल्य	प्रकीर्णकों का बाहुल्य
१	रत्नप्रभा	१ कोश बाहुल्य	$१\frac{१}{३}$ कोश बाहुल्य	$२\frac{१}{३}$ कोश बाहुल्य
२	शर्कराप्रभा	$१\frac{१}{२}$ कोश बाहुल्य	२ कोश बाहुल्य	$३\frac{१}{२}$ कोश बाहुल्य
३	वालुकाप्रभा	२ कोश बाहुल्य	$२\frac{२}{३}$ कोश बाहुल्य	$४\frac{२}{३}$ कोश बाहुल्य
४	पंकप्रभा	$२\frac{१}{२}$ कोश बाहुल्य	$३\frac{१}{३}$ कोश बाहुल्य	$५\frac{५}{६}$ कोश बाहुल्य
५	धूमप्रभा	३ कोश बाहुल्य	४ कोश बाहुल्य	७ कोश बाहुल्य
६	तमःप्रभा	$३\frac{१}{२}$ कोश बाहुल्य	$४\frac{२}{३}$ कोश बाहुल्य	$८\frac{१}{६}$ कोश बाहुल्य
७	महातमःप्रभा	४ कोश बाहुल्य	$५\frac{१}{३}$ कोश बाहुल्य	–

पृथ्वीनां पटलव्याप्तक्षेत्रं प्रतरसंख्यकैः।
समभागैर्विभक्तं युक्त्योर्ध्वाधश्चान्तरं मतम् ॥५८॥

अर्थ—पृथिवी के पटल व्याप्त क्षेत्र को एक कम प्रतर संख्या से (श्लोक में समभागैः पद है इससे ज्ञात होता है कि पटलों के अन्तरालों का ग्रहण किया है क्योंकि सभी नरकों में पटलों की संख्या विषम और अन्तरालों की संख्या पटल संख्या से एक कम अर्थात् सम रूप है) भाग देने पर ऊपर के पटल से उसके नीचे के पटल का अन्तर प्राप्त होता है। जैसे प्रथम पृथिवी में पटल व्याप्त क्षेत्र ७८००० योजन है। पटल सख्या १३ है, १३ पटलों में (१३-१) बारह अन्तराल हुए, अतः ७८००० योजन को १२ से भाग देने पर (७८००० १२)=६५०० योजन प्रति पटल अन्तर का प्रमाण प्राप्त होता है। इसी प्रकार द्वितीया आदि पृथिवियों में जानना चाहिए ॥५८॥

सातों पृथ्वियों के बिल व्याप्त क्षेत्र का प्रमाण—

धर्मायां बिलव्याप्तक्षेत्रं योजनानामष्टसप्ततिसहस्राणि। वंशायां च-त्रिंशत्सहस्राणि। मेघायां षड्-विंशतिसहस्राणि। अञ्जनायां द्वाविंशतिसहस्राणि। अरिष्टायां अष्टादशसहस्राणि। मघव्यां

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चतुर्दशसहस्राणि। माघव्यां बिलव्याप्तक्षेत्रं पञ्चक्रोशाः क्रोशत्रिभागानामेको भागः।

अर्थ—घर्मा पृथ्वी में बिल व्याप्त क्षेत्र का प्रमाण ७८००० योजन, वंशा में ३०००० योजन, मेघा में २६००० योजन, अञ्जना में २२००० योजन, अरिष्टा में १८००० योजन, मघवी में १४००० योजन और माघवी पृथ्वी में बिल व्याप्त क्षेत्र का प्रमाण ५$\frac{१}{३}$ कोश (महाकोश) है।

विशेषार्थ—रत्नप्रभा आदि छह पृथ्वियों में नीचे ऊपर की एक एक हजार योजन भूमि छोड़ कर बिल स्थित हैं अतः अपनी-अपनी पृथ्वी की मोटाई में से दो हजार कम कर देने पर बिल व्याप्त भूमि का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

जैसे—अब्बहुल भाग ८०००० (अस्सी हजार) मोटाई वाला है उसमें से ऊपर नीचे के दो हजार घटा देने पर बिल व्याप्त क्षेत्र का प्रमाण ७८ हजार योजन प्राप्त हो जाता है। ऐसा ही अन्यत्र जानना। केवल ७ वीं माघवी पृथ्वी के ठीक मध्य भाग में एक इन्द्रक और चार श्रेणीबद्ध बिल हैं जिनसे व्याप्त क्षेत्र का प्रमाण ५$\frac{१}{३}$ कोश मात्र है।

अब बिलों का तिर्यग् अन्तर चार श्लोकों द्वारा निरूपित किया जाता है—

क्रमेणैवेन्द्रकश्रेणी-बद्धप्रकीर्णकेष्वपि ।
संख्यातयोजनव्यास, बिलानामन्तरं स्मृतम्॥५९॥
तिर्यगन्तं जघन्येन, सार्धयोजनमागमे।
योजनत्रिकमुत्कृष्टं, मध्यमं बहुधा च तत् ॥६०॥
असंख्ययोजनव्यास, बिलानां तिर्यगन्तरम्॥
जघन्यं योजनानां स्यात्, सप्तसहस्त्रसम्मितम् ॥६१॥
सर्वोत्कृष्टमसंख्यातयोजनान्यन्तरं स्मृतम्।
जघन्योत्कृष्टयोर्मध्ये मध्यमं बहुभेदभाक् ॥६२॥

अर्थ—जिनागम में इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों में से संख्यात योजन विस्तार वाले बिलों का तिर्यग् अन्तर जघन्य १$\frac{१}{२}$ योजन, उत्कृष्ट ३ योजन और मध्यम अन्तर अनेक भेद वाला कहा गया है, तथा असंख्यात योजन व्यास वाले बिलों का तिर्यग् अन्तर जघन्य सात हजार योजन, उत्कृष्ट असंख्यात योजन और जघन्य, उत्कृष्ट के मध्य में रहने वाले मध्यम भेदों का तिर्यग् अन्तर अनेक प्रकार का कहा गया है ॥५९-६२॥

विशेषार्थ—इन्द्रक बिल संख्यात योजन और श्रेणीबद्ध असंख्यात योजन विस्तार वाले ही होते हैं। प्रकीर्णक में दोनों प्रकार के हैं।

अब प्रत्येक पटल की जघन्य और उत्कृष्ट आयु का दिग्दर्शन कराते हैं—

प्रथमे पटले सीमन्तके चायुर्लघुस्थितिः।
दशवर्ष सहस्त्राणि, प्रोत्कृष्टेनायुरूर्जितम् ॥६३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नवतिश्च सहस्त्राणि, द्वितीये स्थितिरुत्तमा।
लक्षाश्च नवतिश्चासंख्य पूर्वकोटि सम्मिता ॥६४॥
तृतीयेऽन्येषु सर्वेषु, पटलं प्रतिवर्धते।
समुद्रदशभागाना-मेको भागोऽप्यनुक्रमात् ॥६५॥

अर्थ— प्रथम पृथ्वी के प्रथम सीमन्त पटल के नारकी जीवों की जघन्य आयु दश हजार (१००००) वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्बे हजार (९००००) वर्ष है। दूसरे पटल की उत्कृष्ट आयु नब्बे लाख वर्ष, तीसरे पटल की असंख्यात पूर्वकोटि और चौथे पटल की उत्कृष्ट आयु एक सागर के दशवें भाग अर्थात् $\frac{१}{१०}$ सागर प्रमाण है। इसके आगे सम्पूर्ण पटलों की उत्कृष्ट आयु का वृद्धि चय $\frac{१}{१०}$ सागर है अर्थात् पूर्व पूर्व पटलों की उत्कृष्ट आयु में $\frac{१}{१०}$ सागर जोड़ने से आगे-आगे के पटलों की उत्कृष्ट आयु प्राप्त होती जाती है ॥६३-६५॥

प्रथमे पटले ज्येष्ठं, यश्चायुस्तद्द्वितीयके।
जघन्यं समयेनाधिकं सर्वत्रेति संस्थितिः ॥६६॥
अन्तिमे प्रतरेऽस्यायु-रुत्कृष्टं सागरोपमम्।
द्वितीयादिष्वितिज्येष्ठ-मायुः स्यात्पटलेऽन्तिमे ॥६७॥
सागराश्च त्रयः सप्त-दशसप्तदशक्रमात्।
द्वाविंशतिस्त्रयस्त्रिंश-दित्युत्कृष्टायुषः स्थितिः ॥६८॥
विभक्तं समभागेना-युर्भागैः प्रतरप्रमैः।
श्वभ्राणां पटलेषु स्यात् क्रमवृद्धया पृथक् पृथक् ॥६९॥

अर्थ—प्रथम (ऊपर के) पटल की जो उत्कृष्ट आयु है उसमें एक समय अधिक कर देने पर वही द्वितीय (नीचे के) पटल की जघन्य आयु बन जाती है यह विधि सर्वत्र जानना चाहिए। प्रथम पृथिवी के अन्तिम पटल की उत्कृष्ट आयु एक सागर प्रमाण है। इसी प्रकार द्वितीयादि पृथ्वियों के अन्तिम पटलों की उत्कृष्ट आयु क्रमशः ३, ७, १०, १७, २२, और ३३ सागरोपम प्रमाण है। प्रत्येक नरक की उत्कृष्ट आयु में से जघन्य आयु को घटाकर शेष को पटल संख्या से भाग देने पर नरकों के प्रत्येक पटल की आयु वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे द्वितीय नरक की जघन्यायु एक सागर, उत्कृष्टायु तीन सागर है, अतः वृद्धि का प्रमाण (३-१)=२ सागर है, पटल संख्या ११ से दो सागर वृद्धि को भाग देने पर $\frac{२}{११}$ सागर प्रति पटल वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है ॥६६-६९॥

अथ सर्वनरकपटलानां प्रत्येकं जघन्योत्कृष्ट भेदाभ्यामायुरुच्यते—

रत्नप्रभायां प्रथमे पटले जघन्यायुर्दशसहस्त्रवर्षाणि। उत्कृष्टायुर्नवतिसहस्त्रवर्षाणि। द्वितीये च जघन्यायुर्वर्षाणां नवतिसहस्त्राणि ज्येष्ठार्युर्नवति लक्षाश्च। तृतीये निःकृष्टायुर्नवतिलक्षा। उत्कृष्टायुर-संख्यकोटि पूर्वाणि। चतुर्थे जघन्यायुरसंख्यकोटि पूर्वाणि। ज्येष्टायुरेककोटीकोटि पल्यानि। पञ्चमे

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जघन्या-युरेक कोटीकोटि पल्यानि। उत्कृष्टायुर्द्विकोटीकोटि पल्यानि। षष्ठे निकृष्टायुर्द्विकोटीकोटि पल्याश्च। ज्येष्ठा-युस्त्रि कोटीकोटिपल्यानि। सप्तमे जघन्यायुः स्थितिः त्रिकोटीकोटि पल्योपमानि। ज्येष्ठायुश्च तुः कोटीकोटि पल्यानि। अष्टमे जघन्यायुश्चतुःकोटीकोटि पल्योपमानि। उत्कृष्टायुरर्धसागरः। नवमे निःकृष्टायुरर्धसागरः। ज्येष्ठायुः षट्कोटीकोटि पल्यानि। दशमे जघन्यायुःस्थितिः षट्-कोटीकोटि पल्यानि। उत्कृष्टा च सप्तकोटिकोटि पल्यानि। एकादशे निःकृष्टायुः सप्तकोटीकोटि पल्यानि ज्येष्ठायुरष्टकोटीकोटि पल्यानि। द्वादशे जघन्यायुरष्टकोटीकोटि पल्यानि। ज्येष्ठायुर्नवकोटीकोटि पल्यानि। त्रयोदशेपटले नारकाणां जघन्यायुर्नवकोटीकोटि पल्यानि। परमास्थितिः एकः सागरः। शर्कराप्रभाया आदिमे प्रतरे जघन्यायुरेकसागरः। उत्कृष्टायुरेकसागरः सागरैकादश भागानां द्वौ भागौ। द्वितीये जघन्यायुरेकसागरः द्वौ भागौ। ज्येष्ठायुरेकोऽब्धिश्चत्वारो भागाः। तृतीयेनिःकृष्टायुरेकसागरः भागाश्चत्वारः। ज्येष्ठायुरेकसमुद्रः भागाः षट् च। चतुर्थे निःकृष्टस्थितिरेकोऽब्धिः षड् भागाः। उत्तमा स्थितिरेकोऽब्धिरष्टौ भागाः। पञ्चमे जघन्यायुरेकोजलधिरष्टौ भागाः। उत्कृष्टायुरेकसागरः भागादश षष्ठे निःकृष्टायुरेकोऽब्धिर्भागादश। ज्येष्ठायु द्वौ सागरौ सागरैकादश-भागानां एको भाग। सप्तमे जघन्यस्थितिः द्वौ सागरौ एकोभागश्च। उत्तमा स्थितिः द्वौ सागरौ भागास्त्रयः। अष्टमे जघन्यायुद्वौं समुद्रौ भागास्त्रयः। उत्कृष्टायुर्द्वौ सागरौ भागाः पञ्च। नवमे निकृष्टायुर्द्वौ सागरौ भागाः पंच। ज्येष्टायुर्द्वौ सागरौ भागाः सप्त। दशमे जघन्यायुर्द्वौ जलधिभागाः सप्त। उत्कृष्टायुर्द्वौ समुद्रौ सागरैकादशभागानां नवभागा। एकादशे नारकाणां जघन्यायुर्द्वौ सागरौ नवभागाः। उत्कृष्टायुस्त्रयः सागरः। बालुकायाः प्रथमे प्रतरे जघन्यायुस्त्रयः सागराः। उत्कृष्टायुस्त्रयः सागराः सागरनवभागानां चत्वारोभागाः। द्वितीये निःकृष्टायुस्त्रयः समुद्राः भागाश्चत्वारश्च। ज्येष्ठायुः सागरास्त्रयः भागा अष्टौ। तृतीये जघन्यायुः समुद्रास्त्रयभागा अष्टौ। उत्कृष्टायुः सागराश्चत्वारः सागरस्यनवभागानां त्रयोभागाः। चतुर्थे जघन्यायुः समुद्राश्चत्वारः भागास्त्रयश्च। ज्येष्ठायुः सागराश्चत्वारः भागाः सप्त। पञ्चमे जघन्या स्थितिश्चत्वारोऽम्बुधयः भागाः सप्त। उत्तमा स्थितिः समुद्राः पञ्च भागौ द्वौ। षष्ठे जघन्यायुः सागराः पञ्च भागौ द्वौ द्वौ। उत्कृष्टायुः पञ्चाब्धयः भागाः षट्। सप्तमे निःकृष्टायुः पञ्च समुद्राः भागाः षट् ज्येष्ठायुः सागराः षट् भाग एकः। अष्टमे जघन्यायुः समुद्राः षट् भाग एकः। उत्कृष्टायुः सागराः षट्। सागरस्य नवभागानां पञ्च भागाः। नवमे पटले नारकाणां जघन्यायुः षट् समुद्राः भागाः पञ्च। उत्कृष्टायुः सप्त सागराः। पङ्कप्रभाया आदिमे प्रतरे जघन्यायुः सप्ताम्बुधयः। उत्कृष्टायुः सप्तसागराः सागरसप्तभागानां त्रयो भागाः। द्वितीये निकृष्टायुः सप्ताम्बुधयः त्रयोभागाः। ज्येष्ठायुः सप्तसागराः भागाः षट्। तृतीये लघुस्थितिः समुद्राः सप्त भागाः षट्। बृहत्स्थितिः अष्टौसागराः द्वौ भागौ। चतुर्थे जघन्यायुरष्टौ समुद्राः द्वौ भागौ। उत्कृष्टायुरष्टौ सागराः पञ्चभागाश्च। पञ्चमे निकृष्टयुरष्टौ जलधयः भागाः पञ्च। ज्येष्ठायुः सागरा नव एको भागः। षष्ठे जघन्यायुर्नवसागराः एको भागः। ज्येष्ठायुर्नव समुद्राश्चत्वारो भागाः। सप्तमे नारकाणां जघन्या स्थितिर्नवाम्बुधयः भागाश्चत्वारः। परमा स्थितिः सागराः दश। धूमप्रभायाः प्रथमे प्रतरे जघन्यायुर्दशसागराः। उत्कृष्टायुरेकादश समुद्राः सागर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पञ्च भागानां द्वौ भागौ। द्वितीये निकृष्टायुरेकादशाब्धयः द्वौ भागौ च। ज्येष्ठायुर्द्वादशसागराभागाश्चत्वारः। तृतीये जघन्या स्थितिर्द्वादशसमुद्राश्चत्वारो भागाः। ज्येष्ठायुर्चतुर्दशसागराः एको भागः। चतुर्थे निःकृष्टायुश्चतुर्दश समुद्राः एको भागः। उत्कृष्टायुः पञ्चदशाब्धयस्त्रयो भागाः। पञ्चमे जघन्या स्थितिः पञ्चदशाब्धयः त्रयो भागाः। परमायुः सप्तदशसागराः। तमःप्रभाया आदिमे पटले जघन्यायुः सप्तदशजलधयः। उत्कृष्टायुरष्टादश सागराः सागरस्य त्रिभागानां द्वौ भागौ। द्वितीये निःकृष्टायुरष्टादशाब्धयः द्वौ भागौ। ज्येष्ठायुर्विंशति सागराः सागरस्य तृतीयो भागः। तृतीय जघन्यायुर्विंशति सागराः सागरस्य तृतीयो भागः। परमायुर्द्वाविंशतिसागरोपमम्। महातमःप्रभायाः पटले नारकाणां जघन्यायुः सागराः द्वाविंशतिः। उत्कृष्टायुस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमम्।

विशेष–गद्य भाग में सातों पृथ्वियों के ४९ पटलों की जघन्य उत्कृष्ट आयु का भिन्न–भिन्न विवेचन किया गया है जिसका सम्पूर्ण अर्थ तालिका के माध्यम से दर्शाया गया है।

[तालिका पृष्ठ ४० व ४१ पर देखें]

अब प्रत्येक पटल के नारकियों के शरीर का उत्सेध कहते हैं–

सप्तदण्डास्त्रयोहस्ताः षडंगुलास्तनून्नतिः।
उत्कृष्टानारकाणां च घर्मायाः पटलेऽन्तिमे॥७०॥
जघन्येन त्रयो हस्ताः आदिमे प्रतरे ततः।
शेषषड्नरकेषु स्याद् द्विगुणा द्विगुणोच्छ्रितिः॥७१॥
भागैः पटलसंख्यानैः भूमीनां पटलेषु च।
पृथग् विभक्त उत्सेधः क्रमाद् वृद्धियुतो मतः॥७२॥

अर्थ—धर्मा नामक प्रथम पृथ्वी के अन्तिम पटल में स्थित नारकियों के शरीर का उत्कृष्ट उत्सेध ७ धनुष, ३ हाथ और छह अंगुल है। शेष छह नरकों के अन्तिम पटलों में स्थित नारकियों के शरीर का उत्कृष्ट उत्सेध इससे दूना–दूना होता गया है। प्रथम नरक के प्रथम पटल का जघन्य उत्सेध तीन हाथ प्रमाण है। वृद्धि के प्रमाण को पटल संख्या से विभाजित करने पर जो प्रति पटल वृद्धि का प्रमाण आवे, उसको जोड़ देने से प्रत्येक पटल में शरीर का उत्सेध प्राप्त होता है ॥७०–७२॥

विशेषार्थ—प्रथम नरक के प्रथम पटल में शरीर का उत्सेध ३ हाथ है तथा अन्तिम पटल में उत्सेध ७ धनुष, ३ हाथ ६ अंगुल है। ७ ध. ३ हाथ ६ अंगुल में से ३ हाथ घटा देने पर ७ धनुष ६ अंगुल शेष रहे। यह वृद्धि १२ पटलों में हुई है, अतः सात धनुष ६ अंगुल को १२ से विभाजित करने पर दो हाथ ८ $\frac{१}{२}$ अंगुल प्राप्त होते हैं। यह प्रथम नरक के प्रत्येक पटल में वृद्धि का प्रमाण है। दूसरे नरक के अन्तिम पटल में शरीर उत्सेध ७ ध. ३ हाथ ६ अं. का दूना है। अर्थात् ७ ध. ३ हाथ ६ अं. की वृद्धि हुई। पटल संख्या ११ है, अतः ७ ध. ३ हाथ ६ अं. को ११ से विभक्त करने पर २ हाथ २० $\frac{२}{११}$ अंगुल प्राप्त होते हैं। यही दूसरे नरक में प्रति पटल वृद्धि का प्रमाण है। इसी प्रकार तीसरे नरक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के अन्तिम पटल में शरीर उत्सेध १५ ध. २ हा. १२ अं. का दुगना है; अर्थात् १५ ध. २ हा. १२ अं. की वृद्धि है। पटल संख्या ९ है, अतः १५ ध. २ हा. १२ अं. को ९ से भाजित करने पर एक ध. २ हा. २२$\frac{२}{३}$ अं. प्राप्त होता है। यही तीसरे नरक के प्रत्येक पटल में शरीर उत्सेध की वृद्धि का प्रमाण है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए।

अथ विस्तरेण सर्वनरक प्रतरेषु नारकाणां देहोत्सेधः पृथक् पृथक् निगद्यते–

घर्माया प्रथमे पटले नारकाणां कायोत्सेधस्त्रयो हस्ताः ततः क्रमाद् द्विहस्तसार्धाष्टांगुलवृद्ध्या। द्वितीये च धनुरेकं एको हस्तः सार्धाष्टांगुलाः। तृतीये एकं धनुः हस्तास्त्रयः अंगुलाः सप्तदश। चतुर्थे द्वे धनुषी द्वौ करौ सार्धागुलः। पञ्चमे धनुंषि त्रीणि अंगुलादश। षष्ठे त्रीणि धनूंषि द्वौ करौ सार्धाष्टा दशांगुलाः सप्तमे चत्वारि चापानि एको हस्तः त्रयोंऽगुलाः। अष्टमे चत्वारि धनूंषि त्रयो हस्ताः सार्धैका दशांगुलाः। नवमे पञ्च दण्डा एको हस्तः विंशतिरंगुलाः। दशमे षट् चापानिसार्धचत्वारोंऽगुलाः। एकादशे षड्धनुंषि द्वौ करौ त्रयोदशांगुलाः। द्वादशे सप्त धनूंषि सार्धैकविंशतिरंगुलाः। त्रयोदशे पटले नारकाणां देहोत्सेधः सप्त चापानि त्रयो हस्ताः षडंगुलाश्च। वंशायां आदिमे पटले नारकशरीरोच्छ्रितिः अष्टौदण्डाः द्वौ करौ द्वौ अंगुलौ, अंगुलैकादश भागानां द्वौ भागौ। ततो द्विकरविंशत्यंगुलैरंगुलैकादश भागानां द्विभागाभ्यां क्रमवृद्ध्या। द्वितीये नव चापानि द्वाविंशत्यंगुलाश्चत्वारो भागाः। तृतीये नवधनूंषि त्रयो हस्ता अष्टादशांगुलाः षड्भागाः। चतुर्थे दशचापानि द्वौ हस्तौ चतुर्दशांगुलाः भागा अष्टौ। पञ्चमे एकादश दण्डाः एकोहस्त दशांगुलाः दशभागाः। षष्ठे द्वादश चापानि अंगुलाः सप्त भाग एकः। सप्तमे द्वादश धनूंषि त्रयः कराः त्रयोंऽगुलास्त्रयोभागाः। अष्टमे त्रयोदश चापानि एकः करः त्रयोविंशतिरंगुलाः भागाः पञ्च। नवमे चतुर्दशदण्डाः एकोनविंशतिरंगुलाः सप्तभागाः। दशमे चतुर्दश चापानि त्रयोहस्ताः पञ्चदशांगुलाः भागा नव। एकादशे प्रतरे नारककायोन्नतिः पञ्चदश दण्डाः द्वौ करौ द्वादशांगुलाः। मेघायाः प्रथमे पटले नारकाणां देहोत्सेधः सप्तदश धनूंषि। एको हस्तः दशांगुलाः अगुलःत्रिभागानां द्वौ भागौ। ततः एक धनुः द्विकर द्वाविंशत्यंगुलैश्चांगुलत्रिभागानां, द्विभागाभ्यां क्रमवृद्ध्या। द्वितीये पटले एकोनविंशति धनूंषि नवांगुलाः अंगुलतृतीयभागः। तृतीये विंशति चापानि त्रयो हस्ताः अष्टांगुलाः। चतुर्थे द्वाविंशति दण्डा द्वौ करौ षडंगुलाः द्वौ भागौ। पञ्चमे चतुर्विंशति चापानि एकः करः पञ्चांगुला अंगुलतृतीयभागः। षष्ठे षड्विंशति धनूंषि चत्वारोंऽगुलाः। सप्तमे सप्तविंशति चापानि त्रयो हस्ताः द्वावंगुलौ अंगुलस्य द्वौ भागौ। अष्टमे एकोनत्रिंशद्धनूंषि द्वौ करौ एकांगुलः अंगुलतृतीय भागः। नवमे एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः। अञ्जनाया आदिमे प्रतरे नारकाङ्गोत्सेधः पञ्चत्रिंशच्चापानि द्वौ करौ विंशतिरंगुलाः अंगुलसप्तभागानां चत्वारो भागाः। ततश्चतुर्द्धनुरेक हस्तविंशत्यंगुलैश्चांगुलसप्तभागानां चतुर्भागैः क्रमवृद्धितः। द्वितीये चत्वारिंशद्धनूंषि सप्तदशांगुलाः एको भागः। तृतीये चतुश्चत्वारिंशद्धनूंषि द्वौ करौ त्रयोदशांगुलाः अंगुलसप्तभागाः पञ्चगृह्यन्ते। चतुर्थे एकोनपञ्चाशद्दण्डाः दशांगुलाः द्वौ भागौ। पञ्चमे त्रिपञ्चाशच्चापानि द्वौ हस्तौ षडंगुलाः भागाः षट्। षष्ठे अष्टपञ्चाशच्चापानि त्रयोंऽगुलाः

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सातों नरकों के प्रत्येक पटल की जघन्य उत्कृष्ट आयु का विवरण

धम्मा पृथ्वी			वंशा पृथ्वी		
पटल संख्या	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल संख्या	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
१	१०००० (दश ह.) वर्ष	९०००० (९० ह.) वर्ष	१	१ सागर	$1\frac{2}{11}$ सागर
२	९०००० (९० ह.) वर्ष	९००००० (९० लाख) वर्ष	२	$1\frac{2}{11}$ सागर	$1\frac{4}{11}$ सागर
३	९००००० (९० लाख) वर्ष	असंख्यात पूर्व कोटियाँ	३	$1\frac{4}{11}$ सागर	$1\frac{6}{11}$ सागर
४	असंख्यात पूर्व कोटियाँ	एक कोटाकोटी पल्य ($\frac{1}{10}$ सागर)	४	$1\frac{6}{11}$ सागर	$1\frac{8}{11}$ सागर
५	एक कोटाकोटी पल्य	दो कोटाकोटी पल्य ($\frac{2}{10}$ सागर)	५	$1\frac{8}{11}$ सागर	$1\frac{10}{11}$ सागर
६	दो कोटाकोटी पल्य	तीन कोटाकोटी पल्य ($\frac{3}{10}$ सागर)	६	$1\frac{10}{11}$ सागर	$2\frac{1}{11}$ सागर
७	तीन कोटाकोटी पल्य	चार कोटाकोटी पल्य ($\frac{4}{10}$ सागर)	७	$2\frac{1}{11}$ सागर	$2\frac{3}{11}$ सागर
८	चार कोटाकोटी पल्य	आधा ($\frac{1}{2}$) सागर	८	$2\frac{3}{11}$ सागर	$2\frac{5}{11}$ सागर
९	आधा सागर	छह कोटाकोटी पल्य ($\frac{6}{10}$ सा.)	९	$2\frac{5}{11}$ सागर	$2\frac{7}{11}$ सागर
१०	छह कोटाकोटी पल्य	सात कोटाकोटी पल्य ($\frac{7}{10}$ सा.)	१०	$2\frac{7}{11}$ सागर	$2\frac{9}{11}$ सागर
११	सात कोटाकोटी पल्य	आठ कोटाकोटी पल्य ($\frac{8}{10}$ सा.)	११	$2\frac{9}{11}$ सागर	३ सागर
१२	आठ कोटाकोटी पल्य	नौ कोटाकोटी पल्य ($\frac{9}{10}$ सा.)			
१३	नौ कोटाकोटी पल्य	एक सागरोपम			

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मेघा पृथ्वी			अंजना पृथ्वी			अरिष्टा पृथ्वी			मघवी पृथ्वी			माघवी पृथ्वी		
प. सं.	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	प. सं.	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	प. सं.	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	प. सं.	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	प. सं.	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
१	३ सा.	३ $\frac{४}{९}$ सा.	१	७ सा.	७ $\frac{३}{७}$ सा.	१	१० सा.	११ $\frac{२}{५}$ सा.	१	१७ सा.	१८ $\frac{२}{३}$ सा.	१	२२ सा.	२३ सा.
२	३ $\frac{४}{९}$ सा.	३ $\frac{८}{९}$ सा.	२	७ $\frac{३}{७}$ सा.	७ $\frac{६}{७}$ सा.	२	११ $\frac{२}{५}$ सा.	१२ $\frac{४}{५}$ सा.	२	१८ $\frac{२}{३}$ सा.	२० $\frac{१}{३}$ सा.	२		
३	३ $\frac{८}{९}$ सा.	४ $\frac{३}{९}$ सा.	३	७ $\frac{६}{७}$ सा.	८ $\frac{२}{७}$ सा.	३	१२ $\frac{४}{५}$ सा.	१४ $\frac{१}{५}$ सा.	३	१८ $\frac{१}{३}$ सा.	२२ सा.	३		
४	४ $\frac{३}{९}$ सा.	४ $\frac{७}{९}$ सा.	४	८ $\frac{२}{७}$ सा.	८ $\frac{५}{७}$ सा.	४	१४ $\frac{१}{५}$ सा.	१५ $\frac{३}{५}$ सा.						
५	४ $\frac{७}{९}$ सा.	५ $\frac{२}{९}$ सा.	५	८ $\frac{५}{७}$ सा.	९ $\frac{१}{७}$ सा.	५	१५ $\frac{३}{५}$ सा.	१७ सा.						
६	५ $\frac{२}{९}$ सा.	५ $\frac{६}{९}$ सा.	६	९ $\frac{१}{७}$ सा.	९ $\frac{४}{७}$ सा.									
७	५ $\frac{६}{९}$ सा.	६ $\frac{१}{९}$ सा.	७	९ $\frac{४}{७}$ सा.	१० सा.									
८	६ $\frac{१}{९}$ सा.	६ $\frac{५}{९}$ सा.												
९	६ $\frac{५}{९}$ सा.	७ सा.												

नोट—यह जघन्य उत्कृष्ट आयु का प्रमाण सातों पृथ्वियों के इन्द्रक बिलों का कहा गया है, यही प्रमाण प्रत्येक पृथ्वियों के श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों में रहने वाले नारकियों का जानना चाहिए।

(ति॰ प॰ २/२१५)

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अंगुलसप्तभागानां त्रयोभागाः। सप्तमे द्विषष्टि चापानि द्वौ करौ। अरिष्टायाः प्रथमे पटले नारकांगोच्छ्रितिः पञ्चसप्तति धनूंषि ततः द्वादशधनुद्विः करैः क्रमवृद्ध्या। द्वितीये च सप्ताशीति चापानि द्वौ करौ। तृतीये शतधनूंषि। चतुर्थे द्वादशाधिकशतदण्डाः द्वौ हस्तौ। पञ्चमे पञ्चविंशत्यधिकशतधनूंषि। मघव्या आदिमे प्रतरे नारकदेहोत्सेधः षष्टयाधिकशत चापानि द्वौ हस्तौ षोडशांगुला.। ततः एकचत्वारिंशद्धनुः द्विकर षोडशांगुलैः क्रमवृद्ध्या। द्वितीये अष्टाधिकद्विशत चापानि एक हस्तः अष्टांगुलाः। तृतीये सार्धद्विशतचापानि। माघव्याः प्रतरे नारकाणां देहोत्सेधः पञ्चशतचापानि।

अब विस्तार से सातों नरकों के सम्पूर्ण पटलों में स्थित नारकी जीवों के शरीर का उत्सेध पृथक्-पृथक् कहते हैं—

घम्मा पृथ्वी के प्रथम पटल में स्थित नारकी जीव के शरीर का उत्सेध ३ हस्त प्रमाण है और इस पृथ्वी के वृद्धि का प्रमाण २ हाथ, ८$\frac{१}{२}$ अंगुल है। अर्थात् प्रथम पटल के उत्सेध में इस वृद्धि चय को जोड़ देने से आगे आगे के पटलों के नारकियों के शरीरों का उत्सेध प्राप्त होता जाता है। जैसे– ३ ह. + २ ह. ८ $\frac{१}{२}$ अं.=१ धनुष १ हाथ ८$\frac{१}{२}$ अं. दूसरे पटल का उत्सेध होता है। इसी प्रकार (३) १ ध. ३ ह. १७ अं.। (४) २ ध. २ ह. १ $\frac{१}{२}$ अं.। (५) ३ ध. १० अं.। (६) ३ ध. २ ह. १८ $\frac{१}{२}$ अं.। (७) ४ ध. १ ह. ३ अं.। (८) ४ ध. ३ ह. ११ $\frac{१}{२}$ अं. (९) ५ ध. १ ह. २० अं.। (१०) ६ ध. ४ $\frac{१}{२}$ अं.। (११) ६ ध. २ ह. १३ अं.। (१२) ७ ध. २१ $\frac{१}{२}$ अं. और (१३) पटल में नारकियों के शरीर का उत्सेध ७ ध. ३ ह. ६ अं. होता है।

वंशा पृथ्वी के प्रथम पटल में नारकी जीवों के शरीर का उत्सेध ८ ध. २ ह. २ $\frac{२}{११}$ अं. है। यहाँ क्रम वृद्धि का प्रमाण २ ह. २० $\frac{२}{११}$ अं. है। उत्तरोत्तर इसी को जोड़ते हुए (२) ९ ध. २२ $\frac{४}{११}$ अ. (३) ९ ध. ३ ह. १८ $\frac{६}{११}$ अं. (४) १० ध. २ ह. १४ $\frac{८}{११}$ अं. (५)११ ध. १ ह. १० $\frac{१०}{११}$ अं. (६) १२ ध. ७ $\frac{१}{११}$ अं. (७) १२ ध. ३ ह. ३ $\frac{३}{११}$ अं.। (८) १३ध. १ ह. २३ $\frac{५}{११}$ अं.। (९)१४ ध.१९ $\frac{७}{११}$ अं. (१०)१४ ध. ३ ह. १५ $\frac{९}{११}$ अं. और (११) १५ ध. २ ह. १२ अं. प्रमाण उत्सेध है। मेघापृथ्वी के प्रथम पटल में नारकियों के शरीर का उत्सेध १७ ध. १ ह. १० $\frac{२}{३}$ अं. है और यहाँ क्रम वृद्धि का प्रमाण १ ध. २ ह. २२ $\frac{२}{३}$ अं. है। उत्तरोत्तर इसी चय को जोड़ते जाने से शरीर उत्सेध (२) १९ ध. ९ $\frac{१}{३}$ अं (३) २० ध. ३ ह. ८ अं.। (४) २२ ध. २ ह. ६ $\frac{२}{३}$ अं.। (५) २४ ध. १ ह. ५ $\frac{१}{३}$ अं.। (६) २६ ध. ४ अं.। (७) २७ ध. ३ ह. २ $\frac{२}{३}$ अं.। (८)२९ ध २ ह. १ $\frac{१}{३}$ अं. प्रमाण है। (९) ३१ ध. १ हाथ। अंजना पृथ्वी के प्रथम पटल में नारकियों के शरीर का उत्सेध ३५ ध. २ ह. २० $\frac{४}{७}$ अं. प्रमाण है और वहाँ के क्रम वृद्धि चय का प्रमाण ४ ध. १ ह. २० $\frac{४}{७}$ अंगुल है। (२) ४० ध. १७. $\frac{१}{७}$ अं.। (३) ४४ ध. २ ह. १३ $\frac{५}{७}$ अं.। (४) ४९ ध. १० $\frac{२}{७}$ अं.। (५) ५३ ध. २ ह. ६. $\frac{६}{७}$ अं (६) ५८ ध. ३ $\frac{३}{७}$ अं. और ७) ६२ ध २ हस्त प्रमाण उत्सेध है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अरिष्टा पृथ्वी के प्रथम पटल में नारकियों के शरीर की ऊँचाई ७५ ध. है और यहाँ क्रमशः वृद्धि चय का प्रमाण १२ ध. २ हस्त है, अतः (२) ८७ ध. २ ह. (३) १०० ध. (४) ११२ ध. २ ह. और (५) १२५ धनुष प्रमाण उत्सेध होगा। मघवी पृथ्वी के प्रथम पटल में नारकी जीवों के शरीर का उत्सेध १६६ ध. २ ह. १६ अं. है और यहाँ क्रमशः वृद्धि चय का प्रमाण ४१ ध. २ ह. १६ अंगुल है, अतः (२) २०८ ध. १ ह. ८ अं. और (३) २५० धनुष प्रमाण उत्सेध है। माघवी पृथ्वी के अवधि स्थान नामक अन्तिम पटल में नारकी जीवों के शरीर का उत्सेध ५०० धनुष प्रमाण है।

अब ६ श्लोकों द्वारा नारकियों के उपपाद स्थानों के आकार, व्यास एवं दीर्घता का निरूपण करते हैं—

खरशूकरमार्जार-कपिश्वानादि गोमुखाः।
मधुकृतजालसादृश्या घण्टाधोमुखसन्निभाः॥७३॥

वृत्तास्त्र्यस्त्राश्चतुःकोणा-दुःस्पर्शा दुःखखानयः।
वज्राभा प्रति बीभत्सां दुर्गन्धाश्च घृणास्पदाः॥७४॥

तमश्चयावृता निन्द्याः समस्त श्वभ्रभूमिषु।
इन्द्रकाद्येषु कृत्स्नेषु योनयः सन्ति दुष्कराः॥७५॥

क्रोशैको द्वौ त्रयः क्रोशाः योजनैको द्वयं त्रयम्।
योजनानां शतं चेति व्यासः प्रोक्तोऽप्यनुक्रमात्॥७६॥

सप्तानां श्वभ्रयोनीनां क्रोशाः पञ्चततो दश-
तथा पञ्चदश क्रोशाः पञ्चैव योजनानि च॥७७॥

दश पञ्चदशां ते योजनानां शतपञ्चकम्।
इति दैर्घ्यं क्रमात्प्रोक्तं सर्वासु श्वभ्रयोनिषु॥७८॥

अर्थ—सातों नरक भूमियों में इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों से सम्बन्धित योनियाँ-जन्म भूमियाँ गधा, सूकर, बिल्ली, बन्दर, कुत्ता और गाय आदि के मुख सदृश (ऊपर सँकरी भीतर चौड़ी), मधुकृत जाल सदृश, घण्टाकार और अधोमुख हैं, उनके आकार गोल, त्रिकोण और चतुष्कोण हैं तथा वे जन्मभूमियाँ दुःस्पर्श अर्थात् तीक्ष्ण, रूक्ष एवं घन स्पर्श से सहित, दुःखों की खान (आकर), वज्राभा अर्थात् वज्र सदृश कठोर तलभाग एवं दीवालों से युक्त, अत्यन्त ग्लानि एवं दुर्गन्ध उत्पादक, घृणास्पद, अन्धकार से व्याप्त, निन्द्यनीय और दुष्कर अर्थात् भयंकर हैं। उन सातों नरक भूमियों से सम्बन्धित सम्पूर्ण जन्म योनियों का व्यास क्रमशः १ कोश, २ कोश, ३ कोश, १ योजन, २ योजन, ३ योजन, और १०० योजन प्रमाण कहा गया है। इसी प्रकार उनकी दीर्घता भी क्रमशः ५ कोश, १० कोश, १५ कोश, ५ योजन, १० योजन, १५ योजन और ५०० योजन प्रमाण कही गई है ॥७३-७८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब नरक प्राप्ति के कारणभूत परिणामों एवं आचरणों का दिग्दर्शन ९ श्लोकों द्वारा किया जा रहा है–

ये सप्तव्यसनासक्ता बह्वारम्भकृतोद्यमाः।
अत्यसन्तोषिणो नीच-सङ्गश्रीसंग्रहोद्यताः॥७९॥
अतृप्ताः कामसेवाद्यै र्विषयामिषलम्पटाः।
अखाद्यखादका निन्द्या अपेयपानपायिनः॥८०॥
अत्यन्तनिर्दयाः क्रूराः क्रूरकर्मविधायिनः।
रौद्रध्यानरता रौद्राः कृष्णलेश्या मदोद्धताः॥८१॥
जिनमार्ग बहिर्भूतांस्तीव्रमिथ्यात्व वासिताः।
कुशास्त्राध्ययनोद्युक्ता मिथ्यैकान्तमताश्रिताः॥८२॥
पापकर्मरतानित्यं धर्मकर्मातिगाः शठाः।
पात्रदानजिनेन्द्रार्चा व्रतशीलादिदूरगाः॥८३॥
हिंसादिपञ्चपापाढ्या नास्तिका धर्मदूषकाः।
धर्मविघ्नकरा मिथ्या पापमार्गप्रवर्तकाः॥८४॥
जिनशासनजैनानां श्रावकाणां च धर्मिणाम्।
मुनीनां तीर्थकर्तृणां शास्त्राणां निन्दकाः खलाः॥८५॥
इत्यादि निन्द्यदुष्कर्म कारिणः पापपण्डिताः।
नरा याश्चस्त्रियो दुष्टा-स्तिर्यञ्चो रौद्रमानसाः॥८६॥
रौद्रध्यानेन मृत्वान्ते ते ता यान्ति च पापिनः।
पापोदयेन तद्योग्याः सप्तेमाः श्वभ्रदुर्गतीः॥८७॥

अर्थ–दुष्ट चित्त वाले जो स्त्री और पुरुष निरन्तर सप्तव्यसनों में आसक्त, बहु आरम्भ, परिग्रह में उद्यमशील, अत्यन्त असन्तोषी, नीच लक्ष्मी के संग्रह में सदा प्रयत्नशील, अतृप्त, कामसेवन आदि विषयों के और मांस भक्षण के लम्पटी, अभक्ष्य भक्षण में रत, निन्द्य कार्य करने वाले, अपेय अर्थात् शराब आदि का सेवन करने वाले, अत्यन्त निर्दय, क्रूर परिणामी, क्रूरकर्म करने में संलग्न, रौद्रध्यान रत, रौद्रता एवं कृष्णलेश्या से अनुरञ्जित, मद से उद्धत, जिनमार्ग से बहिर्भूत, तीव्र मिथ्यात्व से युक्त कुशास्त्रों के अध्ययन में उद्यत, एकान्त आदि मिथ्यात्व को आश्रयदाता, पापकर्म रत, धर्म कर्म से निरन्तर दूर रहने वाले, शठ, पात्रदान, जिनेन्द्र पूजन और व्रतशील आदि सत्कर्मों से अति दूर, हिंसादि पाँच पापों से युक्त, नास्तिक, समीचीन धर्म को दूषण लगाने वाले, धार्मिक कार्यों में विघ्न डालने वाले, मिथ्या और पापमार्ग के प्रवर्तक, जिनशासन, जैनधर्मानुयायी, श्रावक श्राविकाओं, धर्मात्माओं, मुनिराजों, तीर्थंकरों और शास्त्रों की निन्दा करने वाले, दुष्ट स्वभावी, निन्द्य और दुष्कर्म करने वाले तथा जो पाप के पण्डित हैं वे मनुष्य एवं स्त्री तथा रौद्र परिणाम वाले दुष्ट पशु (तिर्यञ्च), अपनी आयु के अन्त में रौद्रध्यान से मरकर वे पापी पापोदय से अपने अपने परिणामों की योग्यतानुसार रत्नप्रभा

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आदि सातों नरक भूमियों में दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥७९-८७॥

चार श्लोकों द्वारा वहाँ उत्पन्न होने वाले नारकियों की स्थिति एवं उनके निपतन और उत्पतन का निर्देश करते हैं—

अन्तर्मुहूर्त कालेन ते तासु श्वभ्रयोनिषु।
षट् पर्याप्तीरघात्प्राप्य स्वोर्ध्वपादाह्यधोमुखाः ॥८८॥
परं रावं प्रकुर्वाणाः पतन्त्यधोमहीतले।
वज्रकण्टकशस्त्राग्रे ततोऽतिदुःखविह्वलाः ॥८९॥
इव सूत्रावृताः पिण्डाः स्वयमेवोत्पतन्ति च।
क्रोशत्रयं चतुर्भागाधिकं योजनसप्तकम्॥९०॥
घर्मायां शेष पृथ्वीषु द्विगुणं द्विगुणं ततः।
क्रमादुत्पतनं ज्ञेयं नारकाणां सुदुष्करम् ॥९१॥

अर्थ—उन नारक भूमियों में अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा छह पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ऊपर पैर और नीचे हैं मुख जिनके तथा जो भयङ्कर शब्द कर रहे हैं ऐसे वे नारकी नीचे भूमितल पर गिरते हैं, और वज्र एवं कण्टक के सदृश कठोर तथा शस्त्रों के अग्रभाग के सदृश तीक्ष्ण भूमि के स्पर्श जन्य अत्यन्त दुःख से विह्वल होते हुए गेंद के समान स्वयं ऊपर उछलते हैं। उन नारकी जीवों का अत्यन्त दुष्कर उत्पतन घम्मा पृथ्वी में सात योजन, तीन कोश और एक कोश का चतुर्थ भाग (५०० धनुष) ($\frac{१}{४}$ कोस अधिक ३ कोस) प्रमाण और अन्य शेष छह पृथिवियों में इससे दूना-दूना जानना चाहिए ॥८८-९१॥ (सातवीं पृथ्वी में ५०० योजन प्रमाण ऊपर उछलते हैं)

अथामीषामुत्पतनं प्रत्येकं सप्तनरकेषु प्रोच्यते—

घर्मायां नारकाः धरायां निपत्य तत्क्षणं ततः सपादत्रिक्रोशाधिक सप्तयोजनानि उत्पतन्ति। वंशायां सार्धद्विक्रोशाधिक पञ्चदश योजनानि। मेघायां क्रोशाधिकैक त्रिंशद्योजनानि। अञ्जनायां सार्धद्विषष्टि योजनानि च। अरिष्टायां पञ्चविंशत्यधिक शत योजनानि। मघव्यां सार्धद्विशतयोजनानि। माधव्यां नारकाः भूमेः पंचशतयोजनानि चोत्पतन्ति।

अब प्रत्येक नरकों में नारकियों का उत्पतन कहते हैं—

अर्थ—घम्मा पृथ्वी के नारकी भूमि पर गिरने के तत्क्षण ही पृथ्वी से सात योजन ३$\frac{१}{४}$कोश ऊपर उछलते हैं। वंशा पृथ्वी के १५ योजन २ $\frac{१}{२}$ कोश, मेघा पृथ्वी के ३१ योजन एक कोश, अञ्जना पृथ्वी के ६२ योजन २ कोश, अरिष्टा पृथ्वी के १२५ योजन, मघवी पृथ्वी के २५० योजन और माघवी पृथ्वी के नारकी जीव ५०० योजन ऊपर उछलते हैं।

अब चार श्लोकों द्वारा नारक पृथ्वियों में सम्भव लेश्या का निरूपण करते हैं—

घर्मायां स्याज्जघन्या दु-र्लेश्या कापोतसंज्ञिका।
वंशायां मध्यमा कापो-ताख्या नारकजन्मिनाम्॥९२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मेघायां सा खिलोत्कृष्टा, जघन्या नीलनामिका।
अञ्जनायां च लेश्यास्ति, नीलाख्यामध्यमाशुभा॥९३॥
अरिष्टायां भवेन्नीलोत्कृष्टा कृष्णा जघन्यका।
मघव्यां मध्यमा कृष्ण, लेश्या स्यात्सुष्ठु निन्दिता॥९४॥
माघव्यां सकलोत्कृष्टा, कृष्णलेश्याऽशुभाकरा।
इमास्त्रिस्त्रोऽशुभालेश्या दुःखाद्याक्लेशमातरः॥९५॥

अर्थ—जो दुःखों को देने वालीं हैं और क्लेश की माता हैं नरकों में ऐसी तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। उनमें से घम्मा पृथ्वी में स्थित नारकी जीवों के परिणाम जघन्य कापोत लेश्या से युक्त, वंशा में मध्यम कापोत, मेघा में उत्कृष्ट कापोत और जघन्य नील, अञ्जना में मध्यम नील, अरिष्टा में उत्कृष्ट नील और जघन्य कृष्ण, मघवी में मध्यम कृष्ण और माघवी पृथ्वी में उत्पन्न नारकी जीवों के परिणाम निन्दनीय उत्कृष्ट कृष्णलेश्या से अनुरञ्जित होते हैं ॥९२-९५॥

कितने संहननों से युक्त जीव किस पृथ्वी तक उत्पन्न होता है। इसका निर्देश—

आद्यान् श्वभ्रत्रयान् यान्ति, षट्संहनन संयुताः।
पञ्चमश्वभ्रपर्यन्तं, पञ्चसंहननान्विताः॥९६॥
षट् पृथ्व्यन्तं च गच्छन्ति, चतुः संहननाङ्किताः।
पापिनः सप्तपृथ्व्यन्तमादि संहननाङ्गिनः॥९७॥

अर्थ—आदि के तीन नरकों तक छह संहननों से युक्त जीव जन्म लेते हैं, पाचवें नरक पर्यन्त सृपाटिका को छोड़ कर शेष पाँच संहनन वाले, छठवें नरक पर्यन्त सृपाटिका और कीलक को छोड़कर शेष चार संहनन वाले तथा सातवें नरक में (७ वें नरक पर्यन्त) एक वज्रवृषभनाराचसंहनन से युक्त पापी जीव ही जन्म लेते हैं ॥९६-९७॥

कौन जीव किस-किस पृथ्वी तक जन्म ले सकते हैं? इसका निदर्शन करते हैं—

असंज्ञिनोऽति पापेन व्रजन्ति प्रथमां क्षितिम्।
सरीसर्पा द्वितीयान्तं यान्त्युत्कृष्टकुपापतः॥९८॥
मांसाशिपक्षिणः क्रूरास्तृतीयान्तं व्रजन्ति च।
भुजङ्गमाश्चतुर्थ्यन्तमत्यन्तक्रूरकर्मभिः ॥९९॥
दंष्ट्रिणः सिंहव्याघ्राद्याः पञ्चम्यन्तं प्रयान्ति च।
निःशीला अतिपापाढ्याः षष्ट्यन्तं योषिताः[1] क्रमात् ॥१००॥
सप्तमीक्षितिपर्यन्तं महामत्स्याश्चिरायुषः।
महापापभराक्रान्ता नराश्च यान्ति दुर्धियः ॥१०१॥

---

१. योषितोऽशुभात् अ.।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—अत्यन्त पाप के कारण असंज्ञी जीव प्रथम पृथ्वी तक ही जाते हैं। उत्कृष्ट पाप प्रवृत्ति से सरीसर्प दूसरी पृथ्वी (१ ली+२ री) पर्यन्त जाते हैं। मांसभक्षी पक्षी क्रूर परिणामों के कारण तीसरी पृथ्वीपर्यन्त (१ ली से ३ री तक) जन्म लेते हैं। अत्यन्त क्रूर कर्मरत होने से सर्प चौथी पृथ्वी (१ ली से ४ थी) पर्यन्त जन्म लेते हैं। दाढ़ वाले सिंह, व्याघ्र आदि पाँचवीं पृथ्वी पर्यन्त ही जाते हैं। शील रहित एवं बहुत पाप से युक्त स्त्री छठवीं पृथ्वी पर्यन्त तथा दीर्घ आयु को धारण करने वाले महामत्स्य और महापाप के भार से आक्रान्त और खोटी बुद्धि को धारण करने वाले मनुष्य सातवीं पृथ्वी (१ ली से ७ वीं) पर्यन्त जाते हैं ॥९८-१०१॥

विशेष—कर्मभूमि के मनुष्य एवं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ही नरकों में उत्पन्न होते हैं।

कौन जीव किस नरक में कितनी बार उत्पन्न हो सकता है, इसका विवेचन तीन श्लोकों द्वारा करते हैं—

उत्कृष्टेन स्वसन्तत्या सोऽसंज्ञी प्रथमावनौ।
अष्टवारान् क्रमाद् गच्छेत् सरिसर्पोऽति पापतः ॥१०२॥
सप्तवारान् द्वितीयायां तृतीयायां खगो व्रजेत्।
षड्वारांश्च चतुर्थ्यां हि पञ्चवारान् भुजङ्गमाः ॥१०३॥
पञ्चम्यां च चतुर्वारान् याति सिंहो निरन्तरम्।
षष्ठ्यां योषित् त्रिवारां सप्तम्यां वारद्वयं पुमान् ॥१०४॥

अर्थ—पाप के कारण यदि कोई असंज्ञी जीव उत्कृष्ट रूप से प्रथम पृथ्वी में उत्पन्न हो तो आठ बार, सरीसर्प यदि वंशा में निरन्तर उत्पन्न हो तो सात बार, पक्षी यदि मेघा में निरन्तर उत्पन्न हो तो छह बार, सर्प यदि अञ्जना में निरन्तर उत्पन्न हो तो पाँच बार, सिंह यदि अरिष्टा में निरन्तर हो तो चार बार, स्त्री यदि मघवी पृथ्वी में निरन्तर उत्पन्न हो तो तीन बार और यदि कोई मत्स्य एवं मनुष्य माघवी पृथ्वी में उत्पन्न हो तो दो बार उत्पन्न हो सकते हैं ॥१०२-१०४॥

विशेष—नरक से निकला हुआ कोई भी जीव असंज्ञी और सम्मूर्च्छन जन्म वाला नहीं होता तथा सातवें नरक से निकला हुआ कोई भी जीव मनुष्य नहीं होता। वहाँ से निकले हुए जीव को असंज्ञी, मत्स्य और मानव पर्याय के पूर्व एक बार बीच में क्रमशः संज्ञी तथा गर्भज तिर्यञ्च पर्याय धारण करनी ही पड़ती है। इसी कारण इन जीवों के बीच में एक-एक पर्याय का अन्तर होता है, किन्तु सरीसृप, पक्षी, सर्प, सिंह और स्त्री के लिये ऐसा नियम नहीं है, वे बीच में अन्य किसी पर्याय का अन्तर डाले बिना ही उत्पन्न हो सकते हैं।

नरक से निकलने वाले जीवों की उत्पत्ति का नियम कहते हैं—

श्वभ्रेभ्यो निर्गता ये ते तिर्यग् नरगतिद्वये।
कर्मभूमिषु जायन्ते गर्भजाः संज्ञिनः स्फुटम् ॥१०५॥
अवश्यं नारकाः क्रूरा निर्गताः सप्तमीक्षिते।
क्रूरजातिषु तिर्यक्त्वं लभन्ते श्वभ्रसाधकम् ॥१०६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निर्गत्य नरकाज्जीवाश्चक्रे शबलकेशवाः।
तच्छत्रवो न जायन्ते चायान्त्येते च्युता दिवः ॥१०७॥
चतुर्थनरकादेत्य न स्युस्तीर्थकरा भुवि।
निर्गत्य पञ्चमश्वभ्राच्चरमाङ्गा भवन्ति न ॥१०८॥
जीवाः षष्ठान् किलागत्य जायन्ते यतयो न च।
सप्तमश्वभ्रतः सासादना मिश्रादृगङ्किताः ॥१०९॥

अर्थ—प्रथम पृथ्वी से षष्ठ पृथ्वी तक के नारकी जीव नरक से निकलकर मनुष्य और तिर्यञ्च इन दो गतियों में कर्मभूमिज, गर्भज (पर्याप्तक) और संज्ञी होते हैं तथा सातवीं पृथ्वी से निकले हुए क्रूर स्वभावी नारकी जीव पुनः नरक के साधनभूत क्रूर स्वभाव वाली जाति में तिर्यञ्चपने को प्राप्त करते हैं अर्थात् सातवीं पृथ्वी से निकले हुए नारकी जीव नियम से कर्मभूमिज, गर्भज, पर्याप्तक और संज्ञी तिर्यञ्च होते हैं ॥१०५-१०६॥

विशेष—नरकों से निकले हुए जीव देव, नारकी, भोगभूमिज, असंज्ञी, लब्ध्यपर्याप्तक और सम्मूर्च्छन नहीं होते। नरक से निकले हुए जीव चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण और प्रतिनारायण नहीं होते। ये उपर्युक्त पदवीधारी जीव तो स्वर्ग से च्युत होकर ही आते हैं। चतुर्थ नरक से निकला हुआ जीव तीर्थंकर नहीं होता। पञ्चम नरक से निकले हुए चरमशरीरी नहीं होते। षष्ठ पृथ्वी से निकले हुए सकलसंयमी नहीं होते और सप्तम पृथ्वी से निकले हुए नारकी जीव सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि नहीं होते ॥१०७-१०९॥

नरकस्थ दुर्गन्धित मिट्टी की भीषणता का विवेचन करते हैं—

प्रथमे पटले निन्द्य पूतिगन्धोऽति दुस्सहः।
मृत्तिकाया भ्रमेद् व्यापन् क्रोशार्धं घ्राणदुःखदः ॥११०॥
ततोऽधोधः समस्तान्य पटलेष्वप्यनुक्रमात्।
अन्तिमं पटलं यावत् क्रोशार्धं स प्रवर्धते ॥१११॥

अर्थ—प्रथम पटल में निन्दनीय, खोटी दुर्गन्ध युक्त, अति दुस्सह और घ्राण इन्द्रिय को दुःख देने वाली मिट्टी अर्ध कोश पर्यन्त फैलती है, और उससे नीचे-नीचे के सम्पूर्ण अन्य पटलों में अनुक्रम से अर्ध-अर्ध कोश वृद्धिङ्गत होते हुए अन्तिम पटल में उसका फैलाव २४$\frac{१}{२}$ कोस हो जाता है ॥११०-१११॥

अस्यैव विस्तरं ब्रुवे—

घम्मायाः प्रथमे प्रतरे मृत्तिकादुर्गन्धः क्रोशार्धं प्रसरति। द्वितीये क्रोशं च। तृतीये सार्धक्रोशं। चतुर्थे द्वौ क्रोशौ। पञ्चमे सार्धक्रोशद्वयं। षष्ठे क्रोशत्रयं। सप्तमे सार्ध क्रोशत्रयं। अष्टमे चतुःक्रोशांश्च। नवमे सार्ध चतुःक्रोशान्। दशमे पञ्च क्रोशान्। एकादशे सार्ध पञ्च क्रोशान्। द्वादशे षट् क्रोशान्। त्रयोदशे

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मृत्तिका दुर्गन्धः सार्धषट्क्रोशान् व्याप्नोति। वंशाया आदिमे प्रतरे मृत्तिका दुर्गन्धः सप्त क्रोशान् प्रसरेत्। द्वितीये सार्धसप्तक्रोशांश्च। तृतीये अष्टक्रोशश्च। चतुर्थे सार्धाष्टक्रोशान्। पञ्चमे नवक्रोशान्। षष्ठे सार्ध नवक्रोशान्। सप्तमे दशक्रोशान्। अष्टमे सार्धदशक्रोशान्। नवमे एकादशक्रोशान्। दशमे सार्धैकादशक्रोशान्। एकादशे द्वादश क्रोशान् मृतिकादुर्गन्धो भ्रमेत्। मेघायाः प्रथमे पटले मृत्तिकादुर्गन्धः सार्धद्वादशक्रोशान् व्रजति। द्वितीये त्रयोदशक्रोशांश्च। तृतीये सार्धत्रयोदशक्रोशान्। चतुर्थे चतुर्दशक्रोशान्।

पञ्चमे सार्धचतुर्दशक्रोशान्। षष्ठे पञ्चदशक्रोशान्। सप्तमे सार्धपञ्च दशक्रोशान्। अष्टमे षोडशक्रोशान्। नवमे सार्धषोडशक्रोशांश्च। अञ्जनाया आदिमे प्रतरे मृत्तिकादुर्गन्धः सप्तदशक्रोशान् गच्छेत्। द्वितीये सार्धसप्तदशक्रोशान्। तृतीये अष्टादशक्रोशान्। चतुर्थे सार्धाष्टादशक्रोशान्। पञ्चमे एकोनविंशति क्रोशान्। षष्ठे सार्धैकोन विंशतिक्रोशान्। सप्तमे विंशति क्रोशांश्च। अरिष्टायाः प्रथमे पटले मृत्तिकादुर्गन्धः सार्धविंशतिक्रोशान् भ्रमति। द्वितीये एकविंशतिक्रोशांश्च। तृतीये सार्धैकविंशतिक्रोशान्। चतुर्थे द्वाविंशतिक्रोशान् पञ्चमे सार्धद्वाविंशतिक्रोशांश्च। मघव्या आदिमे प्रतरे मृत्तिकादुर्गन्धः त्रयोविंशतिक्रोशान् गच्छेत्। द्वितीये सार्धत्रयोविंशति क्रोशान्। तृतीये चतुर्विंशति क्रोशांश्च। माघवयाः पटले मृत्तिकादुर्गन्धः सार्धचतुर्विंशति क्रोशान् प्रसरति।

नारकी जीव मिट्टी का आहार करते हैं। प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल के आहार की वह मिट्टी यदि मनुष्य लोक में आ जावे तो वह अपनी दुर्गन्ध के द्वारा अर्ध कोस के भीतर स्थित प्राणियों का संहार कर सकती है। आगे वह पटल क्रम से उत्तरोत्तर अर्ध-अर्ध कोस अधिक क्षेत्र में स्थित जीवों का विघात कर सकती है। उपर्युक्त गद्य में उस मिट्टी की दुर्गन्ध के इसी प्रसार क्रम का वर्णन किया है जिसका सम्पूर्ण अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित है।

नारकियों के अवधि क्षेत्र का प्रमाण कहते हैं–

एक योजनपर्यन्तं घर्मायामवधिर्मतः।
सार्धक्रोशत्रयं स्याच्च वंशायां नारकाङ्गिनाम् ॥११२॥
मेघायां च त्रिगव्यूतिरञ्जनायां भवोद्भवः।
सार्धक्रोशाद्वयान्तं चारिष्टायां क्रोशयुग्मकम् ॥११३॥
मघव्यां सार्धगव्यूतिरवधिर्वैरसूचकः।
भवप्रत्यय एवाहो माघव्यां क्रोशसम्मितः ॥११४॥

अर्थ–धम्मा पृथ्वी के नारकी जीव बैर भाव का सूचक अपने भवप्रत्यय अवधिज्ञान से एक योजन पर्यन्त, वंशा पृथ्वी के नारकी जीव ३ $\frac{१}{२}$ कोश, मेघा के ३ कोश, अञ्जना के २ $\frac{१}{२}$ कोस, अरिष्टा के २ कोस, मघवी के १ $\frac{१}{२}$ कोस और माघवी पृथ्वी के नारकी जीव मात्र १ कोस पर्यन्त जान सकते हैं, (इसके आगे नहीं) ॥११२-११४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रत्येक पटल गत मिट्टी की दुर्गन्धता के प्रसार का प्रमाण

धम्मा		वंशा		मेघा		अंजना		अरिष्टा		मघवी		माधवी	
पटल संख्या	प्रसार का प्रमाण	पटल संख्या	प्रसार का प्रमाण	पटल संख्या	प्रसार का प्रमाण	पटल संख्या	प्रसार का प्रमाण	पटल संख्या	प्रसार का प्रमाण	पटल संख्या	प्रसार का प्रमाण	पटल संख्या	प्रसार का प्रमाण
१	$\frac{१}{२}$ कोस	१	७ कोस	१	$१२\frac{१}{२}$ कोस	१	१७ कोस	१	$२०\frac{१}{२}$ कोस	१	२३ कोस	१	$२४\frac{१}{२}$ कोस
२	२ कोस	२	$७\frac{१}{२}$ कोस	२	१३ कोस	२	$१७\frac{१}{२}$ कोस	२	२१ कोस	२	$२३\frac{१}{२}$ कोस		
३	$२\frac{१}{२}$ कोस	३	८ कोस	३	$१३\frac{१}{२}$ कोस	३	१८ कोस	३	$२१\frac{१}{२}$ कोस	३	२४ कोस		
४	३ कोस	४	$८\frac{१}{२}$ कोस	४	१४ कोस	४	$१८\frac{१}{२}$ कोस	४	२२ कोस				
५	$३\frac{१}{२}$ कोस	५	९ कोस	५	$१४\frac{१}{२}$ कोस	५	१९ कोस	५	$२२\frac{१}{२}$ कोस				
६	४ कोस	६	$९\frac{१}{२}$ कोस	६	१५ कोस	६	$१९\frac{१}{२}$ कोस						
७	$४\frac{१}{२}$ कोस	७	१० कोस	७	$१५\frac{१}{२}$ कोस	७	२० कोस						
८	५ कोस	८	$१०\frac{१}{२}$ कोस	८	१६ कोस								
९	$५\frac{१}{२}$ कोस	९	११ कोस	९	$१६\frac{१}{२}$ कोस								
१०	६ कोस	१०	$११\frac{१}{२}$ कोस										
११	$६\frac{१}{२}$ कोस	११	१२ कोस										
१२	७ कोस												
१३	$७\frac{१}{२}$ कोस												

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रथमादि पृथ्वियों में उत्कृष्ट रूप से जन्म-मरण का अन्तर कहते हैं–

प्रथमे नरके ज्येष्ठ-मुत्पत्तौ मरणेऽन्तरम्।
चतुर्विंशतिसंख्याता मुहूर्ता द्वितीयेङ्गिनाम् ॥११५॥
दिनानि सप्त च श्वभ्रे, तृतीये पक्ष संख्यकम्।
चतुर्थे चैक मासो हि पञ्चमे मास युग्मकम् ॥११६॥
षष्ठे मास चतुष्कं च सप्तमे नरकात्मनाम्।
षण्मासा अन्तरं निःसरण प्रवेशयोर्महत् ॥११७॥

अर्थ–यदि कोई भी जीव प्रथम पृथ्वी में जन्म या मरण न करे तो अधिक से अधिक २४ मुहूर्त तक, द्वितीय में ७ दिन तक, तृतीय में १ पक्ष तक, चतुर्थ में १ माह तक, पञ्चम में २ माह तक, षष्ठ में ४ माह तक और सप्तम पृथ्वी में उत्कृष्टतः ६ माह तक न करे ॥११५-११७॥

अब नारक पृथ्वियों में अति उष्ण और अति शीत का विभाग करते हैं–

पृथिवीषु चतुराद्यासु तीव्रमुष्णं च केवलं।
पञ्चम्यां हि चतुर्भागानां त्रिभागेषु दुस्सहम् ॥११८॥
पञ्चम्याश्च चतुर्थे हि, भागे षष्ठ्यां दुराश्रयम्।
सप्तम्यां शैत्यमत्यन्तं, सवङ्गिदाहकं महत् ॥११९॥
द्व्यशीतिलक्ष्यसंख्यानि, विलान्युष्णानि केवलम्।
पञ्चविंशसहस्राधिकानि दुःखाकराणि च ॥१२०॥
लक्षैकाणि भवेयुः सहस्राणि पञ्चसप्ततिः।
विश्वदुःख निधानानि, ह्यतिशैत्यबिलानि च ॥१२१॥

अर्थ–रत्नप्रभा आदि चार पृथ्वियों में और पञ्चम पृथ्वी के $\frac{३}{४}$ भाग पर्यन्त स्थित बिलों में अत्यन्त उष्ण वेदना है, तथा पञ्चम पृथ्वी के अवशेष $\frac{१}{४}$ भाग से सप्तम पृथ्वी पर्यन्त स्थित बिलों में सम्पूर्ण अङ्गों को दाह करने वाली अत्यन्त शीत वेदना है। इस प्रकार ३०००००० + २५०००० + १५००००० + १००००० + ($\frac{३००००}{४}$ ×३) २२५००० = ८२२५००० (ब्यासी लाख पच्चीस हजार) बिलों में भयङ्कर दुःख उत्पन्न करने वाली मात्र उष्ण वेदना है और ($\frac{३००००×१}{४}$) = ७५००० + ९९९९९ + ५ =१७५००० (एक लाख पचहत्तर हजार) बिलों में सम्पूर्ण दुःखों के स्थान स्वरूप शीत वेदना है ॥११८-१२१॥

नरक वेदना का वेदन करने वाले भावी तीर्थंकर जीवों की विशेष व्यवस्था का वर्णन करते हैं–

आगामितीर्थकर्तृणां नारकासातभागिनाम्।
शेषोद्धरित षण्मासि[१] चापि दुःकर्मभोगिनाम् ॥१२२॥

---

१. षण्मासायुषि अ. ज. न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

यदा तदासुरा एत्य नरकत्रयभूमिषु।
निवारयन्ति तद् भक्त्योपसर्गाश्च कदर्थनाम् ॥१२३॥

अर्थ—जो भविष्य में तीर्थंकर होने वाले हैं, नरक जन्य असाता और दुःखों का वेदन कर रहे हैं ऐसे रत्नप्रभा से तृतीय पृथ्वी पर्यन्त स्थित तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध व सत्त्व वाले नारकी जीवों की आयु में जब ६ माह अवशेष रहते हैं तब असुरकुमार जाति के देव (भावी तीर्थंकर की) भक्ति से प्रेरित होकर उनके उपसर्ग एवं पीड़ाओं का निवारण कर देते हैं ॥१२२-१२३॥

रत्नत्रय धर्म के आचरण करने की प्रेरणा—

इति बहुविधरूपाऽधःस्थ लोकं विदित्वा,
जिनवरगणिनोक्तं विश्वदुःखैकवार्द्धिम्।
दृगवगमचरित्रै-स्तद्विहान्यै शिवाप्त्यै,
चरत कुनरकघ्नं दुःखभीताः सुधर्म्मम् ॥१२४॥

अर्थ—इस प्रकार जिनेन्द्र एवं गणधर देवों द्वारा नाना प्रकार से कथित, सम्पूर्ण दुःखों का समुद्र ऐसे अधोलोक का स्वरूप जानकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के द्वारा उन दुःखों के निवारण (विनाश) हेतु और मोक्ष सुख की प्राप्ति हेतु दुःखों से भयभीत भव्यजन कुगति को नाश करने वाले रत्नत्रय स्वरूप धर्म का आचरण करें ॥१२४॥

अधिकारान्त मङ्गल—

धर्मः स्वर्गगृहाङ्गणः सुखनिधि-[१]र्धर्मोऽथकर्मौघहा,
धर्मः श्वभ्र निवारकोऽसुखहरो, धर्मोगुणैकार्णवः।
धर्मोमुक्ति निबन्धनो निरुपमः, सर्वार्थसिद्धिप्रदो,
यः सोऽत्राचरितो मया सुचरणै-र्मेऽस्तु स्तुतः सिद्धये ॥१२५॥

इति श्री सिद्धान्तसारदीपके महाग्रन्थे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते अधोलोके श्वभ्रस्वरूप वर्णनोनाम द्वितीयोऽधिकारः॥२॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है लक्षण जिसका ऐसा धर्म स्वर्गरूप गृह का आंगन है, सुख का खजाना है, कर्म समूह को नाश करने वाला है, नरकों का निवारक है। ऐसा धर्म ही गुणों का अद्वितीय समुद्र है, मुक्ति का निबन्धक है, उपमातीत है, सर्व अर्थों (प्रयोजनों) की सिद्धि करने वाला है, तथा जो चारित्रवानों के द्वारा आचरित और मेरे द्वारा स्तुत्य है ऐसा वह रत्नत्रय धर्म मेरी सिद्धि अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिये हो ॥१२५॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा रचित सिद्धान्तसारदीपक नाम महाग्रन्थ के अन्तर्गत अधोलोक में श्वभ्रस्वरूप का वर्णन करने वाला दूसरा अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. अ ब स प्रतौ धर्मोघहन्तामहान्।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तृतीय अधिकार

नरक दु:ख वर्णन

मङ्गलाचरण

अधोगत्येनसां हंतृीन् स्वभुक्तिमुक्तिकारकान्।
जगद्धितान् जिनान् वन्दे तद्गत्यै धर्मचक्रिण: ॥१॥

अर्थ—अधोगति के जनक पापाचरणों को नाश करने वाले, स्वर्ग एवं मोक्ष सम्पदा प्राप्त कराने वाले, जगत् हितकारक, धर्मचक्रवर्ती जिनेन्द्र भगवान् को मैं उनकी गति मोक्ष की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अधिकार लिखने की प्रतिज्ञा एवं उसका कारण—

अथ वक्ष्ये स्वरूपादीन् दु:खौघान्यशुभानि च।
श्वभ्रेषु नारकाणां कुपापिनां भीतिहेतवे ॥२॥

अर्थ—अब मैं पापी जीवों को भय उत्पत्ति के हेतु नरक बिलों में रहने वाले नारकी जीवों का दु:खसमूह से युक्त और महा अशुभ स्वरूप आदि कहूँगा ॥२॥

वहाँ के बिलों का स्वरूप —

घनवज्राऽशुभा भित्तिभागा व्रणसमानका:।
वृत्तत्रिचतुरस्त्रादिनानाकारा: शुभाऽतिगा: ॥३॥
बन्दीगेहाधिकातीवबीभत्सास्तासु भूमिषु।
विश्वदु:खाकरीभूता बिलौघा: सन्ति भीतिदा: ॥४॥

अर्थ—शरीर में उत्पन्न हुए व्रण (घाव या फोड़े) के सदृश (मुख सकरा भीतर चौड़ा) वहाँ के बिलों की भूमियाँ एवं दीवारें वज्र के समान कठोर और अशुभ हैं, जो गोल त्रिकोण एवं चतुष्कोण आदि नाना प्रकार के आकार वाली हैं। तथा वहाँ के बिल यहाँ के कारागृहों से भी अत्यधिक ग्लानि युक्त सम्पूर्ण दु:खों के स्थान और भय उत्पन्न कराने वाले हैं ॥३-४॥

नरक भूमियों का स्पर्श एवं दुर्गन्ध का कथन—

सहस्त्रवृश्चिकेभ्योऽपि दष्टेभ्योधिक वेदना।
वज्रकण्टकसङ्कीर्णे श्वभ्रभूस्पर्शनाद् भवेद् ॥५॥
मार्जारश्वानगोमायु दंष्ट्रि खगादिदेहिनाम्।
तत्रात्यऽशुभदुर्गन्धा: स्यु: कलेवरराशय: ॥६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—एक साथ हजारों बिच्छुओं के काटने पर जो वेदना होती है उससे भी अधिक वेदना वज्रमय कांटों से व्याप्त नरक भूमि के स्पर्श मात्र से होती है।

बिल्ली, कुत्ता, शृगाल, व्याघ्र, हाथी और पक्षियों के मृतक शरीरों की राशि समूह से जो दुर्गन्ध निकलती है उससे भी अति अशुभ और भयंकर दुर्गन्ध वहाँ निरन्तर व्याप्त रहती है ॥५-६॥

नरक स्थित नदी, वन, वृक्ष एवं पवन का विवेचन—

क्षारश्रोणितदुर्गन्धवारि वीचिचयाकुलाः।
वहन्ति वैतरण्याख्या नद्योऽत्र मांसकर्दमाः ॥७॥
असिपत्रनिभैः पत्रैराकीर्णानि ह्यनेकशः।
दुराश्रयाणि सन्त्यासु चासिपत्रवनानि वै ॥८॥
अधोमध्याग्रभागेषु सर्वत्र तीक्ष्णकण्टकैः।
चिताः शाल्मलिवृक्षौघाः भवन्ति ते दुःखस्पृशाः॥९॥
किं रन्तोऽग्निकणाभानि रजांसि वायवोऽशुभाः।
तेषु वान्त्यऽतिदुःस्पर्शाः सर्वाङ्गदुःखहेतवः ॥१०॥

अर्थ—उन नरक भूमियों में मांसरूप कीचड़ और क्षार एवं दुर्गन्धित रक्तरूप जल की कल्लोलों से व्याप्त वैतरणी नाम की नदियाँ बहतीं हैं। उन नरकों में असिपत्र के सदृश हैं पत्ते जिनमें ऐसे वृक्षों से युक्त अनेक असिपत्र नाम के वन हैं जो नारकी जीवों को दुःखसमूह की उत्पत्ति के कारणभूत हैं जिनका स्पर्श अति दुखद है और जो जड़ भाग से मस्तक पर्यन्त तीक्ष्ण काँटों से युक्त हैं, ऐसे शाल्मलि नाम के वृक्ष समूहों से वे नरक भूमियाँ व्याप्त हैं। जिसका स्पर्श सम्पूर्ण शरीर को भयंकर दुःख का कारण है, जो असुहावनी है और जिसमें खिरने वाले अग्नि कणों के सदृश रज का मिश्रण है ऐसी वायु वहाँ नित्य ही बहती रहती है ॥७-१०॥

विक्रियाजन्य पशुपक्षियों का स्वरूप—

भीमा गिरिगुहा बह्व्यः सिंह व्याघ्रादिभिर्भृताः।
क्रूरैर्मांसाशिभिर्नागैर्भवन्ति नरकेषु च ॥११॥
वज्रचञ्चुपुटाः क्रूराः पक्षिणोऽतिभयङ्कराः।
उत्पतन्ति वनेष्वत्र नारकाङ्गादिभक्षकाः ॥१२॥

अर्थ—नरकों में पर्वतों की भयंकर गुफाएँ हैं, जो सदा नागों, सिंहों और व्याघ्र आदि मांसभक्षी एवं क्रूर परिणामी पशुओं से व्याप्त रहती हैं, तथा वहाँ के वनों में वज्र के सदृश कठोर चोंच वाले दुष्ट और भयंकर पक्षी उड़ते रहते हैं जो नारकियों के शरीर का भक्षण करके उन्हें दुःख पहुँचाते हैं ॥११-१२॥

विशेष—नारकी जीवों के वैक्रियिक शरीर होता है जो सप्तधातुओं से रहित होता है और

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अपृथक् विक्रिया के प्रभाव से नारकी जीव स्वयं पशु पक्षियों का रूप धारण कर लेते हैं अतः वहाँ मांस भक्षण आदि की मात्र क्रिया ही होती है अर्थात् उस प्रकार की क्रियाओं के द्वारा वे एक दूसरों को दुःख देते हैं। यथार्थ में मांस भक्षण आदि नहीं करते।

संवेग उत्पादक अन्य भयङ्कर स्वरूप का वर्णन–

करपत्रसमातीव कर्कशाङ्गाः कुरूपिणः।
कुत्सिता हुण्डसंस्थाना रक्तनेत्र भयानकाः ॥१३॥
रौद्ररूपाश्च दुःप्रेक्षा दुःखदानैक पण्डिताः।
विकरालमुखाः क्रूरा रौद्रध्यानपरायणाः ॥१४॥
प्रचण्डा कालरूपाढ्या-स्तीव्ररोषाः कषायिणः।
निर्दया नारका निन्द्या निन्द्यकर्मकराः खलाः ॥१५॥
संख्यातिगा वसन्त्येषु, नपुंसकाः कलिप्रियाः।
विश्वदुःखाब्धि मध्यस्था-निःकारणरणोद्धता ॥१६॥
व्याघ्रसिंहादिरूपाद्यैर्नाना प्रहरणादिभिः।
स्वेच्छया विक्रियन्ते ते, रणायविक्रियांगताः ॥१७॥
विभङ्गावधि कुज्ञानं, प्राग्वैरभवसूचकम्।
सहजं नारकाणां स्यात्स्वान्येषां दुःखकारणम् ॥१८॥

अर्थ–नरक भूमियों में जो नारकी जीव रहते हैं, उनके शरीर असिपत्र के सदृश अत्यन्त कठोर और तीक्ष्ण होते हैं। उनका रूप ग्लानि उत्पादक, रौद्र, कुत्सित और दुष्प्रेक्ष्य (अदर्शनीय) होता है। भयानक और लाल-लाल नेत्रों वाले उन जीवों का संस्थान हुण्डक, मुख विकराल और परिणाम अति रौद्र एवं क्रूर होता है। वे एक दूसरे को दुःख देने में अत्यन्त चतुर होते हैं। प्रचण्ड काल के सदृश वर्ण वाले, तीव्र क्रोध के साथ-साथ सम्पूर्ण कषायों के वशीभूत, निर्दय निन्द्य तथा निरन्तर निन्द्य कार्यों में ही रत, दुष्ट स्वभावी, कलह प्रिय, नपुंसक वेद से युक्त और सम्पूर्ण दुःखों के समुद्र वे नारकी जीव निष्कारण युद्ध करने के लिये उद्धत रहते हैं। युद्ध के लिये भयंकर सिंह, व्याघ्र आदि के रूप एवं नाना प्रकार के शस्त्र आदि बना लेने में वे स्वच्छन्दता पूर्वक विक्रिया करते रहते हैं उन नारकी जीवों को पूर्व भव के बैर की सूचना आदि देने की शक्ति से समर्थ विभङ्गावधि खोटा ज्ञान सहज ही होता है जिससे वे परस्पर में एक दूसरे को दुःख देते हुए स्वयं भी दुःखी होते हैं ॥१३-१८॥

नरकों में रोग जन्य वेदना का कथन–

कुष्ठोदरव्यथाशूलादयो ये दुस्सहा भुवि।
रोगास्ते नारकाङ्गेषु सर्वे सन्ति निसर्गतः ॥१९॥

अर्थ–भुवि-मध्यलोक में कुष्ठ एवं उदरशूल आदि जितने भी दुस्सह दुःख देने वाले रोग हैं वे

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सम्पूर्ण रोग स्वभाव से ही नारकियों के शरीर में एक साथ होते हैं ॥१९॥

विशेषार्थ—नरकों में होने वाली रोग जनित पीड़ा का दिग्दर्शन मध्यलोक के कुष्ठादि रोगों से कराया गया है। मूलप्रति के टिप्पण में मध्यलोक के ३$\frac{१}{२}$हाथ की ऊँचाई वाले शरीर के रोगों का प्रमाण निकाल कर उसे सप्तम नरक के रोगों का प्रमाण बनाया है और शेष नरकों में उसका अर्ध-अर्ध प्रमाण ग्रहण किया है।

यथा—शरीर के उत्सेध का प्रमाण ३ हाथ १२ अंगुल है। इसके सम्पूर्ण अंगुल ६(३×२४)+१२=८४८ होते हैं। इन ८४ अंगुलों के (८४×८४×८४)=५९२७०४ घनांगुल हुए। जबकि एक (१×१×१) घनांगुल में ९६ रोग होते हैं तब ५९२७०४ घनांगुलों में कितने रोग होंगे? ऐसा त्रैराशिक करने पर सम्पूर्ण रोगों की संख्या का प्रमाण (५९२७०४ × ९६)=५६८९९५८४ प्राप्त होती है और टिप्पणकार के द्वारा सप्तम नरक के रोगों का यही प्रमाण माना गया है। इसका अर्धभाग अर्थात् ($\frac{५६८९९५८४}{२}$) = २८४४९७९२ छठवें नरक के रोगों का प्रमाण है। इसका अर्धभाग अर्थात् ($\frac{२८४४९७९२}{२}$) = १४२२४८९६ पाँचवें नरक के, ७११२४४८ चौथे नरक के, ३५५६२२४ तीसरे नरक के, १७७८११२ दूसरे नरक के और ८८९०५६ प्रथम नरक के रोगों का प्रमाण है। इन सबका योग करने पर ५६८९९५८४ + २८४४९७९२ + १४२२४८९६ + ७११२४४८ + ३५५६२२४ + १७७८११२ + ८८९५०५६ = ११२९१०११२ अर्थात् ११ करोड़ २९ लाख १० हजार एक सौ बारह प्रकार के रोग (नरकों में) प्राप्त होते हैं।

नरकों की क्षुधातृषाजन्य वेदना का वर्णन—

कृत्स्नान्न भक्षणासाध्या, सर्वाङ्गोद्वेगकारिणी।
नारकाणां क्षुधातीव्रा, जायतेऽन्तःप्रदाहिनी ॥२०॥
तया बाह्यान्तरङ्गेषु, तरां सन्तापिताश्च ते।
अशितुं तिलतुल्यान्नं, लभन्ते जातु नाशुभात् ॥२१॥
समुद्रनीरपानाद्यै-रशाम्या तृट् कुवेदना।
विश्वाङ्गशोषिका तीव्रो-त्पद्यते श्वभ्रजन्मिनाम् ॥२२॥
तयातिदग्धकायास्ते, नारका दुःखविह्वलाः।
बिन्दुमात्रं जलं पातुं, प्राप्नुवन्ति न पापतः ॥२३॥

अर्थ—नारकी जीवों के हृदय को दग्ध कर देने वाली, सम्पूर्ण अंगों में उद्वेग उत्पन्न करने वाली तथा (तीन लोक के) सम्पूर्ण अन्न का भक्षण करने पर भी जो शमन को प्राप्त न हो ऐसी तीव्र क्षुधा वेदना उत्पन्न होती है। उससे बाह्य और अंतरंग में अत्यन्त सन्ताप उत्पन्न होता है किन्तु अशुभ कर्म के योग से उन्हें तिल के बराबर भी अन्न कभी खाने को नहीं मिलता ॥२०-२१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

समुद्र के सम्पूर्ण जलपान द्वारा भी जो शमन को प्राप्त न हो ऐसी सर्वांगों को शोषित करने वाली तीव्र तृषा वेदना उन नारकी जीवों के उत्पन्न होती है, जिससे शरीर अति दग्ध हो जाता है और वे नारकी जीव निरन्तर अति विह्वल होते रहते हैं, फिर भी पाप कर्म के उदय से उन्हें कभी बिन्दु मात्र भी जल पीने को प्राप्त नहीं होता ॥२२-२३॥

नरक गत शीत-उष्ण वेदना का कथन–

ज्वलन्ति नारकावासाः सदान्तर्दुस्सहोष्मभिः।
अन्धकाराकुला निन्द्याः पूर्णा नारकपापिभिः ॥२४॥
लक्षयोजनमानोऽयः पिण्ड क्षिप्तोत्र तत्क्षणम्।
बहूष्मानलतापाद्यैः शतखण्डं प्रयाति भोः ॥२५॥
शीतश्वभ्रेषु निक्षिप्तोऽयः पिण्डो मेरुमानकः।
सद्यो विलीयते तीव्रतुषाराद्यैर्न संशयः ॥२६॥

अर्थ–निरन्तर दुस्सह अन्तर्दाह में जलने वाले पापी जीवों से जो परिपूर्ण हैं, अन्धकार से व्याप्त हैं और निन्द्यनीय हैं, ऐसे नारकावास सतत् उष्ण रहते हैं। भो भव्यजनो! ऐसे उन गरम नारकावासों में यदि एक लाख योजन का (सुमेरु सदृश) गोला भी डाल दिया जाय तो वह भी वहाँ की भयंकर अग्नितापके द्वारा सैकड़ों खण्डों को प्राप्त हो जाता है। शीत बिलों में यदि मेरुपर्वत के समान लोह का पिण्ड डाल दिया जाय तो वह तीव्र तुषार के कारण शीघ्र ही विलीन हो जाता है इसमें संशय नहीं है ॥२४-२६॥

विभिन्न प्रकार के दुःखों का विवेचन–

यत् किञ्चिद् दुःखदं द्रव्यं पञ्चाक्षाङ्गमनोऽप्रियम्।
तत् सर्वं तेषु तेषां स्यात् पिण्डितं पापकर्मभिः ॥२७॥

अर्थ–पञ्चेन्द्रियों के विषय सम्बन्धी जितने भी दुःख उत्पादक, अप्रिय एवं अभोग्य पदार्थ हैं, वे सब पापकर्म के उदय से नरकों में उन नारकी जीवों के लिये एकत्रित हैं ॥२७॥

इत्यशर्मनिधानेषु पापिनः पापपाकतः।
अधोमुखाः पतन्त्येषु पापिनामुन्नतिः कुतः ॥२८॥

अर्थ–इस प्रकार दुःखों के निदान स्वरूप इन नरकों में पापी जीव पापोदय से अधोमुख गिरते हैं, क्योंकि पापियों की ऊर्ध्वगति कहाँ? अर्थात् पाप के भार से युक्त जीव ऊपर कैसे जा सकते हैं ॥२८॥

तत्रात्युष्णाग्निसन्तप्ता वराकाः पतिताश्च ते।
निपतन्त्युत्पतन्त्याशु ततभ्राष्ट्रतिला इव ॥२९॥

अर्थ–जिस प्रकार तप्त भार में डाले गये तिल (या चना आदि अन्य धान्य) तुरन्त ही ऊपर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उचट कर फिर नीचे गिरते हैं, उसी प्रकार वे बेचारे दीन नारकी जीव अग्नि से सन्तप्त अति उष्ण भूमि में पड़ने के बाद शीघ्र ही (अनेकों बार) ऊपर उछल उछल कर नीचे गिरते हैं ॥२९॥

ततोऽति वेदनाक्रान्तास्ते तत्क्षेत्रं भयानकम्।
प्रचण्डान्नारकान् वीक्ष्येतिचित्ते चिन्तयन्ति च ॥३०॥
अहो! निन्द्यमिदं क्षेत्रं किमापदां किलाकरम्।
केऽमी च नारका रौद्रा मारणैकपरायणाः ॥३१॥
न चात्र स्वजनः स्वामी भृत्यो वा जातु दृश्यते।
निमेषार्धं सुखं सारं सुखकृत् वस्तु नो परम् ॥३२॥

अर्थ—इस प्रकार उस क्षेत्र सम्बन्धी भयंकर वेदना से आक्रान्त जब वे नारकी जीव अन्य भयावह नारकियों को देखते हैं, तब विचार करते हैं कि हाय! आपदाओं की खान स्वरूप यह निन्द्य क्षेत्र कौन है? मार-काट में परायण ये दुष्ट नारकी कौन हैं? यहाँ कहीं भी मेरे कोई कुटुम्बीजन, स्वामी और नौकर आदि दिखाई नहीं देते तथा न अर्धनिमेष मात्र सुख और न सुख उत्पन्न करने वाली अन्य कोई वस्तुएँ ही दिखाई देतीं हैं ॥३०-३२॥

वयं केन त्विहानीता रौद्रस्थाने कुकर्मणा।
कृत्स्न दुःखाकरीभूते पापारिकवलीकृताः ॥३३॥

अर्थ—खोटे कर्मों में रत और पापी शत्रुओं द्वारा भक्षण किये जाने वाले हम सब इस सम्पूर्ण दुःखों के खान स्वरूप रौद्रस्थान में किस पापकर्म के द्वारा लाये गये हैं ॥३३॥

पूर्व जन्म में किये हुए पापों का चिन्तन एवं पश्चाताप—

इत्यादि चिन्तनात्तेषां प्रादुर्भवति दुःखदः।
विभङ्गावधिरेव स्व प्राग्जन्म वैरसूचकः ॥३४॥
तेन विज्ञायते सर्वं[१] भवानाचारमञ्जसा।
पश्चात्तापाग्नि सन्तप्ताः शोचन्तीति स्वदुर्विधीन् ॥३५॥
अहो! दुष्कर्मकोटीभिरस्माभिः स्वात्मनाशकम्।
यन्निन्द्यमर्जितं पापं महत् पञ्चाक्षवञ्चितैः ॥३६॥
तेनास्माकं निरौपम्या दुःखक्लेशादि कोटयः।
प्रादुरासन् जगन्निन्द्या अस्मिन् क्षेत्रं सुखातिगे ॥३७॥

अर्थ—इस प्रकार के चिन्तन मात्र से उन नारकी जीवों को अपने पूर्व जन्म के वैर का सूचक और दुःख उत्पत्ति का कारण कुअवधिज्ञान (जातिस्मरणज्ञान) स्वयं प्रकट हो जाता है। जिसके द्वारा वे अपने पूर्व भव के अनाचारों को और अपनी सम्पूर्ण दुष्ट क्रियाओं को शीघ्र ही जान लेते हैं, अतः

१. पूर्व अ.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पश्चाताप की अग्नि से सन्तप्त होते हुए इस प्रकार विचार करते हैं कि अहो! पञ्चेन्द्रियों के विषयों से ठगे हुए एवं करोड़ों दुष्कर्मों के द्वारा हमने अपनी आत्मा के नाशक अत्यन्त निन्द्य जो महान् पाप अर्जित किये हैं, उनके द्वारा ही इस दुःखदाई क्षेत्र में निन्दनीय और उपमा रहित करोड़ों दुःख एवं क्लेश प्रकट हो रहे हैं ॥३४-३७॥

हा! सर्षपाक्षसौख्यार्थं लम्पटैस्तदघं कृतम्।
अस्माभिः प्राग् भवे येनाभूद् दुःखं मेरुसम्मितम् ॥३८॥

अर्थ—हा! पूर्व जन्म में इन्द्रिय लम्पट होकर मैंने सरसों बराबर इन्द्रिय सुखों के लिये जो पाप किये थे उनसे ये मेरु सदृश दुःख मुझे प्राप्त हो रहे हैं ॥३८॥

अभक्ष्य भक्षण और पाँच पापों का चिन्तन—

यतोऽति विषयासक्त्या, खादितानि बहूनि च।
अखाद्यान्यशुभापेया-नि पीतानि स्वशर्मणे ॥३९॥
अस्माभिर्निर्दयैः पूर्वं, जीवराशिर्हतो बलात्।
असत्यकटुकादीनि, दुर्वचांस्युदितानि च ॥४०॥
हतानि परवस्तूनि, मायाकौटिल्यकोटिभिः।
सेविताः पररामाद्या दौष्ट्याद् रागान्धमानसैः ॥४१॥
भूयान् परिग्रहो लोभान्, मेलितः स्वाक्षशर्मणे।
बह्वारम्भः कृतो नित्यम् श्रीस्त्रीकुटुम्बहेतवे ॥४२॥

अर्थ—अपने इन्द्रिय सुख के लिये विषयासक्त मेरे द्वारा बहुत से अखाद्य (मांस, अण्डा, आलू, मूली आदि कन्दमूल एवं अभक्ष्य) पदार्थ खाये गये हैं और अपेय (शराब एवं बाजार की चाय, दूध आदि) पदार्थ पिये गये हैं पूर्व भव में मुझ निर्दयी ने जबरदस्ती (संकल्प पूर्वक) अनन्त जीव राशि मारी है। असत्य, कटुक एवं निन्दा आदि के दुर्वचन कहे हैं। करोड़ों प्रकार की वञ्चना एवं कुटिलता द्वारा पर वस्तुओं का हरण किया है। राग से अन्धे होते हुए मैंने दुष्टता पूर्वक परस्त्री का सेवन किया है। अपने इन्द्रिय सुखों के लिये लोभ से ग्रसित होकर मैंने महान् परिग्रह एकत्रित किया है, और लक्ष्मी (धन संचय), स्त्री एवं कुटुम्ब आदि के लिये नित्य ही बहुत भारी आरम्भ किया है ॥३९-४२॥

धर्माचरण रहित एवं कुधर्म सेवन पूर्वक पूर्वभव व्यतीत करने का पश्चात्ताप—

निःशीलैर्विषयान्धैश्च, पञ्चाक्षाणि निरन्तरम्।
सेवितानि पुरास्माभिः सौख्याय नष्टबुद्धिभिः ॥४३॥
श्रेयसेऽनुष्ठितं मौढ्यान् मिथ्यात्वं केवलं महत्।
कुदेव[१] कुगुरुशास्त्र-कुत्सिताचार कोटिभिः ॥४४॥

१. कुदेवकुगुरुकुज्ञान ज. न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अतीवव्यसनासक्तः पालितं न मनाग्व्रतम्।
शीलं वा न कृतं पुण्यं दानपूजार्चनादिभिः ॥४५॥
धर्मिणो धर्ममत्यर्थं, दिशंतोपि पुरा मुहुः।
श्वभ्रगामिभिरस्माभिः कटुवाक्यैरमानिताः ॥४६॥
इत्याद्यन्यैर्दुराचारै-र्दुष्कर्माण्यर्जितानि च।
तानि पूर्वंमिहापन्नायैर्नो दुःखादिराशयः ॥४७॥

अर्थ—नष्ट बुद्धि, विषयान्ध और व्रतशील आदि से रहित मैंने पूर्व भव में अल्प सुख के लिये निरन्तर पंचेन्द्रियों के विषयों का सेवन किया है। मैंने अज्ञानता से पुण्यार्जन के लिये करोड़ों खोटे आचरणों (३ मूढ़ता, ६ अनायतनों के द्वारा एवं बलि आदि के) द्वारा महान् मिथ्यात्व और मिथ्या देव, शास्त्र, गुरुओं का सेवन किया है। सप्त व्यसनों में अत्यन्त आसक्ति होने के कारण मैंने किञ्चित् भी व्रतों का पालन नहीं किया और न शील, दान, पूजा एवं अर्चना आदि के द्वारा किञ्चित् भी पुण्य उपार्जन किया। पूर्व भव में धर्मात्मा पुरुषों ने धर्म धारण करने के लिये मुझे बार-बार उपदेश दिया किन्तु कठोर और कटु वचन बोलने वाले मुझ नरकगामी ने उनके उपदेश नहीं माने। इस प्रकार के तथा और भी अन्य प्रकार के दुराचारों द्वारा जो दुष्कर्म उत्पन्न किये थे वही पाप यहाँ पर दुःख की राशि रूप से उपस्थित हुए हैं ॥४३-४७॥

पश्चात्ताप रूप भीषण सन्ताप का विवेचन—

कैश्चित्पुण्यजनैः शक्त्या, नृभवे साधितो महान्।
स्वर्गो मोक्षोविचारज्ञैः सत्तपश्चरणादिभिः ॥४८॥
दुर्लभे नृभवे प्राप्ते, धर्मस्वर्मुक्तिसाधके।
अस्माभिरर्जितं श्वभ्रं, दुराचारैः स्वघातकम् ॥४९॥

अर्थ—मनुष्य भव में समीचीन तपश्चरण आदि को धारण करने वाले विचारवान् पुण्य पुरुषों के द्वारा अपनी शक्ति के अनुरूप स्वर्ग, मोक्ष का महान् साधन किया जाता है, किन्तु स्वर्गमुक्ति का साधक दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त होने पर भी मैंने धर्म पालन तो नहीं किया परन्तु दुराचारों के सेवन द्वारा स्व आत्मा का घात करने वाले नरक का अर्जन किया है अर्थात् इतना घोर पाप उपार्जन किया जिससे नरक आना पड़ा ॥४८-४९॥

येषां स्त्रीपुत्रबन्धूनां भूत्यर्थं पापमञ्जसा।
कृतं ते तत्फलं भोक्तुं नात्रामास्माभिरागताः ॥५०॥
पोषिता येऽङ्गपञ्चाक्षा नानाभोगैः पुराः खलाः।
तेष्वस्मान्[१] पातयित्वात्र श्वभ्रे गता इवारयः ॥५१॥

---

१. तेऽप्यस्मात् ज न.।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अतो मन्यामहेऽत्रैवं स्वजनाः पापहेतवः।
शत्रवः स्युश्च पञ्चाक्षाः काला नागा न चापरे ॥५२॥

अर्थ—जिन स्त्री, पुत्र, बन्धु बान्धवों के वैभव या उन्नति के लिये यथार्थ में मैंने बहुत पाप किये थे वे कुटुम्बी जन उस पाप का फल भोगने के लिये मेरे साथ अभी यहाँ नहीं आये। पूर्व भव में नाना प्रकार के भोग्य पदार्थों द्वारा मैंने जिनके शरीर और पञ्चेन्द्रियों का पोषण किया था, वे दुष्ट शत्रु, सदृश बन्धुजन मुझको यहाँ नरक में पटककर चले गये, इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि पाप के कारणभूत स्वजन तो शत्रु हैं और पञ्चेन्द्रियों के विषय काले नाग हैं, इससे अधिक कुछ नहीं ॥५०-५२॥

यदुक्तं सूरिभिः पूर्वं, सहगामि शुभाशुभम्।
प्रत्यक्षतामगान्नोऽद्य, तदत्र पाकसूचकम् ॥५३॥
पुराकृतानि पापानि मनसापि स्मृतानि च।
अन्तर्मर्माणि कृतन्त्यधुना नः क्रकचानि वा ॥५४॥

अर्थ—पूर्व में आचार्यों के द्वारा जो कुछ कहा गया था वह पापोदय का सूचक सहगामी शुभाशुभ आज यहाँ मेरी प्रत्यक्षता को प्राप्त हो रहा है। पूर्व जन्म में किये गये पाप आज मन से स्मरण करने पर मेरे अन्तःस्थल के मर्म को करोंत के समान छेद रहे हैं ॥५३-५४॥

अत्र प्राक्कृत पापोत्थ-दुःखौघग्रसिता वयम्।
क्व यामः कं च पृच्छामः, किं कुर्मोब्रूम एव किम् ॥५५॥
व्रजामः शरणं कस्या-त्रास्माद्दुःखौघ सन्ततेः।
सोढव्याः कथमस्माभि-र्महत्यः श्वभ्रवेदनाः ॥५६॥
पूर्वदुष्कर्मपाकोत्थ-मिमं दुःखार्णवं परम्।
दुस्तरं चोत्तरिष्यामः, कथमायुः क्षयं विना ॥५७॥
यतोऽत्र मरणं न स्यान् नारकाणां कदाचन।
सत्यायुषिनिजेऽल्पेऽपि, तिलतुल्याङ्गं खण्डनैः ॥५८॥
इति प्राक्कृतदुष्कर्मज पश्चात्तापवह्निभिः।
दह्यमानान्तरङ्गाणां, नारकाणां दुरात्मनाम् ॥५९॥

अर्थ—पूर्व जन्म में किये हुए पापों से उत्पन्न होने वाला यह दुखों का समूह यहाँ हमें खा रहा है। अब हम कहाँ जाएँ? किससे पूछे? क्या करें? और क्या कहें? किसकी शरण जाएँ? यहाँ दुःख समूह से निरन्तर होने वाली यह महान् नरक वेदना सहन करने में हम कैसे समर्थ हों। पूर्व दुष्कर्मों के पाक से उत्पन्न होने वाला यह दुस्तर महान् दुःखरूपी समुद्र आयु क्षय बिना कैसे पार करें, क्योंकि अपनी भुज्यमान आयु के पूर्ण हुए बिना शरीर के तिल बराबर खण्ड-खण्ड कर देने पर भी यहाँ नारकी जीवों का असमय में मरण नहीं होता। इस प्रकार दुरात्मा नारकी जीवों के अन्तःकरण पूर्व जन्म में किये गये

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पापों से उत्पन्न होने वाली पश्चाताप रूपी अग्नि से निरन्तर जलते रहते हैं ॥५५-५९॥

अन्य नारकी जीवों द्वारा दिये हुए भयङ्कर दुःखों का दिग्दर्शन–

शतचूर्णी प्रकुर्वन्ति, सर्वगात्राणि नारकाः।
मुद्गरादिप्रहारौघै र्निभर्त्स्य कटुकाक्षरैः ॥६०॥

अर्थ–नारकी जीव भर्त्सनापूर्वक कटुक वचनों द्वारा एवं मुद्गर आदि प्रहार समूहों द्वारा सम्पूर्ण शरीर के सैकड़ों टुकड़े कर देते हैं ॥६०॥

जीवों के नेत्र फोड़ने का और अङ्गोपाङ्ग छेदन का फल–

उत्पाटयन्ति नेत्राणि चक्षुर्विकारजाशुभैः।
अङ्गोपाङ्गानिकृन्तन्ति चाङ्गोपाङ्गकृताघतः ॥६१॥

अर्थ–पूर्व जन्म में अन्य जीवों के नेत्र फोड़ देने से एवं अंगोपांगों की छेदन-भेदन आदि कर देने से जो पाप एवं अशुभ कर्म संचय हुआ है उसी के कारण नारकी नेत्र उखाड़ लेते हैं और अंगोपांग काट लेते हैं ॥६१॥

दूसरों के प्रति चित्त में उत्पन्न होने वाले पाप का फल–

चित्तोत्थपापपाकेन विदार्य जठरं बलात्॥
केचित् क्रुद्धाश्च केषाञ्चित् त्रोटयन्त्यन्त्रमालिकाम् ॥६२॥

अर्थ–अन्य जीवों के बुरे चिन्तन आदि से चित्त में जो विकार उत्पन्न होता है उस पापोदय के फलस्वरूप कोई नारकी क्रोधित होते हुए बल पूर्वक पेट विदीर्ण कर देते हैं और कोई यन्त्रादिकों में पीस देते हैं ॥६२॥

मद्य आदि अपेय पदार्थ पीने का फल–

मुखं विदार्य संदंशैर्ज्वलताम्ररसं बलात्।
क्षिप्यते नारकैस्तेषां मद्यपानोत्थ पापतः ॥६३॥

अर्थ–मद्य आदि अनेक प्रकार के अपेय पदार्थ पीने से जो पाप संचय हुआ था उससे ये नारकी जीव सण्डासी से मुख फाड़ कर बलपूर्वक उसमें जलता हुआ ताम्ररस डाल रहे हैं ॥६३॥

परस्त्री सेवन का फल–

दृढमालिङ्गनं केचित् कारयन्ति बलाद् गले।
तप्तलोहाङ्गनाभिश्च परस्त्रीसङ्गजाघतः ॥६४॥

अर्थ–परस्त्री सेवन से उत्पन्न पाप के फल स्वरूप वे नारकी जीव बल पूर्वक गले में तप्त लोहे की स्त्री से दृढ़ आलिंगन करा रहे हैं ॥६४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जीवों को छेदन-भेदन आदि के दुःख देने का फल–

विधाय नारकाङ्गानां, सूक्ष्मखण्डानि कर्त्तनैः।
निःपीडयन्ति यन्त्रेषु, दलन्त्यश्मपुटादिभिः ॥६५॥
क्वाथयन्ति च कुम्भीषु, निर्दयाः नारकाः परे।
चूर्णयन्त्यस्थिजालं च, ताडयन्तिपरस्परम् ॥६६॥
गृध्रास्ताम्रमयास्तत्र, लोहतुण्डाश्च वायसाः।
मर्माणि दारयन्त्येषां, चञ्चुभिर्नखरैः खरैः ॥६७॥
छिन्नभिन्नानि गात्राणि, सम्बन्धं यान्ति तत्क्षणम्।
दण्डाहतानि वारीणी-व तेषां दुर्विधेर्वशात् ॥६८॥

अर्थ–[मनुष्य पर्याय में जो धनान्ध तेल आदि के मील खोल कर और बड़ी-बड़ी चक्कियाँ लगा कर बिना शोधन किये अनाज आदि पिसवा कर महान् पाप संचय करते हैं] उन नारकी जीवों के शरीरों के कैंची द्वारा छोटे-छोटे टुकड़े करके यन्त्रों में (घानी में) पेलते हैं और पत्थर की चक्कियों द्वारा उन्हें पीसते हैं। वे दुष्ट और निर्दयी नारकी दूसरों को हाण्डियों में पकाते हैं, हड्डियों का चूर्ण कर देते हैं और आपस में एक दूसरे को मारते हैं। वहाँ (नरकों में) ताम्रमय गृद्धपक्षी और लोहे के मुख वाले कौए अपनी तीक्ष्ण चोंचों एवं नखों से (मनुष्य पर्याय में जो पशुओं के मर्म स्थानों का छेदन-भेदन करते हैं तथा उनके शरीर में हो जाने वाले घावों की पक्षियों से रक्षा नहीं करते) उन नारकियों के मर्म स्थानों का छेदन करते हैं। खोटे कर्मोदय के वश से उन नारकी जीवों के छिन्न-भिन्न किये हुए शरीर डण्डे से ताड़ित जल के समान तत्क्षण सम्बन्ध को प्राप्त हो जाते हैं ॥६५-६८॥

मांस भक्षण का फल–

खादन्ति नारकास्तेषां मांस भक्षणपापतः।
शूलपक्वानि मांसानि पुरा ये मांसभक्षिणः ॥६९॥

अर्थ–जिन्होंने पहले मांस भक्षण किया था, पाप से उन मांसभक्षी जीवों के मांस को अन्य नारकी शूल से (मांस पकाने का कांटा) पका कर खाते हैं ॥६९॥

भिन्न-भिन्न प्रकार के दुःखों का कथन–

काञ्चिल्लोहाङ्गनालिङ्गनाच्च मूर्च्छामुपागतान्।
लोहारदण्डकैरन्यैः खलास्तुदन्ति मर्मसु ॥७०॥

अर्थ–लोहे की (तप्त) स्त्री के आलिंगन से मूर्च्छा को प्राप्त होने वाले नारकों के मर्म स्थानों पर अन्य दुष्ट नारकी लोह दण्ड के द्वारा चोटें मारते हैं ॥७०॥

सर्वाङ्गकण्टकाकीर्णेषु शाल्मलिद्रुमेषु च।
भस्त्राग्निदीपितेष्वन्यानारोपयन्ति नारकाः ॥७१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—सर्वांग में तीक्ष्ण काँटों से व्याप्त शाल्मलि वृक्षों पर और अग्नि से देदीप्यमान भट्टों पर उन नारकी जीवों को चढ़ाते हैं ॥७१॥

निघर्षन्त्यपरे तेषु सर्वाङ्गेषु द्रुमेषु तान्।
गृहीत्वान्ये च पादेषु घ्नन्त्याहत्य धरातले ॥७२॥

अर्थ—अन्य कोई नारकी उन कण्टकाकीर्ण सम्पूर्ण वृक्षों पर उन्हें घसीटते हैं और अन्य कोई उन बेचारों को जमीन पर पटककर तथा पैरों में फँसा कर मारते हैं ॥७२॥

नित्यस्नानोत्थ पापेन, वैतरण्यम्बु वीचिषु।
यान्त्यत्यन्ताकुलीभावं, केचित्कैश्चित्प्रमज्जिताः ॥७३॥
केचिच्च स्वयमागत्यतीव्रोष्णाग्निकरालिताः।
क्षारपूतिजलेतस्या, मज्जन्ति तापशान्तये ॥७४॥
तेन दुःस्पर्शनीरेण, नितरां ते कदर्थिताः।
असिपत्रवनान्याशु, विश्रामाय श्रयन्ति भोः ॥७५॥
तेषु तीव्रो मरुद्वाति, विस्फुलिङ्गकणान् किरन्।
तेन पत्राणि पात्यन्ते, खड्गधारासमानि च ॥७६॥
तेषां गात्राणि छिद्यन्ते, भिद्यन्ते चाखिलानि तैः।
ततस्ते वेदनाक्रान्ताः, पूत्कुर्वन्ति वराकका: ॥७७॥
तस्मात्ते च गलद्रक्त-धारातीव कुरूपिणः।
प्रविशन्ति स्वयं स्थित्यै, गत्वाशु पर्वतान्तरम् ॥७८॥
तत्रापि नारका एतान् खादन्ति दारयन्ति च।
व्याघ्रसिंहाहि पक्ष्यादिरूपैः स्वविक्रियोद्भवैः ॥७९॥
केचित्तान् नारकान् दीनान् धृत्वा पादेष्वधो मुखान्।
पर्वताग्रादधो भागं पातयन्ति महीतलम् ॥८०॥
तद् घातात् खण्डखण्डाङ्ग-भूतांस्तान् शरणार्थिनः।
वज्रमुष्टिप्रहाराद्यैर्घ्नन्त्यन्ये रौद्ररूपिणः ॥८१॥
व्रणजर्जरितान् कांश्चिदतीववेदनाकुलान्।
भद्रं कुर्वेवमित्युक्ता सिंचन्ति क्षारवारिभिः ॥८२॥

अर्थ—नित्य ही अगालित एवं अप्रमाण जल से स्नान करने के कारण जो पाप उत्पन्न हुए थे उन्हीं के फलस्वरूप कोई जीव वैतरणी नदी की कल्लोल मालाओं के बीच आकुलीभाव को प्राप्त होते हैं, कोई जीव अन्य नारकियों द्वारा उसमें डुबोये जाते हैं और कोई असह्य तीव्र उष्ण अग्नि की ताप के कारण आक्रन्दन करते हुए उस नदी पर आकर ताप शान्ति के लिये नदी के क्षार एवं दुर्गन्धित जल में स्वयं डूब जाते हैं। किन्तु भो भव्य जनो! उस जल के दुःस्पर्श से अत्यन्त पीड़ित होते हुए वे नारकी

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विश्रान्ति के लिये शीघ्र ही असिपत्र वनों का आश्रय लेते हैं। जिनमें (अग्नि के) विस्फुलिंग कणों को फैलाती हुई वायु बहती है जिससे असिधारा के समान पत्ते नीचे गिरते हैं, जो उन नारकियों के सम्पूर्ण शरीर को छेद देते हैं और भेद देते हैं, इसलिए वे बेचारे असह्य वेदना से आक्रान्त होते हुए चीत्कार (हा हा कार) करते हैं। शरीर भेदन के कारण बहती हुई रक्त धारा से जो अत्यन्त कुरूप हो रहे हैं ऐसे वे नारकी सुख से स्थित होने के लिये शीघ्र ही पर्वत के ऊपर जाकर स्वयं ही उनकी गुफाओं में प्रवेश करते हैं, किन्तु वहाँ भी अपनी विक्रिया (अपृथक् विक्रिया) से उत्पन्न हुए व्याघ्र, सिंह, सर्प आदि हिंसक पशु अपने शरीरों के द्वारा उन नारकियों को विदारण कर देते हैं और खा लेते हैं। कोई दुष्ट नारकी अधोमुख उन बेचारे दीन नारकियों को अपने पैरों पर रख कर पर्वत के ऊपर से नीचे पृथ्वी पर पटक देते हैं, जिसके घात से खण्ड-खण्ड हो गये हैं शरीर जिनके ऐसे शरण के इच्छुक उन नारकियों को अन्य कोई दुष्ट नारकी वज्रमुष्टियों के प्रहारों से मारते हैं। तुम्हारे इन गहरे घावों से होने वाली तीव्र वेदना को मैं शीघ्र ही ठीक करता हूँ ऐसा कहकर अन्य कोई नारकी उन घावों को क्षार जल से सींचते हैं ॥७३-८२॥

गर्व करने का फल—

पुरार्जितानि पापानि गर्वाद्यैरुद्धतैश्चयैः।
तप्तलोहासनेष्वत्र तानासयन्ति नारकाः ॥८३॥

अर्थ—पूर्व जन्म में नाना प्रकार के बढ़ते हुए मद समूह से सञ्चित पाप के फलस्वरूप उन नारकी जीवों को अन्य नारकी तप्तायमान लोहे के आसनों पर बैठाते हैं ॥८३॥

अयोग्य स्थान में शयन करने का फल—

परस्त्रीनिकटातीवमृदुशय्योत्थपापतः ।
शाययन्ति परे कांश्चिच्छिताय:कण्टकान्तरे ॥८४॥

अर्थ—पूर्व भव में परस्त्री के साथ अति मृदुल शय्या पर सोने से जो पाप बंध किया था उससे अन्य कोई नारकी उन्हें लोहे के तीक्ष्ण काँटों के ऊपर सुलाते हैं ॥८४॥

सप्त व्यसन सेवन का फल—

सप्तव्यसन सेवोत्था-घोदयादिह नारकान्।
केचित् निशात शूलाग्रे-ष्वारोपयन्त्यशर्मणे ॥८५॥
बद्ध्वा शृङ्खलया स्तम्भे, कांश्चिच्च क्रकचैः खलाः।
दारयन्त्यखिलांगेषु, स्वाक्रन्दं कुर्वतो बलात् ॥८६॥

अर्थ—पूर्व भव में सप्त व्यसनों का सेवन करके, जो पाप उपार्जन किया, उसके उदय से नरक में उन नारकी जीवों को कोई नारकी भयंकर दु:ख देने के लिये तीक्ष्ण शूल के अग्रभाग पर चढ़ा देते हैं और कोई दुष्ट आक्रन्दन करते (दु:ख से चिल्लाते) हुए उन जीवों के सम्पूर्ण शरीर को जबरदस्ती सांकल द्वारा खम्भे पर बाँधकर करोंत से चीरते हैं ॥८५-८६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वैरविरोध रखने का फल–

केचित् प्राग्जन्मवैरादीन्, स्मारयित्वा निरूप्य च।
मुहुर्निभर्त्स्य दुर्वाक्यैः, स्थित्वारणांगणे क्रुधा ॥८७॥
स्वविक्रियांग सञ्जातै-र्नानाशितायुधव्रजैः।
छेदयन्त्यखिलांगानि, घ्नन्ति क्रुद्धाः परस्परम् ॥८८॥

अर्थ–कोई-कोई नारकी जीव पूर्व भव के वैर का स्मरण करके और बार-बार भर्त्सना युक्त खोटे वाक्यों द्वारा उस वैर भाव को कह कर क्रोधित होते हुए रणांगण में स्थित होकर अपने शरीर की अपृथक् विक्रिया से उत्पन्न हुए नाना प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र समूह के द्वारा उनके सम्पूर्ण शरीर को छेद देते हैं तथा क्रोधित होते हुए परस्पर में एक दूसरे को मारते हैं ॥८७-८८॥

असुरकुमारों द्वारा दिये जाने वाले दुःखों का कथन–

उद्विग्नस्तान् क्वचिद्दीनान् युद्धादेर्नारकान् स्थितान्।
रौद्राशयाः सुरा एत्य स्मारयित्वा पुरातनम् ॥८९॥
आगतं वैरमन्योन्यं योधयन्ति रणांगणे।
स्थित्वा स्वशर्मणे हिंसानन्दं कुर्वन्त उल्वणम् ॥९०॥
विस्फुलिंगमयीं शय्यां ज्वलन्तीं शायिताः परे।
शेरते शुष्कसर्वांगा दीर्घनिद्रासुखाप्तये ॥९१॥

अर्थ–युद्ध आदि से हतोत्साह होकर खड़े हुए किन्हीं दीन नारकियों को दुष्ट अभिप्राय वाले असुरकुमार देव आकर पूर्व भव को याद दिलाते हुए उसी पूर्व वैर के कारण आपस में एक दूसरे नारकियों को युद्ध में लड़ाते हैं और स्वयं की सुख प्राप्ति के लिये महा हिंसानन्दी रौद्रध्यान करते हैं अन्य कोई अग्निकणिकामय जलती हुई शय्या पर उन्हें सुला देते हैं तथा शुष्क हो गया है शरीर जिनका ऐसे कोई नारकी मृत्यु द्वारा सुख प्राप्त करने की इच्छा से उस पर स्वयं सो जाते हैं ॥८९-९१॥

दुःखों के प्रकार एवं उनकी अवधि का वर्णन–

शारीरं मानसं क्षेत्रोद्भवं परस्परप्रजम्।
असुरोदीरितं पञ्चप्रकारमिति दुस्सहम् ॥९२॥
क्षणक्षणभवं तीव्रं, कविवाचामगोचरम्।
सहन्ते नारकानित्यं, महद्दुःखं च्युतोपमम् ॥९३॥
चतुर्थश्वभ्रतः पूर्वं, ह्यसुरोदीरितासुखम्।
भवेच्छेषचतुःश्वभ्रेषु च दुःखं प्रवर्द्धितम् ॥९४॥
एषां दुःखाब्धिमग्नानां, पापारिग्रसितात्मनाम्।
चक्षुरुन्मेषमात्रं न, सुखं श्वभ्रेषु जातुचित् ॥९५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इत्यसह्य तरां तीव्रां, वेदनां प्राप्य नारकीम्।
उद्विग्नानां मनस्येषां चिन्तेषां जायते तराम् ॥९६॥

अर्थ—नरकों में शारीरिक, मानसिक, क्षेत्र जन्य, परस्पर एक-दूसरे के द्वारा उत्पन्न और असुरकुमारों द्वारा दिया हुआ—ये पाँच प्रकार के दुस्सह दुःख होते हैं। क्षणक्षण में उत्पन्न होने वाले, तीव्र-असाता के तीव्र अनुभाग से युक्त, कवियों के वचन अगोचर अर्थात् कवि जिसका वर्णन करने में असमर्थ, उपमारहित महान् दुःखों को नारकी जीव नित्य ही सहन करते हैं। चतुर्थ पृथिवी से पूर्व अर्थात् तृतीय मेघा पृथिवी पर्यन्त ही असुर कुमारों द्वारा दिया हुआ दुःख है। शेष चार नरक भूमियों में शेष चार प्रकार के ही दुःख होते हैं। पाप रूपी शत्रुओं से ग्रसित है आत्मा जिनकी ऐसे दुःखरूपी समुद्र में डूबे हुए नारकियों को नरकों में कदाचित् भी नेत्र के उन्मेष मात्र सुख नहीं है। इस प्रकार असह्य तीव्र वेदना को प्राप्त कर उद्विग्न मन वाले इन नारकियों के हृदय में यह बहुत भारी चिन्ता उत्पन्न हो रही है ॥९२-९६॥

नारकियों द्वारा चिन्तित विषयों का वर्णन—

अहो! दुराश्रया भूमिः प्रज्वलन्ती-यमस्पृशा।
दुःस्पर्शा मरुतो वान्ति स्फुलिङ्गकणवाहिनः ॥९७॥
एता दीप्ता दिशोऽप्रेक्ष्या एतत् क्षेत्रं भयास्पदम्।
सन्तप्तपांशु दुर्वृष्टिं वर्षन्त्यम्बुमुचोऽबरात्॥९८॥
विषारण्यमिदं विष्वग् विषवल्लीद्रुमैश्चितम्।
असिपत्रवनं चैतदसिपत्रैर्भयङ्करम् ॥९९॥
उद्दीपयन्ति कामाग्नि वृथेमा लोहपुत्रिकाः।
योधयन्ति बलादस्मान् केचित्क्रूराः इमे खलाः ॥१००॥
खरोष्ट्रमनलोद्गारि ज्वलज्वालाकरालितम्।
खरा-रटितमुत्प्रोथं गिलितुं नोऽभिधावति ॥१०१॥
नारका भीषणा एते कृपाणकृतपाणयः।
निष्ठुरास्तर्जयन्त्यस्मान् निष्कारणरणोद्वहाः ॥१०२॥
पक्षिणः परुषापाता इते नोऽभिद्रवन्त्यलम्।
सारमेयाश्च खादन्तो भीषयन्तोऽप्यमीतराम् ॥१०३॥
इतः स्फूरन्ति दुर्ध्यानान् नारकाणां प्रधावताम्।
इतश्च करुणाक्रन्दस्वराः कदर्थितात्मनाम् ॥१०४॥
अन्धकूपसमा एते प्रज्वलन्त्यन्तरूष्मणा।
दुर्गन्धा नारकावासा विश्वक्क्लेशाशुभाकराः ॥१०५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दुस्सहावेदनाह्येषां दुर्निवाराश्च नारका।
अकाले दुस्त्यजाः प्राणाः कृत्स्नमत्रासुखावहम् ॥१०६॥
अतः प्रागर्जिता श्रेयसा वयं कवलीकृताः।
क्व यामः क्व च तिष्ठामः कोऽपि त्राता न जातु नः ॥१०७॥
तरिष्यामः कदात्रेमम—पारं दुःखवारिधिम्।
नो यास्यति कथं कालो बहुसागर-जीवितम् ॥१०८॥
इत्थं चिन्तयतां तेषां शोकिनां क्लेश भोगिनाम्।
अन्तर्बाह्याङ्गदाहिन्यो जायन्ते व्याधयस्त्रयः ॥१०९॥
महत्यः शोकसन्तापदुःखक्लेशादिखानयः।
ताः को वर्णयितुं शक्तो विद्वांस्तेषां च्युतोपमाः ॥११०॥

अर्थ—अहो! मृत्यु से स्पर्शित दुःखों के आश्रयभूत यह भूमि जल रही है। दुखद है स्पर्श जिसका ऐसी अग्निकणों को फैलाने वाली वायु बह रही है। दिशाओं का आभोग दीप्त हो रहा है, यह क्षेत्र अति भयास्पद है और यहाँ मेघों से नित्य ही सन्तप्त रेत की दुर्वृष्टि हो रही है॥९७-९८॥

ये विष वन चारों ओर विष लताओं से युक्त वृक्षों द्वारा व्याप्त हैं। ये भयंकर असिपत्र वन असिपत्रों द्वारा व्याप्त हैं। ये लोहमय स्त्रियाँ वृथा ही कामाग्नि को बढ़ा रही हैं। ये क्रूर और दुष्ट असुरकुमार देव हम लोगों को जबरदस्ती लड़ा रहे हैं ॥९९-१००॥

ऊपर उठाये हैं थुथने (मुख का अग्रभाग) जिनने और जो जलती हुई ज्वाला से युक्त आग उगल रहे हैं ऐसे ये गधे और ऊँट हमें निगलने के लिये पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। हाथ में है तलवार जिनके ऐसे ये निष्कारण युद्ध करने वाले निर्दय और भयंकर नारकी हम लोगों को ताड़ना दे रहे हैं ॥१०१-१०२॥

पक्षियों के कठोर आक्रमण से हम लोग अत्यन्त दुखी किये जा रहे हैं, और कुत्ते हम लोगों को खा रहे हैं तथा भय उत्पन्न करा रहे हैं। आर्तरौद्र आदि दुर्ध्यान से युक्त यहाँ-वहाँ दौड़ने वाले दुःखी नारकियों के करुणा उत्पादक स्वर व्याप्त रहे हैं। अन्धकूप के समान दुर्गन्धित, सम्पूर्ण क्लेशों और अशुभ सामग्रियों की खान तथा अन्तःस्थल में अति उष्ण ये नरक के आवास जला रहे हैं ॥१०३-१०५॥

यह दुस्सह वेदना, ये दुर्निवार नारकी और अकाल में प्राणों का नहीं छूटना इस प्रकार यहाँ दुःख देने वाले सम्पूर्ण साधन हैं। ये पूर्व जन्म में उपार्जित पाप ही हमें खा रहे हैं। हम कहाँ जायें? कहाँ बैठे? यहाँ कोई भी हमारा रक्षक नहीं है। हम यहाँ यह दुःखरूपी समुद्र कैसे पार करें तथा बहुत सागर जीवित रहने का यह काल कैसे पूरा करें ॥१०६-१०८॥

इस प्रकार की चिन्ता करने वाले शोकाकुल और क्लेश भोगी उन नारकी जीवों के अन्तरंग और बाह्य अंगों में मानसिक, वाचनिक और कायिक ये तीन पीड़ाएँ दाह उत्पन्न करती हैं। उपमा रहित, महान शोक, सन्ताप, दुःख एवं क्लेश आदि के खान स्वरूप उन नारकी जीवों का वर्णन करने के लिये

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कौन विद्वान् समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं ॥१०९-११०॥

नारकी शरीरों के रस, गन्ध और स्पर्श आदि का वर्णन–

कटुकालाबुकाञ्जीराणां यादृशो रसः कटुः।
अनिष्टश्चाधिकस्तस्मात् तद्गात्रेषु रसोऽशुभः ॥१११॥
श्वमार्जारखरोष्ट्रादि कुणयेभ्योऽतिदुःसहः
नारकाङ्गेषु दुर्गन्धः सविशेषो घृणाकरः ॥११२॥
यादृशाः करपत्रेषु गोक्षुरेषु च दुःस्पृहाः।
तादृशाः कर्कशस्पर्शस्तेषां गात्रेषु विद्यते ॥११३॥

अर्थ–उन नारकी जीवों के शरीरों में कड़वी तूमड़ी और काञ्जीर से भी अधिक कटु, अशुभ और अनिष्ट कारक रस होता है। कुत्ता, बिल्ली, गधा, ऊँट और सर्प आदि जानवरों के मरे हुए शरीरों में जो दुर्गन्ध आती है, उससे भी कहीं अधिक, दुःसह और घृणास्पद दुर्गन्ध उन नारकी जीवों के शरीरों में आती है। करोंत और गोखुरू आदि पदार्थों में जैसा दुःस्पर्श होता है, वैसा ही स्पर्श उन नारकी जीवों के शरीरों में होता है ॥१११-११३॥

अपृथक् विक्रिया का कथन–

अपृथग्विक्रियास्त्येषां परपीड़ाविधायिनी।
निन्द्याशुभतराङ्गेभ्यः क्ववधिर्दुरितोदयात् ॥११४॥

अर्थ–उन नारकी जीवों के पाप कर्म के उदय से अपृथक् विक्रिया होती है और पर पीड़ा का सम्पादन करने वाला, निन्द्य कुअवधिज्ञान अशुभतर अंगों से उत्पन्न होता है ॥११४॥

उपसंहार–

इत्याद्यन्यजगन्निंद्य-मनिष्टं दुःखकारणम्।
यद्द्रव्यं तत्समस्तं स्यात्, नारकाङ्गेषु पिण्डितम् ॥११५॥
किमत्र बहुनोक्तेन, विविधा दुःखसन्ततीः।
अधोधः सप्तपृथ्वीष्व-संख्यातगुण वर्धिता ॥११६॥
महतीश्च निरौपम्या मुक्त्वा केवलिनं जिनम्।
नान्यो वर्णयितुं शक्ती, मन्येऽहमिति निश्चितम् ॥११७॥

अर्थ–इस प्रकार और भी जो अन्य द्रव्य जगत् निन्द्य, अनिष्ट और दुःख कारक हैं, वे सब नारकियों के शरीरों में एकत्रित होते हैं। यहाँ अधिक कहने से क्या? नाना प्रकार के दुःखों की परम्परा नीचे नीचे सातों नरकों में असंख्यात गुण, असंख्यात गुण वृद्धि को लिये हुए हैं। निश्चय से मैं ऐसा मानता हूँ कि केवली और जिन के द्वारा कही हुई उस महान् और उपमा रहित वेदना का वर्णन करने के लिये अन्य कोई समर्थ नहीं है ॥११५-११७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पापाचारी जीवों को शिक्षा–

एतन्नरकदुःखादि भीरूणां सुखकांक्षिणाम्।
पापारिं सर्वथा हत्वा कार्यो धर्मः प्रयत्नतः ॥११८॥

अर्थ–इस प्रकार उन नरकों के दुःखों से भयभीत और सुख की इच्छा करने वाले जीवों का कर्तव्य है कि वे पाप रूप शत्रु को सर्वथा नष्ट करके प्रयत्न पूर्वक धर्म कार्य करें ॥११८॥

धर्म की महिमा–

यतो नरक पातालाद् धर्म उद्धर्तुमङ्गिनः।
क्षमः स्थापयितुं मोक्षे कल्पे वानुत्तरादिषु ॥११९॥
धर्मादूर्ध्वगतीः साराः पापान्निन्द्या अधोगतीः।
लभन्ते प्राणिनो लोके द्वयाश्च मध्यमा गतीः ॥१२०॥
पापं शत्रुरिहामुत्र धर्मो बन्धुर्न चापरः।
सहगामी जिनेन्द्रोक्तो मुक्तिमार्गप्रसाधकः ॥१२१॥

अर्थ–जीवों को नरक रूप गड्ढे से निकालने में और मोक्ष, कल्पवासी एवं अनुत्तर आदि उत्तम स्थानों में पहुँचाने के लिये एक धर्म ही समर्थ है।

इस लोक में जीव धर्म से सारभूत ऊर्ध्वगति, पाप से निन्द्यनीय अधोगति और पाप–पुण्य दोनों से मध्यम गति (मनुष्य, तिर्यञ्च गति) प्राप्त करते हैं। इस लोक और पर लोक में जीवों को जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कहे हुए मोक्षमार्ग का साधनभूत धर्म के समान अन्य कोई बन्धु नहीं है और पाप के समान कोई शत्रु नहीं है ॥११९-१२१॥

चारित्र धारण करने की प्रेरणा–

मत्वेति भो! बुधजनाः सकलं निहत्य,
पापारिमाश्रु - नरकादिकुदुःखमूलम्।
स्वमुक्तिशर्मजनकं परमार्थभूतम् ।
धर्मं कुरुध्वमनिशं व्रतसंयमाद्यैः ॥१२२॥

अर्थ–ऐसा मानकर हे भव्यजनो! नरकादि गतियों में होने वाले भयंकर दुःखों का जो मूल है ऐसे पाप रूप शत्रु को शीघ्र ही नष्ट करके व्रत, संयम आदि चारित्र के द्वारा स्वर्ग और मोक्ष सुख का जनक परमार्थभूत धर्म करो ॥१२२॥

अन्तिम मङ्गलाचरण–

धर्मः श्वभ्रगृहार्गलोऽसुखहरो, धर्मः शिवश्रीप्रदो,
धर्मो नाकनरामरेन्द्रपददो धर्मो गुणानां निधिः।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

धर्मस्तीर्थकृतादि वैभवपिता सर्वार्थसिद्धिं करो,
धर्मो मेऽस्तु शिवाय संस्तुत इहालंसेवितस्तद्गुणैः ॥१२३॥

इति श्री सिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते नरकदुःखवर्णनो नाम तृतीयोऽधिकारः ॥३॥

अर्थ—धर्म ही नरकरूप गृह का आर्गल है, सुख देने वाला है, धर्म ही मोक्ष लक्ष्मी का प्रदाता है, धर्म ही इन्द्र, धरणेन्द्र एवं चक्रवर्ती आदि पदों पर प्रतिष्ठित करने वाला है, धर्म ही गुणों का खजाना है, धर्म ही तीर्थंकर आदि वैभवों को उत्पन्न करने वाला पिता है और धर्म ही सर्व प्रयोजनों की सिद्धि करने वाला है, अतः यह तद् तद् गुणों के द्वारा पूर्णरूप से सेवन किया गया तथा स्तवन किया धर्म मुझे मोक्ष के लिये हो।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक नाम के महाग्रन्थ में नरकों के दुःखों का वर्णन करने वाला तीसरा अधिकार समाप्त हुआ।

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चतुर्थ अधिकार

मध्यलोक वर्णन

मङ्गलाचरण

नमामि मध्यलोकस्थान् सर्वांश्च परमेष्ठिनः।
जिनालयान् जिनार्चादीन् मोक्षाय कृत्रिमेतरान् ॥१॥

अर्थ—मध्यलोक में स्थित सम्पूर्ण पञ्चपरमेष्ठियों को, कृत्रिम, अकृत्रिम जिनमन्दिरों को और कृत्रिम, अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं को मैं मोक्ष की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ॥१॥

विशेषार्थ—मध्यलोक में स्थित अकृत्रिम जिन चैत्यालय ४५८ हैं। जिनका विवरण–नन्दीश्वर द्वीप के ५२ चैत्यालय, कुण्डल गिरि के ४, रुचकगिरि के ४ इस प्रकार (५२+४+४)=६० चैत्यालय तिर्यग्लोक में हैं और पाँच मेरु के ८०, बीस गजदन्तों के २०, अस्सी वक्षार पर्वतों के ८०, तीस कुलाचलों के ३०, चार इष्वाकार पर्वतों के ४, एक मानुषोत्तर पर्वत के ४, एक सौ सत्तर विजयाधों के १७०, और दश जम्बू शाल्मलि वृक्षों के १० अकृत्रिम चैत्यालय हैं। इस प्रकार मनुष्य लोक में कुल (८०+२०+८०+३०+४+४+१७०+१०)=३९८ अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं। तिर्यग्लोक के ६० और मनुष्य लोक के ३९८ इन दोनों को जोड़ देने से मध्यलोक में कुल अकृत्रिम चैत्यालय (३९८ +६०)=४५८ होते हैं। इन एक–एक चैत्यालय में एक सौ आठ, एक सौ आठ प्रतिमाएँ हैं अतः ४५८ को १०८ से गुणित कर देने पर (४५८×१०८)=४९४६४ मध्यलोक के अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। अर्थात् मंगलाचरण में ४५८ अकृत्रिम चैत्यालय और ४९४६४ अकृत्रिम प्रतिमाओं को नमस्कार किया है। टिप्पणकर्ता ने इसका गुणा निम्न प्रकार से किया है–

गुणन प्रक्रिया–जितने अंकों में गुणा करना हो चौड़ाई (आड़े) में उतने खण्ड बनाना और जितने अंकों का गुणा करना हो लम्बाई (खड़े) में उतने खण्ड बना कर दहाई और इकाई के अंक रखने के लिये प्रत्येक खण्ड के दो–दो खण्ड करना चाहिए। यहाँ तीन अंकों (४५८) में तीन ही अंकों (१०८) का गुणा करना है अतः लम्बाई और चौड़ाई में तीन–तीन खण्ड करके पीछे दहाई और इकाई के लिये प्रत्येक खण्ड के दो दो भाग किये। सर्वप्रथम ४५८ को १ से गुणा करने पर दहाई में ० और इकाई स्थान में ४, ५ और आठ ही लिखे जावेंगे। ४५८ को ० से गुणा करने पर दहाई और इकाई दोनों स्थानों पर शून्य शून्य ही आयेंगे, इसी प्रकार ४५८ के आठ के अंकों को १०८ के आठ से गुणा करने पर ६४ प्राप्त हुए जो दहाई में ६ और इकाई में ४ रखे गये आगे ४० और ३२ को भी इसी प्रकार रख कर चक्र के दाहिने भाग में नीचे से जोड़ना जैसे प्रथम पंक्ति में मात्र ४ हैं अतः सर्वप्रथम ४ का अंक रखना, दूसरी पंक्ति में शून्य, छह और शून्य है अतः ६ का अंक रखना, तीसरी पंक्ति में २, ४,०, ० और ८ हैं इनका योग १४ होता है अतः तृतीय स्थान में ४ लिखना और दहाई का एक अंक अगली (चौथी)

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पंक्ति में जोड़ना, इस प्रकार अगली (चौथी) पंक्ति में (१), ३,०, ०, ५ और ० हुए, इनका योग ९ आया जो चतुर्थ स्थान में रखना। पञ्चम पंक्ति में ०, ४ और ० है। इनका योग ४ हुआ अतः अन्तिम स्थान में ४ रख देना। छठवीं पंक्ति में मात्र ० है, अतः कुछ नहीं रखा जायेगा। इस प्रकार योग की कुल संख्याएँ ४९ हजार ४ सौ ६४ प्राप्त हुई जो ४५८ × १०८ के गुणनफल स्वरूप हैं।

मध्यलोक के वर्णन करने की प्रतिज्ञा एवं उसका प्रमाण

अथ वक्ष्ये समासेन मध्यलोक जिनागमात्।
एकरज्जुप्रमव्यासासंख्यद्वीपाब्धिपूरितम् ॥२॥
लक्षैकयोजनोत्सेधो मध्यलोकोऽभिधीयते।
चित्राभूमितलान्मेरुशिरःपर्यन्त ऊर्जितः ॥३॥

अर्थ—अब मैं जिनागम से अर्थात् जिनागम के अनुसार संक्षेप से मध्यलोक का वर्णन करूँगा। इस मध्यलोक का व्यास एक राजू प्रमाण है, जो असंख्यात द्वीप समुद्रों से व्याप्त है। चित्रा पृथ्वी के तलभाग से लेकर सुमेरु पर्वत के शिखर पर्यन्त अर्थात् एक लाख योजन इस लोक की ऊँचाई है ॥२-३॥

विशेषार्थ—मध्यलोक का व्यास एक राजू और ऊँचाई एक लाख योजन अर्थात् ४०००००००० चालीस करोड़ मील है।

शंका—राजू किसे कहते हैं?

समाधान—जगच्छ्रेणी के सातवें भाग को राजू कहते हैं। जैसे जगच्छ्रेणी का प्रमाण बादाल से गुणित एकट्ठी ($६५५३६^{४} \times ६५५३६^{२}$) है। इसमें सात का भाग $\left(\frac{६५५३६^{४} \times ६५५३६^{२}}{७}\right)$ देने पर जो एक भाग प्राप्त हो वही राजू का प्रमाण है।

आदि के सोलह द्वीपों के नाम

आद्यो द्वीपोऽत्र जम्ब्वाख्यो धातकीखण्डसंज्ञकः।
पुष्करादिवरश्चान्यस्तृतीयो वारुणीवरः ॥४॥

ततः क्षीरवरो द्वीपो नाम्ना घृतवरो परः।

द्वीपः क्षौद्रवरो नन्दीश्वरोऽष्टमोऽरुणाभिधः ॥५॥
द्वीपोऽथारुणभासाख्यः कुण्डलादिवरस्ततः।
द्वीपः शङ्खवराभिख्यो रुचकादिवराह्वयः ॥६॥
भुजगादिवरो द्वीपस्तथा कुशवराख्यकः।
द्वीपः क्रौञ्चवरो नामेत्याद्यन्येनमिभियुताः ॥७॥

अर्थ—मध्यलोक में सर्वप्रथम द्वीप का नाम जम्बूद्वीप (२) धातकीखण्ड (३) पुष्करवर (४) वारुणीवर (५) क्षीरवर (६) घृतवर (७) क्षौद्रवर (८) नन्दीश्वर (९) अरुणवर (१०) अरुणाभासवर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

(११) कुण्डलवर (१२) शङ्खवर (१३) रुचकवर (१४) भुजगवर (१५) कुशवर और (१६) क्रौञ्चवर है ये आदि के १६ द्वीप हैं। इसके बाद असंख्यात द्वीप समुद्रों को छोड़कर अन्त के १६ द्वीपों के नाम भी हैं ॥५-७॥

विशेषार्थ—ऊपर तीन श्लोकों में मध्यलोक के अभ्यन्तर १६ द्वीपों के नाम कहे हैं, इनके आगे असंख्यात द्वीप समुद्रों को छोड़कर अन्त के सोलह द्वीपों के नाम निम्न प्रकार हैं—(१) मनःशिला द्वीप (२) हरितालवर (३) सिन्दूरवर (४) श्यामवर (५) अञ्जनवर (६) हिंगुलवर (७) रूप्यवर (८) सुवर्णवर (९) वज्रवर (१०) वैडूर्यवर (११) नागवर (१२) भूतवर (१३) यक्षवर (१४) देववर (१५) अहीन्द्रवर और (१६) स्वयम्भूरमण द्वीप है। इस प्रकार ये आदि अन्त के ३२ द्वीप और ३२ ही समुद्र हैं, इनके बीच असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। ये सब एक राजू के मध्य में ही स्थित हैं।

नोट—यह विशेषार्थ टिप्पण के आधार पर लिखा है।

द्वीप समुद्रों की स्थिति एवं आकृति—

शुभैः संख्यातिगा द्वीपसमुद्राः परिवेष्ट्य च।
परस्परं हि तिष्ठन्ति बलयाकृतिधारिणः ॥८॥

अर्थ—शुभ नाम वाले असंख्यात द्वीप समुद्र वलयाकृति और परस्पर में एक-दूसरे को परिवेष्टित करते हुए (घेरे हुए) स्थित हैं ॥८॥

समुद्रों की स्थिति एवं नामों का कथन करते हैं—

जम्बूद्वीपे समुद्रः स्यात्, लवणाभिध आदिमः।
द्वीपे च धातकीखण्डे, कालोदधिसमाह्वयः ॥९॥
शेषासंख्यसमुद्राणां, नामानि विविधानि च।
स्वस्वद्वीपसमानानि, ज्ञातव्यानि शुभान्यपि ॥१०॥

अर्थ—जम्बूद्वीप में अर्थात् जम्बूद्वीप को वेष्टित किये हुए लवणसमुद्र नाम का प्रथम समुद्र है, और धातकीखण्ड सम्बन्धी कालोदधि नाम वाला दूसरा समुद्र है। इसके बाद अपने-अपने द्वीप के समान अनेकों शुभ नामों को धारण करने वाले असंख्यात समुद्र जानना चाहिए। ये सब भी बलयाकृति और अपने-अपने द्वीपों को वेष्टित किये हुए हैं॥९-१०॥

द्वीपसमुद्रों की संख्या का प्रमाण—

अर्धाधकद्वयोधाराब्धीनां रोमाणि सन्ति वै।
यावन्ति तत्प्रमा ज्ञेया, असंख्यद्वीप वार्द्धयः ॥११॥

अर्थ—अढ़ाई आधार-उद्धार सागर के रोमों का जितना प्रमाण होता है, उतना ही प्रमाण असंख्यात द्वीप समुद्रों का जानना चाहिए ॥११॥

विशेषार्थ—व्यवहार पल्य के रोमों का जो प्रमाण है उनमें से प्रत्येक रोम के उतने खण्ड करना

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चाहिए जितने कि असंख्यात वर्षों के समयों का प्रमाण है। इन समस्त रोमखण्डों को एकत्रित करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो वही एक उद्धार पल्य के समयों का प्रमाण है, और इसी प्रमाण वाले पच्चीस कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों के समयों का जितना प्रमाण है उतना ही प्रमाण सम्पूर्ण द्वीप समुद्रों का है। २५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों का ढाई उद्धार सागर होता है।

अब द्वीप समुद्रों का व्यास (विस्तार) कहते हैं–

अमीषां मध्यभागेऽस्ति, जम्बूद्वीपोऽखिलादिमः।
लक्षयोजनविस्तीर्णो, वृत्तो जम्बूद्रुमाङ्कितः ॥१२॥
ततो द्विगुणविस्तारो, लवणार्णवशाश्वतः।
अस्माच्च द्विगुणव्यासो, धातकीखण्डइत्यपि ॥१३॥
द्विगुणद्विगुणव्यासाः, सर्वे ते द्वीपसागराः।
स्वयम्भूरमणाब्ध्यन्ता, अकृत्रिमाः क्षयोज्झिताः ॥१४॥

अर्थ–सम्पूर्ण द्वीप समुद्रों के मध्यभाग में जम्बूद्वीप नाम का प्रथम द्वीप है, जो गोल है, एक लाख योजन व्यास वाला और जम्बू वृक्ष से अलंकृत है। जम्बूद्वीप से दुगुने विस्तार वाला लवण समुद्र है, जो शाश्वत है और लवण समुद्र से भी दुगुने विस्तार वाला धातकीखण्ड है। इसी प्रकार अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त सर्व द्वीप समुद्र दुगुने-दुगुने विस्तार वाले, अकृत्रिम और क्षय से रहित हैं ॥१२-१४॥

अब सूची व्यास का लक्षण कहते हैं–

द्वीपाब्धीनां हि संलग्ना गणनायोजनैश्च या।
ऋज्वीतटद्वयान्ता सा सूची बुधैर्निगद्यते ॥१५॥

अर्थ–योजनों द्वारा द्वीप या समुद्र के मध्य के माप का अथवा द्वीप या समुद्र के एक तट से दूसरे तट पर्यन्त तक के सीधे माप का जो प्रमाण है वह विद्वानों के द्वारा सूची नाम से कहा गया है ॥१५॥

विशेषार्थ–सीधी रेखा द्वारा द्वीप, समुद्र या समुद्र के एक तट से दूसरे तट पर्यन्त तक जो माप किया जाता है, उसे सूची कहते हैं।

अढ़ाई द्वीप पर्यन्त के द्वीप समुद्रों की सूची का प्रमाण कहते हैं–

योजनानां च लक्षैकं, सूचीद्वीपादिमस्य वै।
लवणाब्धेर्भवेत्पञ्च, लक्षयोजनसम्मिता ॥१६॥
सूची च धातकीखण्डस्य लक्षाणित्रयोदश।
योजनानां तथैकोनत्रिंशत्कालोदधेस्ततः ॥१७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सूची स्यात्पञ्चचत्वारिं-शल्लक्षयोजनप्रमा।
पुष्करार्धस्यसाज्ञेया-न्येषामेवं श्रुते बुधैः ॥१८॥

अर्थ-आगम में जम्बूद्वीप के सूची व्यास का प्रमाण एक लाख योजन, लवण समुद्र के सूची व्यास का प्रमाण पाँच लाख योजन, धातकीखण्ड के तेरह लाख योजन, कालोदधि समुद्र के उन्तीस लाख योजन और पुष्करार्ध द्वीप के सूची व्यास का प्रमाण गणधरादि ज्ञानियों के द्वारा ४५ लाख योजन कहा गया है ॥१६-१८॥

विशेषार्थ—अभ्यन्तर सूची, मध्य सूची और बाह्य सूची के भेद से सूची व्यास तीन प्रकार का होता है, किन्तु यहाँ केवल बाह्य सूची व्यास का ही प्रमाण दर्शाया गया है।

लवण समुद्र का बाह्य सूची व्यास 

५ लाख योजन और

पुष्करार्ध द्वीप का बाह्य सूची व्यास 

४५ लाख योजन प्रमाण है।

अब स्थूल और सूक्ष्म परिधि का विवेचन करते हैं—

व्यासात्त्रिगुणः स्थूलः परिधिः प्रोच्यते जिनैः।
दशघ्नव्यासवर्गस्य मूलं सूक्ष्मश्च वर्ण्यते ॥१९॥

अर्थ—बादर परिधि, व्यास की तिगुनी होती है और व्यास का वर्ग कर दश से गुणित करना, तथा गुणनफल का वर्गमूल निकालना जो लब्ध प्राप्त हो वही सूक्ष्म परिधि का प्रमाण होता है। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ॥१९॥

अस्य विस्तरः कथ्यते-जम्बूद्वीपस्य स्थूलपरिधिः त्रिलक्षयोजनानि। सूक्ष्मपरिधिः त्रिलक्षषोडश-सहस्र-द्विशतसप्तविंशतियोजनानि, त्रिगव्यूतानि, अष्टाविंशत्यधिकशतधनूंषि त्रयोदशांगुलाः साधिकार्धांगुलः। लवणाब्धेः स्थूलपरिधिः योजनानां पञ्चदशलक्षाणि। धातकीखण्डस्य चैकोनश्चत्वारिंशल्लक्षाणि। कालोदधेः सप्ताशीतिलक्षाणि। पुष्करार्धस्य द्वीपस्य स्थूलपरिधिः एकाकोटीपञ्चत्रिंशल्लक्षाणि।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब इसी का सविस्तर कथन करते हैं–

जम्बूद्वीप की स्थूल परिधि का प्रमाण ३ लाख योजन और सूक्ष्म परिधि का प्रमाण ३१६२२७ योजन, ३ कोस १२८ धनुष और साधिक १३ $\frac{१}{२}$ अंगुल है। लवणसमुद्र की स्थूल परिधि का प्रमाण १५ लाख योजन है (और सूक्ष्मपरिधि का प्रमाण १५८११३८ योजन, ३ कोश, ६४० धनुष, २ हाथ और १९ $\frac{१}{२}$ अंगुल है)। धातकीखण्ड की स्थूल परिधि ३९ लाख योजन (और सूक्ष्म परिधि का प्रमाण ४११०९६० योजन, ३ कोस, १६६५ धनुष, ३ हाथ, ७ $\frac{१}{२}$ अंगुल) है। कालोदधि समुद्र की स्थूल परिधि का प्रमाण ८७ लाख योजन और पुष्करार्धद्वीप की स्थूल परिधि का प्रमाण १३५००००० (एक करोड़ ३५ लाख) योजन है।

जम्बूद्वीप का बादर सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिये नियम निर्धारित करते हैं–

परिवेषहताद् व्यासाच्चतुर्भि-र्भाजितात्फलम्।
स्थूलं सूक्ष्मं तदेवोक्तं वृत्तक्षेत्रफलं स्फुटम् ॥२०॥

अर्थ–स्थूल परिधि को व्यास से गुणित कर चार से भाजित करने पर गोलक्षेत्र का स्थूल क्षेत्रफल प्राप्त होता है और सूक्ष्म परिधि को व्यास से गुणित कर ४ से भाजित करने पर सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥२०॥

विशेषार्थ–जम्बूद्वीप थाली के सदृश गोल है, इसका व्यास एक लाख योजन और स्थूल परिधि ३ लाख योजन है, अतः इसका स्थूल क्षेत्रफल $\frac{\text{स्थूल प.} \times \text{व्यास}}{४}$ और

सूक्ष्म क्षेत्रफल $\frac{\text{सूक्ष्मपरिधि} \times \text{व्यास}}{४}$ के नियमानुसार निकलेगा।

वलयाकार क्षेत्र का स्थूल सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त करने का नियम–

सूच्योर्योगस्य विस्तारदलघ्नस्य कृतिर्द्विधा।
त्रिघ्नदशघ्नयोर्मूले स्थूलान्ये वलये फले ॥२१॥

अर्थ–अन्तसूची और आदि सूची को जोड़ कर अर्ध विस्तार (अर्धरुन्द्रव्यास) से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे दो जगह स्थापित कर एक स्थान के प्रमाण को तिगुना करने से बादर क्षेत्रफल और दूसरे स्थान के प्रमाण का वर्ग कर जो लब्ध प्राप्त हो उसको दश से गुणित कर गुणनफल का वर्गमूल निकालने पर जो लब्ध प्राप्त होता है वह वलयाकार क्षेत्र के सूक्ष्म क्षेत्रफल का प्रमाण होता है ॥२१॥

विशेषार्थ–लवणसमुद्र चूड़ी के सदृश वलयाकार है। इसका अन्त अर्थात् बाह्यसूची व्यास ५ लाख योजन और आदि अर्थात् अभ्यन्तर सूची व्यास एक लाख योजन है। इन दोनों का योग (५+१) =६ लाख योजन हुआ। लवण समुद्र का अर्धविस्तार १ लाख योजन है अतः ६ लाख ×१ लाख = ६ लाख × लाख प्राप्त हुए। इसे ६ लाख × लाख, ६ लाख × लाख इस प्रकार दो जगह स्थापित

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कर एक जगह के प्रमाण को तिगुना करने से (६ लाख × लाख ×३)=१८ लाख लाख अर्थात् १८ हजार करोड़ योजन लवण समुद्र का बादर क्षेत्रफल हुआ, और दूसरी जगह स्थापित ६ लाख लाख का वर्ग करने पर ६ लाख लाख × ६ लाख लाख हुए। इनको दश से गुणित करने पर ६ लाख लाख × ६ लाख लाख × १० अर्थात् ३६ कोड़ाकोड़ी करोड़ योजन प्राप्त हुए। इनका वर्गमूल निकालने पर १८९७३६६५९६१० योजन अर्थात् अठारह हजार नौ सौ तिहत्तर करोड़ छियासठ लाख, उनसठ हजार छह सौ दश योजन लवणसमुद्र के सूक्ष्म क्षेत्रफल का प्रमाण प्राप्त होता है।

अस्यार्थः प्रोच्यते–जम्बूद्वीपस्य स्थूलं वृत्तक्षेत्रफलं सप्तशतपञ्चाशत् कोटि योजनानि। सूक्ष्मं च सप्तशतनवतिकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षचतुर्नवतिसहस्रैकशतपञ्चाशद्योजनानि। पादाधिकक्रोशश्च।

इसी अर्थ को कहते हैं–

जम्बूद्वीप के स्थूल क्षेत्रफल का प्रमाण $\frac{३ \text{ ला.} \times १ \text{ ला.}}{४}$ = सात सौ पचास करोड़ अर्थात् सात अरब पचास करोड़ वर्ग योजन है, और सूक्ष्म क्षेत्रफल का प्रमाण $\frac{\text{सूक्ष्मपरिधि} \times १ \text{ ला.}}{४}$ =७९०५६९४१५० योजन, १ कोस, १५१५ धनुष, २ हाथ और १२ अंगुल है।

जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्र एवं कुलाचलों के नाम–

अथ जम्बूमति द्वीपे महामेरोः सुदर्शनात्।
दक्षिणं भागमारभ्येमानि क्षेत्राणि सप्तवै ॥२२॥
आदिमं भारतं क्षेत्रं ततौ हेमवताह्वयम्।
हरिसंज्ञं विदेहाख्यं जम्बूद्वीपे च रम्यकम् ॥२३॥
हैरण्यवतनामाथै-रावतं क्षेत्रमन्तिमम्।
सप्तैतानि सुवर्षाण्यन्तरितानि कुलाचलैः ॥२४॥
प्रथमो हिमवच्छैलस्ततोमहाहिमाचलः।
निषधः पर्वतो नीलो रुक्मी च शिखरीति षट् ॥२५॥

अर्थ–जम्बूद्वीप के मध्यभाग में सुदर्शन नाम का महामेरु है, इस सुदर्शन मेरु के दक्षिणभाग से प्रारम्भ कर सात क्षेत्र हैं। सर्वप्रथम भरतक्षेत्र, (२) हैमवत, (३) हरिक्षेत्र, (४) विदेह, (५) रम्यकक्षेत्र, (६) हैरण्यवत क्षेत्र और अन्तिम (७) ऐरावत नाम का क्षेत्र है। इन सातों क्षेत्रों को अन्तरित करने वाले छह कुलाचल पर्वत हैं, जिसमें प्रथमादि कुलाचलों के नाम हिमवन्, (२) महाहिमवन्, (३) निषध, (४) नील पर्वत, (५) रुक्मी और (६) शिखरिन् हैं ॥२२-२५॥

अब कुलाचलों का वर्ण कहते हैं–

कनकार्जुनहेमाभास्त्रयो दक्षिणभूधराः।
वैडूर्यरजतस्वर्ण-मयाः कुलाद्रयस्त्रयः ॥२६॥

अर्थ–दक्षिण दिशा के तीन कुलाचलों का वर्ण क्रमशः कनक, अर्जुन और हेम के सदृश है तथा

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उत्तर दिशा के तीन कुलाचलों का वर्ण क्रमशः वैडूर्य, रजत और स्वर्णमय है ॥२६॥

विशेषार्थ—हिमवन् पर्वत का वर्ण स्वर्ण सदृश, महाहिमवन् का अर्जुन अर्थात् चाँदी सदृश, निषध पर्वत का हेम अर्थात् तपाये हुए स्वर्ण सदृश, नील पर्वत का वैडूर्य (पन्ना) अर्थात् मयूर खण्ड सदृश, रुक्मी पर्वत का रजत अर्थात् चाँदी सदृश और शिखरिन् पर्वत का स्वर्ण सदृश वर्ण है।

भरतक्षेत्र के व्यास का प्रमाण कहते हैं—

नवत्यग्रशतैर्भागै-र्जम्बूद्वीपस्य विस्तरः।
विभक्तो भरतस्यैको भागो व्यासोमतोजिनैः ॥२७॥

अर्थ—जम्बूद्वीप के विस्तार (१ लाख यो.) को १९० भागों से भाजित करने पर जो एक भाग प्राप्त होता है वही भरत क्षेत्र का व्यास जिनेन्द्र भगवान् द्वारा माना गया है ॥२७॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। इसको १९० से भाजित करने पर $(\frac{१००००}{१९०})$ = ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन प्राप्त होता है यही एक भाग भरतक्षेत्र का विस्तार माना गया है। ७ क्षेत्र और ६ पर्वतों की १९० शलाका होती है, अतः १९० से भाजित किया है। शलाका का प्रमाण १ + २ + ४ + ८ + १६ + ३२ + ६४ + ३२ + १६ + ८ + ४ + २ + १ = १९० है।

अस्यव्याख्यानमिदम्—जम्बूद्वीपस्य नवत्यधिकशतभागकृतानामेको भागो भरतस्य विष्कम्भः। हिमवतो द्वौभागौ च। हैमवतस्य चत्वारो भागाः। महाहिमवतोऽष्टौ भागाः। हरिक्षेत्रस्य षोडशभागाः। निषधाद्रेर्द्वात्रिंशत्भागाः। विदेहस्य चतुःषष्टिभागाः। नीलस्य द्वात्रिंशत् भागाः। रम्यकस्य षोडशभागाः। रुक्मिणोऽष्टौ भागाः। हैरण्यवतस्य चत्वारो भागाः। शिखरिणो द्वौ भागौ। ऐरावतस्यैको भागः। इत्यमी सर्वे पिण्डीकृताः कृत्स्नक्षेत्राद्रीणां नवतिशतभागाः भवन्ति।

इसी का विशेष विवेचन करते हैं—जम्बूद्वीप के (१००००० योजन विस्तार के) १९० भाग करने पर १ भाग प्रमाण भरत का विस्तार, २ भाग हिमवन्, ४ भाग हैमवत, ८ भाग महाहिमवन्, १६ भाग हरिक्षेत्र, ३२ भाग निषधपर्वत, ६४ भाग विदेह, ३२ भाग नील पर्वत, १६ भाग रम्यक क्षेत्र, ८ भाग रुक्मी पर्वत, ४ भाग हैरण्यवत क्षेत्र, २ भाग शिखरिन् पर्वत और १ भाग प्रमाण ऐरावत क्षेत्र का विस्तार है। इन सबको जोड़ लेने पर सम्पूर्ण क्षेत्र और सम्पूर्ण कुलाचलों की सम्पूर्ण शलाकाओं का प्रमाण (१+२+४+८ +१६+३२+६४+३२+१६+८+४+२+१)=१९० होता है।

अब क्षेत्र एवं कुलाचलों का विस्तार कहते हैं—

योजनानां च षड्विंशत्यग्रपञ्चशतान्यपि।
एकोनविंशभागानां कृतानां योजनस्य वै ॥२८॥
षट्भागा इति विष्कम्भो भरतस्य भवेत्ततः।
द्विगुणः पर्वतस्येति द्विगुणो द्विगुणोऽपरः ॥२९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

व्यासो विदेहपर्यन्तं ततो नीलादिषु क्रमात्।
पूर्वोक्त विधि हान्यैरावतान्तं विस्तरो मतः ॥३०॥
क्षेत्राच्चतुर्गुणं क्षेत्रमद्रेरद्रिश्चतुर्गुणम्।
भरतादि विदेहान्तं नीलादौ चतुराहृतम् ॥३१॥

अर्थ—भरतक्षेत्र का विष्कम्भ ५२६$\frac{६}{१९}$योजन प्रमाण है। हिमवन् पर्वत का इससे दुगुना है, इस प्रकार विदेह क्षेत्र पर्यन्त प्रत्येक क्षेत्र एवं पर्वत का विष्कम्भ क्रमशः दुगुना-दुगुना होता गया है, और नील पर्वत से ऐरावत क्षेत्र पर्यन्त इसी क्रम से हानि होती गई है। भरतक्षेत्र से विदेह क्षेत्र पर्यन्त प्रत्येक क्षेत्र से क्षेत्र का विष्कम्भ चौगुना है और प्रत्येक पर्वत से पर्वत का चौगुना है। इसके आगे नीलादि पर्वतों एवं रम्यक आदि क्षेत्रों का पूर्वोक्त क्रम से ही चौगुना-चौगुना हीन होता गया है ॥२८-३१॥

अस्यविशेषव्याख्यानमुच्यते-भरतस्य विष्कम्भः योजनानां षड्विंशत्यग्रपञ्चशतानि योजनस्यैकोनविंशतिभागीकृतस्य कलाः षट्। हिमवतश्च द्विपञ्चाशदधिकदशशतानि कला द्वादश। हैमवतस्य पञ्चाधिकैकविंशतिशतानि कलाः पञ्च। महाहिमवतः दशाधिकद्विचत्वारिंशच्छतानि कला दश। हरिवर्षस्याष्टसहस्रचतुःशतैकविंशतिरेका कला। निषधस्य षोडशसहस्राष्टशतद्विचत्वारिंशद् द्वे कले। विदेहस्य व्यासः त्रयस्त्रिंशत्सहस्रषट्शतचतुरशीति योजनानि चतस्रः कलाः। नीलस्य षोडशसहस्राष्टशतद्विचत्वारिंशत् द्वे कले। रम्यकस्याष्टसहस्रचतुःशतैकविंशतिरेका कला। रुक्मिणः चतुःसहस्रद्विशतदशयोजनानि कला दश। हैरण्यवतस्य पञ्चाग्रैकविंशतिशतानि कलाः पञ्च। शिखरिणः द्विपञ्चाशदधिकदशशतानि कला द्वादश। ऐरावतस्य विस्तारः षड्विंशत्यधिकपञ्चशतयोजनानि, योजनैकोनविंशतिभागानां षट्कलाश्च। एवमेकत्रीकृते जम्बूद्वीपस्य व्यासः योजनानां लक्षैकं स्यात्।

उपर्युक्त गद्यभाग का सम्पूर्ण अर्थ निम्नाङ्कित तालिका में निहित है।

समस्त क्षेत्र एवं कुलाचलों के विस्तार का प्रमाण—

		क्षेत्रों का विस्तार				कुलाचलों का विस्तार	
क्रमांक	नाम	योजनों में	मीलों में	क्रमांक	नाम	योजनों में	मीलों में
१	भरत	५२६$\frac{६}{१९}$	२१०५२६३$\frac{३}{१९}$	१	हिमवन	१०५२$\frac{१२}{१९}$	४२१०५२६$\frac{६}{१९}$
२	हैमवत	२१०५$\frac{५}{१९}$	८४२१०५२$\frac{१२}{१९}$	२	महाहिमवन	४२१०$\frac{१०}{१९}$	१६८४२१०५$\frac{५}{१९}$
३	हरि	८४२१$\frac{१}{१९}$	३३६८४२१०$\frac{१०}{१९}$	३	निषध	१६८४२$\frac{२}{१९}$	६७३६८४२१$\frac{१}{१९}$
४	विदेह	३३६८४$\frac{४}{१९}$	१३४७३६८४२$\frac{२}{१९}$	४	नील	१६८४२$\frac{२}{१९}$	६८३६८४२१$\frac{१}{१९}$
५	रम्यक	८४२१$\frac{१}{१९}$	३३६८४२१०$\frac{१०}{१९}$	५	रुक्मी	४२१०$\frac{१०}{१९}$	१६८४२१०५$\frac{५}{१९}$
६	हैरण्यवत	२१०५$\frac{५}{१९}$	८४२१०५२$\frac{१२}{१९}$	६	शिखरिन्	१०५२$\frac{१२}{१९}$	४२१०५२६$\frac{६}{१९}$
७	ऐरावत	५२६$\frac{६}{१९}$	२१०५२६३$\frac{३}{१९}$				

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कुलाचलों के व्यास आदि का वर्णन–

एते कुलाद्रयो रम्याः क्षेत्रैरन्तरिता हि षट्।
पूर्वापराब्धिसंलग्ना वनवेद्याद्यलंकृताः ॥३२॥
मूलोपरिसमव्यासाः शाश्वतास्तुङ्गमूर्तयः।
नानामणिविचित्रोभयपार्श्वाः श्रीजिनैर्मताः ॥३३॥

अर्थ–क्षेत्रों के द्वारा अन्तरित ये रमणीक छह कुलाचल पर्वत पूर्व पश्चिम समुद्र को स्पर्श करने वाले, वनवेदी आदि से अलंकृत, मूल से अग्रभागपर्यन्त सम व्यास वाले, शाश्वत, दीवाल के सदृश ऊँचे और नाना प्रकार की मणियों से खचित दोनों पार्श्वभागों से युक्त हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥३२-३३॥

विशेषार्थ–इन कुलाचलों के दोनों पार्श्वभाग नाना प्रकार की मणियों से खचित हैं और पूर्व-पश्चिम समुद्रों को स्पर्श करने वाले हैं। इनमें जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलों के दोनों पार्श्वभाग लवण समुद्र को स्पर्श करते हैं। धातकीखण्डस्थ कुलाचल लवणोदधि और कालोदधि को स्पर्श करते हैं तथा पुष्करार्धद्वीपस्थ कुलाचल कालोदधि और मानुषोत्तर पर्वत को स्पर्श करते हैं।

कुलाचलों की ऊँचाई का वर्णन–

शतैक योजनोतुङ्गो हिमवान् द्विशतप्रमैः।
महाद्रिहिमवांस्तुङ्गो योजनैश्चचतुःशतैः ॥३४॥
निषधस्तत्समो नीलो रुक्मी शतद्वयोन्नतः।
योजनानां शतोच्छ्रायः शिखरीति जिनोदितः ॥३५॥

अर्थ–हिमवान् पर्वत की ऊँचाई १०० योजन (४००००० मील), महाहिमवान् की २०० योजन (८००००० मील), निषध पर्वत की ४०० योजन (१६००००० मील) नील पर्वत की ४०० योजन, रुक्मी की २०० योजन और शिखरिन् पर्वत की ऊँचाई १०० योजन प्रमाण है ॥३४-३५॥

अब जीवा, धनुपृष्ठ, चूलिका और पार्श्वभुजा के लक्षण कहते हैं–

नवत्यग्रशतांशेन वृत्तद्वीपस्य विस्तृतिः।
वाणस्तद् द्विगुणाः शेषास्तेषां जीवा धनुः प्रथम् ॥३६॥
पूर्वापराब्धिपर्यन्तं दक्षिणोत्तरभागयोः।
क्षेत्राद्रीणां य आयामः सा जीवा कथ्यते बुधैः ॥३७॥
यच्चापाकारवर्षाद्रीणां पृष्ठभागमञ्जसा।
पृष्ठं शरासनस्येव तद् धनुः पृष्ठमुच्यते ॥३८॥
लघ्व्या गुर्व्याश्च जीवा या आयामस्य यदन्तरम्।
वर्षाद्रीणां च तस्यार्धं यत् सोक्ता चूलिकागमे ॥३९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

लघुज्येष्ठधनुः पृष्ठयोर्दीर्घस्य यदन्तरम्।
क्षेत्राद्रीणां च तस्यार्धं यत् सा पार्श्वभुजा मता ॥४०॥

अर्थ—गोलाकार जम्बूद्वीप के विस्तार (१ ला. योजन) का एक सौ नब्बे वाँ भाग भरतक्षेत्र का वाण है। उससे आगे के पर्वतों तथा क्षेत्रों का वाण उससे दुगुना-दुगुना होता गया है। उनके जीवा एवं धनुपृष्ठ पृथक्-पृथक् हैं। क्षेत्र या पर्वत के दक्षिण की ओर या उत्तर की ओर जो समुद्र पर्यन्त क्षेत्र या पर्वत की पूर्व-पश्चिम लम्बाई है, वह दक्षिण जीवा व उत्तर जीवा है, ऐसा ज्ञानियों ने कहा है। क्षेत्र या पर्वत का जो चाप के आकार पृष्ठभाग है, तथा जो पृष्ठ तीर के आसन के समान है, वह धनुः पृष्ठ कहलाता है। क्षेत्र व पर्वतों की लघु जीवा की लम्बाई और गुरु (बड़ी) जीवा की लम्बाई का जो अन्तर है, उसका आधा चूलिका है। क्षेत्र एवं पर्वतों के छोटे धनुपृष्ठ व बड़े धनुपृष्ठ का जो अन्तर है, उसका अर्धप्रमाण पार्श्व भुजा कहलाती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३६-४०॥

अमीषां विस्तरव्याख्यानमुच्यते-विजयार्धस्याभ्यन्तरबाणः योजनानां अष्टत्रिंशदधिकशतद्वयं तिस्रः कलाः। विजयार्धस्य बाह्योबाणः अष्टाशीत्यधिकशतद्वयं कलास्तिस्रश्च। समस्तभारतस्य बाणः षड्विंशत्यधिकपञ्चशतानिषट्कलाश्च। हिमवतोबाणः योजनानां अष्टसप्तत्यधिकपञ्चदशशतानि कला अष्टादश। हैमवतक्षेत्रस्य बाणः त्रिसहस्रषट्शतचतुरशीति योजनानि कलाश्चतस्रः। महाहिमवतीबाणः सप्तसहस्राष्टशत-चतुर्नवति योजनानि कलाश्चतुर्दश। हरिवर्षस्य बाणः षोडश सहस्रत्रिशतपञ्चदश योजनानि कलाः पञ्चदश। निषधपर्वतस्य बाणः त्रयस्त्रिंशत्सहस्रैकशत-सप्तपञ्चाशद्योजनानि कलाः सप्तदश। विदेहस्य मध्यस्थबाणः योजनानां पञ्चशत्सहस्राणि।

इति यथा दक्षिणदिग्भागे क्षेत्रकुलाद्रीणां बाणो व्याख्यातः, तथोत्तरदिग्भागेऽपि ज्ञातव्यः।

बाण, जीवा, धनुः और चूलिका आदि का सविस्तार वर्णन करते हुए सर्वप्रथम बाण का प्रमाण कहते हैं-

विजयार्ध पर्वत के अभ्यन्तर बाण का प्रमाण २३८ $\frac{३}{१९}$ योजन है।
विजयार्ध पर्वत के बाह्य बाण का प्रमाण २८८ $\frac{३}{१९}$ योजन है।
सम्पूर्ण भरतक्षेत्र के बाह्य बाण का प्रमाण ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है।
हिमवन् पर्वत के बाह्य बाण का प्रमाण १५७८ $\frac{१८}{१९}$ योजन है।
हैमवत क्षेत्र के बाह्य बाण का प्रमाण ३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन है।
महाहिमवन् पर्वत के बाह्य बाण का प्रमाण ७८९४ $\frac{१४}{१९}$ योजन है।
हरिवर्ष क्षेत्र के बाह्य बाण का प्रमाण १६३१५ $\frac{१५}{१९}$ योजन है।
निषध पर्वत के बाह्य बाण का प्रमाण ३३१५७ $\frac{१७}{१९}$ योजन है।
विदेहक्षेत्र के मध्य के बाह्य बाण का प्रमाण ५०००० योजन है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जैसे जम्बूद्वीप के दक्षिणभागस्थ क्षेत्र और कुलाचलों के बाण का प्रमाण कहा है, उसी प्रकार उत्तर भाग में स्थित ऐरावत आदि क्षेत्र एवं नील आदि पर्वतों के बाण का प्रमाण भी जानना चाहिए।

भरतैरावतविजयार्धयोरभ्यन्तरजीवा नवसहस्र-सप्तशताष्टचत्वारिंशद्योजनानि, सविशेषाद्वादश-कलाः। बाह्यजीवादशसहस्रसप्तशत विंशति योजनानि किञ्चिदूनाद्वादशकलाः। चूलिका षडशीत्यधिक चतुःशतयोजनानि।

लघुधनुः पृष्ठं नवसहस्र-सप्तशत-षट्षष्टियोजनानि साधिक कलैका। बृहद्धनुःपृष्ठं दशसहस्र-सप्तशत-त्रिचत्वारिंशद्योजनानि। योजनैकोनविंशतिकृतभागानां साधिकाः पञ्चदशभागाः। पार्श्वभुजाः चतुःशताष्टाशीतियोजनानि सार्धषोडशकलाश्च। हिमवतो दक्षिणदिशिलघुजीवाश्चतुर्दशसहस्रचतुःशतैक-सप्ततियोजनानि कलाः पञ्च। उत्तरभागे बृहज्जीवा चतुर्विंशतिसहस्र-नवशत-द्वात्रिंशद्योजनानि। चूलिका च पञ्चसहस्र-द्विशतत्रिंशद्योजनानि कलाः सप्त। कनिष्ठधनुः पृष्ठं चतुर्दश सहस्रपंचशताष्टाविंशति योजनानि, कला एकादश। ज्येष्ठधनुः पृष्ठं पञ्चविंशतिसहस्रद्विशत-त्रिंशत्योजनानि चतस्रः कलाः। पार्श्वभुजा पञ्चसहस्र-त्रिंशतपञ्चाशद्योजनानि सार्ध पञ्चदशकलाः। हिमवतो दक्षिणभागे यौ जीवाधनुः पृष्ठौ व्याख्यातौ तावेवोत्तरे भरतक्षेत्रस्य विज्ञेयौ। यथा भरतहिमवतो जीवाधनुः पृष्ठ-चूलिकापार्श्वेभुजा निर्दिष्टाः तथाऽन्यस्मिन् भागे ऐरावतशिखरिणोर्ज्ञातव्या।

महाहिमवतः कनिष्ठपार्श्वे पूर्वापरायामः सप्तत्रिंशत्सहस्र-षट्शत- चतुःसप्तति योजनानि कलाः। षोडश। ज्येष्ठपार्श्वेचायामः त्रिपञ्चाशत्सहस्रनवशतैकत्रिंशद्योजनानि कलाः षट्। चूलिका अष्टसहस्रैक-शताष्टाविंशतियोजनानि भागाः सार्धचत्वारः। महाहिमवतो लघुधनुः पृष्ठं योजनानामष्टत्रिंशत्सहस्र-सप्तशतचत्वारिंशत् कला दश। बृहद्धनुः पृष्ठं सप्तपञ्चाशत्सहस्र-द्विशत-त्रिनवति योजनानि कला दश। पार्श्वेभुजा नवसहस्र-द्विशत-षट्सप्ततियोजनानि कलाः सार्धं नव। महाहिमवतो लघुजीवाधनुः पृष्ठौ यौ प्रोक्तौ तावेव हैमवतस्य ज्येष्ठौ मन्तव्यौ यथा हैमवतक्षेत्रमहाहिमवतोः जीवाचूलिकाधनुः पृष्ठपार्श्वभुजा उक्ताः तथा हिरण्यवतरुक्मिणोरपि विज्ञेयाः।

निषधपर्वतस्य जघन्यायामो योजनानां त्रिसप्तसहस्र-नवशतेकोत्तराणि योजनस्यैकोनविंशतिभागानां सप्तदश भागाः। उत्कृष्टायामः चतुर्नवतिसहस्रैकशतषट्पञ्चाशद्योजनानि द्वे कले। चूलिका च दशसहस्रैकशत-सप्तविंशति योजनानि भागौ द्वौ। कनिष्ठधनुःपृष्ठं योजनानि षोडशाधिक-चतुरशीतिसहस्राणि कलाश्चतस्रः। ज्येष्ठधनुःपृष्ठं एकलक्ष-चतुर्विंशतिसहस्र-त्रिंशत-षट्चत्वारिंशत् नवकलाः। पार्श्वभुजा विंशतिसहस्रैकशत-पञ्चषष्टिः सार्धे द्वे कले च। निषधाद्रेर्यौजघन्यायाम धनुः पृष्ठौ कथितौ तावेव हरिवर्षस्योत्कृष्टौ भवतः। हरिनिषधयोरायाम चूलिकाधनुः पृष्ठपार्श्वभुजा ये वर्णिताः ते सर्वेरम्यकनीलयार्भवन्ति। विदेहस्य मध्यजीवा योजनानां लक्षैकं स्यात् धनुः पृष्ठं एकलक्षाष्टपञ्चाशत्सहस्रैकशतत्रयोदशयोजनानि कलाः षोडश।❋ विदेहस्य[१] अर्धचूलिका

१. ❋ तारका मध्यगताः पङ्क्तय अ प्रतौ न सन्ति।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एकोनत्रिंशत्शतानि एकविंशत्यधिकानि अष्टादश कलाः। पार्श्वभुजा षोडशसहस्र-अष्टशतत्रयशीतिः कला, अष्टाविंशतिः कला इति हरिवंशोक्तिः।

सम्पूर्ण क्षेत्र एवं कुलाचलों की जीवा, चूलिका, धनुष और पार्श्वभुजा का वर्णन—

भरतक्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र के दो विजयार्धों की अभ्यन्तर जीवा का प्रमाण ९७४८ $\frac{१२}{१९}$ योजन (१२ कला से कुछ अधिक) है। बाह्य जीवा अर्थात् विजयार्ध की बाह्य जीवा का प्रमाण १०७२० $\frac{११}{१९}$ योजन (१२ कला में कुछ कम) है। इसी विजयार्ध की चूलिका ४८६ योजन है। इसी का लघुधनुपृष्ठ ९७६६ योजन है। विजयार्ध का बृहद् धनुःपृष्ठ १०७४३ $\frac{१५}{१९}$ योजन और पार्श्वभुजा ४८८१ $\frac{६\frac{१}{२}}{१९}$ योजन है। हिमवन् पर्वत की दक्षिण दिशा वाली लघुजीवा अर्थात् भरत की उत्तर जीवा का प्रमाण १४४७१ $\frac{५}{१९}$ योजन है। इसी हिमवन् के उत्तर भाग में बृहद् जीवा अर्थात् हैमवत क्षेत्र की दक्षिण जीवा का प्रमाण २४९३२ योजन है। हिमवन् पर्वत की चूलिका ५२३० $\frac{७}{१९}$ योजन प्रमाण है। इसी पर्वत का लघुधनुपृष्ठ अर्थात् भारत का उत्तर धनुपृष्ठ १४५२८ $\frac{११}{१९}$ योजन और ज्येष्ठ धनुःपृष्ठ अर्थात् हैमवत क्षेत्र का लघुधनुः पृष्ठ २५२३०$\frac{१}{१९}$ योजन है। हिमवन् पर्वत की पार्श्वभुजा ५३५०$\frac{१५\frac{१}{२}}{१९}$ योजन प्रमाण है।

हिमवन् पर्वत के दक्षिण भाग में जो जीवा और धनुपृष्ठ का प्रमाण कहा है वही प्रमाण भरत क्षेत्र के उत्तर का जानना चाहिए।

जिस प्रकार भरत क्षेत्र और हिमवान् पर्वत की जीवा, धनुपृष्ठ, चूलिका और पार्श्व भुजा के प्रमाण का व्याख्यान किया है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप के उत्तर भाग में ऐरावत क्षेत्र और शिखरिन् पर्वत का जानना चाहिए।

महाहिमवन् पर्वत से कनिष्ठ (छोटे) पार्श्वभाग का पूर्व पश्चिम आयाम अर्थात् हैमवत क्षेत्र की उत्तरी जीवा का प्रमाण ३७६७४ $\frac{६}{१९}$ योजन है, और ज्येष्ठ (बड़े)पार्श्वभाग का आयाम अर्थात् महाहिमवन् पर्वत की ज्येष्ठ जीवा अर्थात् हरिक्षेत्र की दक्षिण जीवा का प्रमाण ५३९३१ $\frac{६}{१९}$ योजन है। इसकी चूलिका का प्रमाण ८१२८ $\frac{४\frac{१}{२}}{१९}$ योजन है। महाहिमवन् के लघुधनुःपृष्ठ अर्थात् हैमवत क्षेत्र के ज्येष्ठ धनुष का प्रमाण ३८७४० $\frac{१०}{१९}$ योजन, इसके बृहद् धनुपृष्ठ अर्थात् महाहिमवन् पर्वत के बृहद् धनुष का अर्थात् हरिक्षेत्र के लघु धनुपृष्ठ का प्रमाण ५७२९३ $\frac{१०}{१९}$ योजन और इसी पर्वत की पार्श्व भुजा का प्रमाण ९२७६ $\frac{१}{२}$ योजन है।

महाहिमवन् पर्वत की लघु जीवा और लघुधनुः पृष्ठ का जो प्रमाण कहा गया है वही प्रमाण हैमवत क्षेत्र की उत्तरी जीवा एवं धनुष का जानना चाहिए। [हैमवत क्षेत्र की चूलिका ६३७१ $\frac{८}{१९}$ योजन तथा पार्श्व भुजा का प्रमाण ६७५५ $\frac{३}{१९}$ योजन है]

जिस प्रकार हैमवत क्षेत्र और महाहिमवन् पर्वत की जीवा, चूलिका धनुष और पार्श्वभुजा के प्रमाण का कथन किया है। हैरण्यवत क्षेत्र और रुक्मी पर्वत के जीवा धनुष आदि का प्रमाण भी उसी प्रकार जानना चाहिए।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निषधपर्वत का जघन्य आयाम अर्थात् हरिक्षेत्र की उत्तरी जीवा का प्रमाण ७३९०१$\frac{१७}{१९}$ योजन है। इसी पर्वत का उत्कृष्ट आयाम अर्थात् जीवा का अथवा विदेह क्षेत्र की दक्षिण जीवा का प्रमाण ९४१५६ $\frac{२}{१९}$योजन और चूलिका का प्रमाण १०१२७ $\frac{२}{१९}$योजन है। निषध के कनिष्ठ धनुः पृष्ठ अर्थात् हरिक्षेत्र के ज्येष्ठ धनुष का प्रमाण ८४०१६ $\frac{४}{१९}$ योजन और ज्येष्ठ धनुः पृष्ठ अर्थात् निषध के धनुष का प्रमाण १२४३४६ $\frac{९}{१९}$ योजन है तथा निषध की पार्श्वभुजा का प्रमाण २०१६५ $\frac{५}{३८}$ योजन है।

निषध पर्वत का जो जघन्य आयाम एवं लघुधनुः पृष्ठ के प्रमाण का कथन किया है वही हरिक्षेत्र की उत्तरी जीवा एवं ज्येष्ठ धनुष का प्रमाण होता है।

हरिक्षेत्र और निषध पर्वत के आयाम, चूलिका, धनुष और पार्श्वभाग आदि के प्रमाण का जो निदर्शन किया है वही प्रमाण रम्यकक्षेत्र और नील पर्वत की जीवा आदि का जानना चाहिए।

विदेह की मध्य जीवा का प्रमाण एक लाख योजन, धनुः पृष्ठ का प्रमाण १५८११३ $\frac{१६}{१९}$ योजन है। विदेह की अर्धचूलिका का प्रमाण २९२१ $\frac{१८}{१९}$ योजन और पार्श्वभुजा का प्रमाण १६८८३ $\frac{२८}{३८}$ योजन है। (यह सब वर्णन हरिवंश पुराण के अनुसार किया है)

दक्षिण भरत से उत्तर ऐरावत क्षेत्र पर्यन्त सम्पूर्ण क्षेत्र एवं कुलाचलों का व्यास, बाण, जीवा, चूलिका, धनुष और पार्श्वभुजा का एकत्रित प्रमाण (योजनों में) निम्नप्रकार है–

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

कुलाचलों के गाध (नीव) का एवं उनके ऊपर स्थित कूटों का प्रमाण–

एकादशमहाकूटैः शिखरेऽलंकृतो महान्।
हिमवान् राजतेऽगाधः पञ्चविंशतियोजनैः ॥४१॥
अष्टकूटैर्युतो मूर्ध्नि पञ्चाशद्योजनैर्वरः।
भूमध्ये भाति तेजोभिर्महादि हिमवान् गिरिः ॥४२॥
नवकूटाङ्कितो मूर्ध्नि शतयोजनकन्दयुक्।
निषधश्च तथा नीलः कन्दकूटैर्हि तत्समः ॥४३॥
पञ्चाशद्योजनागाधो रुक्मी कूटाष्टभूषितः।
शिखरीकन्दुकूटाभ्यां भवेद् हिमवता समः ॥४४॥

अर्थ–हिमवान् पर्वत की गाध (नींव) २५ योजन प्रमाण है और इसका शिखर ग्यारह महाकूटों द्वारा अलंकृत है। महाहिमवान् पर्वत की नींव ५० योजन प्रमाण है और इसका ऊर्ध्वभाग (शिखर) देदीप्यमान आठ कूटों से शोभायमान है। निषध और नील पर्वतों की नींव समान अर्थात् सौ सौ (१००) योजन प्रमाण है और इनके अग्रभाग भी ९-९ महाकूटों से अलंकृत हैं। रुक्मी कुलाचल की नींव ५० योजन है और उसका शिखर आठ कूटों से सुशोभित है। इसी प्रकार शिखरिन् कुलाचल की नींव २५ योजन प्रमाण है, और उसका ऊर्ध्वभाग ११ महाकूटों से अलंकृत है ॥४१-४४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

क्र.	नाम	व्यास	बाण	जीवा	चूलिका	धनुष	पार्श्वभुजा
१	दक्षिण भरत	२३८ ३/१९	२३८ ३/१९	९७४८ १२/१९	×	९७६६ १/१९	×
२	विजयार्ध	५० योजन	२८८ ३/१९	१०७२० ११/१९	४८५ ३७/३८	१०७४३ १५/१९	४८८ ३३/३८
३	उत्तर भरत	२३८ ३/१९	५२६ ६/१९	१४४७१ ६/१९	१८७५ १३/३८	१४५२८ ११/१९	१८९२ १५/३८
४	हिमवान् पर्वत	१०५२ १२/१९	१५७८ १८/१९	२४९३२ १/१९	५२३० १५/३८	२५२३० ४/१९	५३५० ३१/३८
५	हैमवत	२१०५ ५/१९	३६८४ ४/१९	३७६७४ १६/१९	६३७१ १५/३८	३८७४० १०/१९	६७५५ ३/१९
६	महा हि.	४२१० १०/१९	७८९४ १४/१९	५३९३१ ६/१९	८१२८ ९/३८	५७२९३ १०/१९	९२७६ १/२
७	हरिक्षेत्र	८४२१ १/१९	१६३१५ १५/१९	७३९०१ १७/१९	९९८५ ११/३८	८४०१६ ४/१९	१३३६१ १३/३८
८	निषध	१६८४२ २/१९	३३१५७ १७/१९	९४१५६ २/१९	१०१२७ २/१९	१२४३४६ १/१९	२०१६५ ५/३८
९	दक्षिण विदेह	१६८४२ २/१९	५००००	१०००००	२९२१ १८/१९	१५८११४	१६८८३ २७/३८
१०	उत्तर वि.	१६८४२ २/१९	५००००	१०००००	२९२१ १८/१९	१५८११४	१६८८३ २७/३८
११	नील	१६८४२ २/१९	३३१५७ १७/१९	९४१५६ २/१९	१०१२७ २/१९	१२४३४६ १/१९	२०१६५ ५/३८
१२	रम्यक	८४२१ १/१९	१६३१५ १५/१९	७३९०१ १७/१९	९९८५ ११/३८	८४०१६ ४/१९	१३३६१ १३/३८
१३	रुक्मी	४२१० १०/१९	७८९४ १४/१९	५३९३१ ६/१९	८१२८ ९/३८	५७२९३ १०/१९	९२७६ १/२
१४	हैरण्यवत	२१०५ ५/१९	३६८४ ४/१९	३७६७४ १६/१९	६३७१ १५/३८	३८७४० १०/१९	६७५५ ३/१९
१५	शिखरिन्	१०५२ १२/१९	१५७८ १८/१९	२४९३२ १/१९	५२३० १५/३८	२५२३० ४/१९	५३५० ३१/३८
१६	द. ऐरावत	२३८ ३/१९	५२६ ६/१९	१४४७१ ५/१९	१८७५ १३/३८	१४५२८ ११/१९	१८९२ १५/३८
१७	विजयार्ध	५० योजन	२८८ ३/१९	१०७२० ११/१९	४८५ ३७/३८	१०७४३ १५/१९	४८८ ३३/३८
१८	उ. ऐरावत	२३८ ३/१९	२३८ ३/१९	९७४८ १२/१९	×	९७६६ १/१९	×

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

छह कुलाचलस्थ ५६ महाकूटों के नाम और स्वामी—

सिद्धायतननामाढ्यं हिमवत्कूटमूर्जितम्।
अपरं भरताभिख्यमिलाकूटं चतुर्थकम् ॥४५॥
गङ्गाकूटं श्रियःकूटं रोहितासिन्धुसंज्ञके।
सुराहैमवते कूटे कूटं वैश्रवणान्तिमम् ॥४६॥
इत्येकादशकूटानि मूर्ध्नि स्यु हिमवद्गिरेः।
सिद्धायतन कूटाख्यं महाहिमवताह्वयम् ॥४७॥
कूटं हैमवतं रोहित्कूटंह्रीकूटनामकं।
कूटं च हरिकान्ताख्यं हरिवर्षाभिधं ततः ॥४८॥
वैडूर्यमष्टकूटानीति स्युर्महाहिमाचले।
सिद्धाख्यं निषधाभिख्यं हरिकूटं विदेहकम् ॥४०॥
ह्रीकूटं धृतिकूटाख्यं सीतोदाकूटसंज्ञकं।
विदेहं भुजगाख्यं स्युः कूटानि निषधे नव ॥५०॥
सिद्धं नीलाह्वयं कूटं विदेह कूटनामकं।
सीताख्यं कीर्तिकूटं च नरकान्तासमाह्वयम् ॥५१॥
ततोऽपरविदेहाख्यं कूटरम्यक संज्ञकं।
आदर्शकमिमानि स्यु नीले कूटानि वै नव ॥५२॥
सिद्धाख्यं रुक्मि कूटं च कूटं रम्यकनामकं।
नारीकूटं हि बुध्याख्यं रूप्यकूलाभिधं ततः ॥५३॥
हैरण्यवतकूटाख्यं माणिभद्रसमाह्वयं।
स्युरेतान्यष्टकूटानि रुक्मिणः शिखरे वरे ॥५४॥
सिद्धं शिखरि कूटाख्यं हैरण्यवतसंज्ञकं।
सुरदेवाख्यकं कूटं ततो रक्ताभिधानकम् ॥५५॥
लक्ष्मीकूटं सुवर्णाख्यं रक्तवत्याख्यकं ततः।
कूटं गन्धवती संज्ञं कूटमैरावताभिधम् ॥५६॥
मणिकाञ्चनकूटं स्युरिमान्येकादश स्फुटं।
कूटानिशिखरे रम्याण्यद्रेः शिखरिणः क्रमात् ॥५७॥
सिद्धायतनकूटेषु सर्वेषु श्री जिनालयाः[१]।
खगेशदेववन्द्यार्च्या राजन्ते रत्नरश्मिभिः ॥५८॥

१. अत्र विशेषाः ये शाश्वता जिनालया वर्तन्ते। अथवा विमानेषु ये देवप्रासादा वर्तन्ते ते सर्वेपि यद्यपि अकृत्रिमा वर्तन्ते तथापि तेषां मानं मानवयोजन क्रोशादि कृतं ज्ञातव्यं। अन्यानि शाश्वतानि प्रमाणयोजनादिभिर्ज्ञातव्यानि इति।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—१. सिद्धायतन, २. हिमवत् कूट, ३. भरत, ४. इला, ५. गंगाकूट, ६. श्रीकूट, ७. रोहितास्या, ८. सिन्धु, ९. सुराकूट, १०. हैमवत और ११. वैश्रवण; ये ११ कूट हिमवान् कुलाचल के शिखर पर क्रम से स्थित हैं।

१. सिद्धायतन कूट, २. महाहिमवन्, ३. हैमवत, ४. रोहिता, ५. ह्री कूट, ६. हरिकान्ता, ७. हरिवर्ष और ८. वैडूर्य नाम के ये ८. कूट महाहिमवन् पर्वत के शिखर पर हैं। १. सिद्ध कूट, २. निषध, ३. हरि (वर्ष) कूट, ४. (पूर्व) विदेह कूट, ५. ह्री (हरि) कूट, ६. धृति कूट, ७. सीतोदा, ८. (अपर) विदेह कूट और ९. भुजग नामक कूट हैं। ये ९ ही कूट क्रमशः निषध कुलाचल के ऊपर हैं ॥४५-५०॥

१. सिद्धकूट, २. नील कूट, ३. (पूर्व) विदेह, ४. सीता कूट, ५. कीर्ति कूट, ६. नरकान्ता, ७. (अपर) विदेह, ८. रम्यक और ९. आदर्शक नाम के ये ९. कूट नील कुलाचल के अग्रभाग पर स्थित हैं ॥५१-५२॥

१. सिद्ध कूट, २. रुक्मी, ३. रम्यक, ४. नारी कूट, ५. बुद्धि कूट, ६. रूप्यकूला, ७. हैरण्यवत और ८. माणिभद्र नाम के ये ८ कूट रुक्मी कुलाचल पर स्थित हैं ॥५३-५४॥

१. सिद्ध कूट, २. शिखरी, ३. हैरण्यवत, ४. सुरदेव, ५. रक्ता, ६. लक्ष्मी कूट, ७. सुवर्ण, ८. रक्तवती, ९. गन्धवती, १०. ऐरावत और ११. मणिकाञ्चन नाम के ११ रमणीक कूट क्रमशः शिखरिन् पर्वत के ऊपर स्थित हैं ॥५५-५७॥

सम्पूर्ण सिद्धायतन कूटों के ऊपर खगेन्द्र और देवसमूह से अर्चनीय श्री जिनमन्दिर विद्यमान हैं, जो रत्न किरणों से सुशोभित होते हैं ॥५८॥

नोट—इन उपर्युक्त ५६ कूटों का पारस्परिक अन्तर, प्रत्येक कूट के उत्सेध एवं विस्तार आदि का वर्णन आगे ७३ आदि श्लोकों में किया जायेगा।

अब कूटों के ऊपर स्थित जिनालय आदि का विस्तारादि कहते हैं—

योजनानां च सार्धद्विक्रोशपञ्चदशप्रमैः।
समानायामविस्तारा रत्नस्वर्णमया गृहाः ॥५९॥
तुङ्गाः क्रोशाधिकैक त्रिंशद्योजनैर्मनोहराः।
कूटानां शिखरेषु स्युः क्रोशागाधाः स्फुरद्रुचः ॥६०॥

अर्थ—कुलाचलस्थ कूटों के शिखरों पर पन्द्रह योजन अढ़ाई कोस लम्बे, १५ योजन २ $\frac{१}{२}$ कोस चौड़े इकतीस (३१) योजन एक कोस ऊँचे और एक कोस गाध (नींव) से युक्त, फैल रहीं हैं किरणें जिनमें से ऐसे रत्न और स्वर्णमय मनोहर गृह (भवन) बने हैं ॥५९-६०॥

विशेषार्थ—टिप्पणकार ने यहाँ एक विशेष बात दर्शायी है कि कूटों के ऊपर स्थित ये जिनालय एवं देवप्रासाद यद्यपि अकृत्रिम हैं तथापि इनका माप मानव योजन (लघु योजन और क्रोश आदि से ही किया गया है, ऐसा जानना चाहिए। अन्य और जो शाश्वत वस्तुएँ हैं उनका माप अलौकिक प्रमाण

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

से है।

अब भवनस्थ तोरणद्वारों का विस्तार आदि कहते हैं–

योजनाष्टसमुत्तुङ्गश्चतुर्योजन विस्तृताः।
गृहेषु तोरणद्वारा राजन्ते मणितेजसा ॥६१॥

अर्थ–उन भवनों में मणियों की दीप्ति से शोभायमान आठ योजन ऊँचे और चार योजन विस्तार वाले तोरणद्वार हैं ॥६१॥

कूटस्थ भवनों में निवास करने वालों का दिग्दर्शन कराते हैं–

शैलेषु यानि कूटानि नदीनामयुतान्यपि।
देव्यो गङ्गादयस्तेषां वसन्ति मणिसद्मसु ॥६२॥
शेषकूटेषु रम्येषु यानि नामानि धामसु।
तैर्नामभिर्युताः पुण्याद् वसन्ति व्यन्तरामराः ॥६३॥

अर्थ–६ कुलाचलों पर जैसे ये ५६ कूट हैं वैसे नदियों (की वेदियों) पर भी कूट हैं। इन कूटों में से [स्त्रीलिंग (इला, गंगा, रोहितास्या सुरा आदि) नामधारी] कुछ कूटों पर स्थित मणिमय गृहों में व्यन्तर देवांगनाएँ निवास करती हैं। अवशेष कूटस्थ रमणीक भवनों में पूर्व पुण्य वशात् अपने-अपने कूटनामधारी व्यन्तर देव निवास करते हैं ॥६२-६३॥

कुलाचलों के पार्श्वभागों में वनखण्डों की स्थिति एवं प्रमाण–

अद्र्यायामसमायामे क्रोशद्वयसुविस्तृते।
भवतो द्वे वने रम्ये शैलानामुभयोर्दिशोः ॥६४॥

अर्थ–कुलाचलों के दोनों पार्श्वभागों में पर्वतों की लम्बाई बराबर लम्बे और दो कोस चौड़े अत्यन्त रमणीक दो-दो वन हैं ॥६४॥

वन वेदियों की स्थिति एवं उनके प्रमाण आदि का कथन करते हैं–

वनपर्यन्त - भागेषु सर्वतो वनवेदिका।
हेमरत्नमया रम्याकृत्रिमास्ति मनोहरा ॥६५॥
क्रोशद्वयसमुत्सेधा क्रोशस्य पादविस्तृता।
चतुर्दिक्षु महादीप्ता द्वारतोरणभूषिता ॥६६॥

अर्थ–वन को सब ओर से वेष्टित किये हुए, स्वर्ण एवं रत्नमय, अत्यन्त रमणीक, मन को हरण करने वाली और अकृत्रिम वेदियाँ हैं। जो दो कोस ऊँची, पाव कोस चौड़ी और चारों दिशाओं में महादेदीप्यमान तोरण द्वारों से विभूषित हैं ॥६५-६६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पद्मवेदिका एवं देवों के प्रासादों का वर्णन करते हैं–

पर्वतोपरि सर्वत्र विज्ञेया पद्मवेदिका।
नानारत्नमया दिव्या चतुर्गोपुर शोभिता ॥६७॥
सप्ताष्टदशभूम्याद्यनेक भूमण्डितोन्नतैः।
नानारत्नमयैर्दीव्यैः सहस्त्रस्तम्भ शोभितैः ॥६८॥
चतुरस्त्राद्यनेकाकार संस्थानैर्मनोहरैः।
प्रासादैर्भूषितान्युच्चैर्जिनसिद्धालयोर्जितैः ॥६९॥
वनोपवनवापीभिः प्राकारगोपुरादिभिः।
अलङ्कृतानि देवानां पुराणि सन्त्यनेकशः ॥७०॥
गिरिकूटेषु सर्वेषु तथाद्रि शिखरेषु च।
शैलपार्श्व वनेषूच्चै र्भासमानानि सर्वदा ॥७१॥

अर्थ–पर्वतों के ऊपर अनेक प्रकार के रत्नमय, दिव्य और चार गोपुर द्वारों से युक्त, पद्म वेदिकाएँ स्थित हैं। श्लोक ७० में कहे गये वे नगर नाना प्रकार के रत्नमय, दिव्य, हजार खम्भों से सुशोभित, कोई सात, कोई आठ, कोई दस और कोई अनेक भूमियों अर्थात् तल या खण्डों से भूषित, उन्नत, मनोहर, जिन भवनों एवं सिद्धभवनों के समूह से युक्त, चतुष्कोण और कोई अनेक आकारों से परिणत ऐसे अनुपम प्रासादों अर्थात् भवनवासी देवों के भवनों से अत्यन्त शोभायमान हैं ॥६७-६९॥

सम्पूर्ण पर्वतों के कूटों पर, पर्वत शिखरों पर तथा पर्वतों के पार्श्वभागों में स्थित वनों में भी देवों के वनों, उपवनों, वापियों, आकारों (कोट) एवं गोपुर द्वारों से अलंकृत अत्यन्त प्रकाशमान अनेक नगर हैं ॥७०-७१॥

अब कूटों का पारस्परिक अन्तर कहते हैं–

कूटव्यासोनितं दैर्घ्यं निजाद्रेः कूटसंख्यया।
विभक्तमन्तरं ज्ञेयं कूटानां श्रीजिनागमे ॥७२॥

अर्थ–अपनी-अपनी लम्बाई में से कूटों के व्यासों को घटाकर शेष को कूट संख्या से विभाजित करने पर कूटों का अन्तर प्राप्त होता है, ऐसा जिनागम में कहा गया है ॥७२॥

अब कूटों के विस्तार आदि का वर्णन करते हैं–

पर्वतस्य चतुर्थांशः कूटानामुदयो भवेत्।
तत्समो विस्तरो मूले मूलार्ध शिखरे तथा ॥७३॥
मूलमस्तकयोर्व्यासयोरेकत्री कृतस्य च।
अर्धं मध्येऽस्ति विष्कम्भोऽत्रास्यैव विस्तरं श्रृणु ॥७४॥

अर्थ–सर्व कूटों की ऊँचाई अपने-अपने पर्वतों की ऊँचाई का चतुर्थ भाग है। मूल में अर्थात्

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भू व्यास का प्रमाण भी ऊँचाई के प्रमाण सदृश ही है। शिखर पर अर्थात् मुखव्यास, भूव्यास के अर्ध भाग प्रमाण है और मूल एवं मस्तक (भूव्यास+मुखव्यास) के विस्तार को जोड़ कर आधा करने पर कूट के मध्यभाग के विस्तार का प्रमाण प्राप्त होता है। इसी को विस्तार पूर्वक कहते हैं, सुनो! ॥७३-७४॥

हिमवच्छिखरिणोः कूटानामुत्सेधः पञ्चविंशतियोजनानि। मूले विस्तारः पञ्चविंशतियोजनानि मध्ये च त्रिक्रोशाधिकाष्टादशयोजनानि शिखरे च सार्धद्वादशयोजनानि।

महाहिमवद्रुक्मिणोः कूटानामुदयो योजनानि पञ्चाशत्। मूले व्यासश्च पञ्चाशत्। मध्ये सार्धसप्तत्रिंशद्योजनानि। मस्तके पञ्चविंशतिश्च। निषधनीलयोः कूटानामुन्नतिर्योजनानां शतं स्यात्। मूले विस्तृतिश्च शतं भवेत्। मध्ये च पञ्चसप्ततिः शिखरे पञ्चाशदेव।

अर्थ—हिमवन् और शिखरिन् कुलाचलों पर स्थित कूटों की ऊँचाई २५ योजन मूल का विस्तार २५ योजन, मध्यविस्तार १८ $\frac{३}{४}$ योजन और शिखर पर अर्थात् मुखव्यास १२ $\frac{१}{२}$ योजन प्रमाण है। महाहिमवन् और रुक्मी पर्वतस्थ कूटों की ऊँचाई ५० योजन, मूल में विस्तार ५० योजन, मध्यविस्तार ३७ $\frac{१}{२}$ योजन और शिखर पर २५ योजन विस्तार है। इसी प्रकार निषध और नील पर्वतस्थ कूटों की ऊँचाई १०० योजन, मूल में विस्तार १०० योजन, मध्यविस्तार ७५ योजन और शिखर का विस्तार ५० योजन प्रमाण है।

विशेषार्थ—(श्लोक ७३-७४ से सम्बन्धित) कूटों की ऊँचाई अपने-अपने पर्वतों का चतुर्थांश कहा है। जैसे हिमवन् पर्वत १०० योजन ऊँचा है अतः इसके ऊपर स्थित कूटों की ऊँचाई $(\frac{१००}{४})$=२५ योजन होगी। जमीन पर चौड़ाई २५ योजन, ऊपर की चौड़ाई भूव्यास का अर्धभाग $(\frac{२५}{२})$=१२ $\frac{१}{२}$ योजन होगी और मध्य विस्तार, मूलमस्तक की चौड़ाई के योग का अर्धभाग अर्थात् २५+१२ $\frac{१}{२}$ = ३७ $\frac{१}{२}$ २ = १८ $\frac{३}{४}$ योजन होगा। इसी प्रकार अन्यत्र जानना। यथा-

क्रमांक	कुलाचल	मुख व्यास	मध्य व्यास	भू व्यास	ऊँचाई
१	हिमवन	१२ $\frac{१}{२}$ यो.	१८ $\frac{३}{४}$ यो.	२५ यो.	२५ यो.
२	महाहिमवन	२५ यो.	३७ $\frac{१}{२}$ यो.	५० यो.	५० यो.
३	निषध	५० यो.	७५ यो.	१०० यो.	१०० यो.
४	नील	५० यो.	७५ यो.	१०० यो.	१०० यो.
५	रुक्मी	२५ यो.	३७ $\frac{१}{२}$ यो.	५० यो.	५० यो.
६	शिखरिन्	१२ $\frac{१}{२}$ यो.	१८ $\frac{३}{४}$ यो.	२५ यो.	२५ यो.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब कुलाचलस्थ सरोवरों के नाम एवं उनका विस्तार आदि कहते हैं–

आद्यः पद्मो महापद्मस्तिगिञ्छः केसरी ततः।
महादिपुण्डरीकः पुण्डरीकः षडिमे ह्रदाः ॥७५॥
सहस्त्रयोजनायामौ तदर्धविस्तरान्वितौ।
स्तः पद्मपुण्डरीकौ द्वौ ह्यगाधौ दशयोजनैः ॥७६॥
योजनद्विसहस्त्रायामौ सहस्त्रैक विस्तृतौ।
योजनानां च विंशत्यागाधौ स्यातां ह्रदौ समौ ॥७७॥
महापद्म महापुण्डरीकाख्यकौ ततो परौ।
आयामौ योजनै र्ज्ञेयौ चतुःसहस्त्रसम्मितौ ॥७८॥
द्विसहस्त्रप्रमैर्यासौ चत्वारिंशत्प्रमाणकैः।
अवगाहौ तिगिञ्छाभिधकेसरिसमाह्वयौ ॥७९॥
एते नित्या ह्रदा षट्स्युः पूर्वापरसमायताः।
शैलानां मध्यभागेषु तोयास्वादु जलैर्भृताः ॥८०॥

अर्थ–पूर्व कहे हुए छह कुलाचलों के ऊपर, मध्य भाग में क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के छह सरोवर हैं। इनमें से पद्म और पुण्डरीक ये दो सरोवर १००० योजन लम्बे, ५०० योजन चौड़े और १० योजन गहरे हैं। महापद्म और महापुण्डरीक नाम के सरोवर २००० योजन लम्बे, १००० योजन चौड़े और २० योजन गहरे हैं तथा तिगिञ्छ और केसरी नाम के दो सरोवर ४००० योजन लम्बे, २००० योजन चौड़े और ४० योजन प्रमाण गहरे हैं। इस प्रकार ये छह सरोवर पूर्व-पश्चिम लम्बे, जल के स्वाद के सदृश, जल से भरे हुए और शाश्वत हैं ॥७५-८०॥

विशेषार्थ–कुलाचलों का उदय एवं सरोवरों के व्यास आदि का प्रमाण–

		ऊँचाई			लम्बाई		चौड़ाई		गहराई	
क्र.	कुलाचल	योजन	मीलों में	सरोवर	योजन	मीलों में	योजन	मीलों में	योजन	मीलों में
१	हिमवन	१००	४०००००	पद्म	१०००	४०००००	५००	२०००००	१०	४००००
२	महाहिमवन	२००	८०००००	महापद्म	२०००	८०००००	१०००	४०००००	२०	८००००
३	निषध	४००	१६०००००	तिगिञ्छ	४०००	१६०००००	२०००	८०००००	४०	१६००००
४	नील	४००	१६०००००	केशरी	४०००	१६०००००	२०००	८०००००	४०	१६००००
५	रुक्मी	२००	८०००००	महापुण्डरीक	२०००	८०००००	१०००	४०००००	२०	८००००
६	शिखरिन्	१००	४०००००	पुण्डरीक	१०००	४०००००	५००	२०००००	१०	४००००

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सरोवरों में स्थित कमलों के विस्तार आदि का प्रमाण कहते हैं–

पद्महृदान्तरे नित्योऽम्बुजो योजनविस्तृतः।
क्रोशैककर्णिकायुक्तः प्रफुल्लं स्यात् सुगन्धवान्।८१॥
सार्धक्रोशायतान्याद्ये पद्मे पत्राणि सर्वतः।
एकादशसहस्राणि शाश्वतानि भवन्ति च॥८२॥
सर्वत्र क्रोशबाहुल्यं जलात् क्रोशद्वयोच्छ्रितम्।
अम्बुजेऽम्बुजं नालं स्यात् वैडूर्यरत्नतन्मयम्॥८३॥
ततः पद्मादिविस्तारो द्विगुणद्विगुणो मतः।
वृद्धो ह्रदद्वये ह्रासः क्रमाच्चान्यह्रदत्रिषु॥८४॥

अर्थ–पद्म सरोवर के मध्य में एक योजन विस्तार (चौड़ा) वाला, एक कोस की कणिका से युक्त, नवविकसित सुगन्धवान और शाश्वत कमल है। इस कमल के एक पत्ते की लम्बाई १$\frac{१}{२}$ कोस है, ऐसे इसमें ११००० पत्ते शाश्वत होते हैं। कमल में कमल की नाल नीचे से ऊपर तक एक कोस मोटी है और जल से दो कोस ($\frac{१}{२}$ योजन) ऊपर रहती है तथा वैडूर्य मणियों से निर्मित है। पद्म आदि सरोवरों का विस्तार पूर्व की अपेक्षा दूना-दूना है, अतः कमल आदि का विस्तार आदि भी तीन सरोवरों तक जिस क्रम से वृद्धिङ्गत होगा, आगे के तीन सरोवरों में उसी क्रम से दुगुणी हानि को प्राप्त हीगा॥८१-८४॥

विशेष–(१) पद्मह्रद की गहराई १० योजन (४० कोस) कही है, और यहाँ कमल नाल जल से २ कोस ऊपर है ऐसा कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि कमल नाल की कुल लम्बाई ४२ कोस (१०$\frac{१}{२}$ योजन) है। (२) कमल एवं कमलनाल आदि यद्यपि अकृत्रिम हैं और शाश्वत हैं किन्तु इनका माप मानव योजन (लघु योजन) से ही जानना चाहिए और अन्य शाश्वत पदार्थों का (माप) प्रमाण बड़े योजन से जानना चाहिए।

		कमलों का		नाल		कर्णिका का		कमल पत्र की लम्बाई
क्र.	सरोवरों के कमल	उत्सेध	व्यास	जलमग्न	जल के ऊपर	उत्सेध	व्यास	
१	पद्म द्रह का कमल	१ योजन	१ यो.	१० यो.	$\frac{१}{२}$यो.	१ कोस	१ कोस	१$\frac{१}{२}$ कोस
२	महापद्म द्रह का कमल	२ योजन	२ यो.	२० यो.	१ यो.	२ कोस	२ कोस	३ कोस
३	तिगिञ्छ द्रह का कमल	४ योजन	४ यो.	४० यो.	२ यो.	४ कोस	४ कोस	६ कोस
४	केशरी द्रह का कमल	४ योजन	४ यो.	४० यो.	२ यो.	४ कोस	४ कोस	६ कोस
५	महापुण्डरीक द्रह का कमल	२ योजन	२ यो.	२० यो.	१ यो.	२ कोस	२ कोस	३ कोस
६	पुण्डरीक द्रह का कमल	१ योजन	१ यो.	१० यो.	$\frac{१}{२}$यो.	१ कोस	१ कोस	१$\frac{१}{२}$ कोस

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तदेवाह–पद्महृदे कमलस्य व्यासः एकयोजनं, कर्णिका व्यासः एकः क्रोशः पत्रदीर्घता सार्धक्रोशः। महापद्म कमलस्य विस्तृति–र्द्वे योजने कर्णिका विस्तारः द्वौ क्रौशौ पत्रायामस्त्रयः क्रोशाः। तिगिञ्छे केसरिणि च पद्मस्य व्यासः चत्वारियोजनानि कर्णिका व्यासः योजनैकं स्यात्। पत्रायामः सार्द्ध योजनं च। महापुण्डरीकेऽम्बुजस्य विस्तारः द्वे योजने कर्णिकाविस्तारः द्वौ क्रोशौ पत्रायामस्त्रयः क्रोशाः। पुण्डरीके पद्मस्य विष्कम्भः योजनैकं स्यात्। कर्णिकाविष्कम्भः एकक्रोशः पत्रायामः सार्धक्रोशः।

विशेषार्थ—श्लोक नं. ८१ से ८४ तक का विशेषार्थ और उपर्युक्त गद्यभाग का सर्व अर्थ निम्नांकित तालिका में गर्भित है।

कमल, कमल नाल, कमल कर्णिका का उत्सेधादि एवं कमल पत्र की लम्बाई–

श्री आदि देवियों के भवनों का प्रमाण कहते हैं–

आद्याब्जकर्णिकायां स्याद् वैडूर्यरत्नभास्वरम्।
श्रीगृहं सन्मणिद्वारतोरणादिविभूषितम् ॥८५॥
मुक्तालम्बूषभूषाढ्यं क्रोशायाममनोहरं।
क्रोशार्धविस्तरं पादोनं क्रोशेकोन्नतं शुभम् ॥८६॥
ततोऽम्बुजद्वये सन्ति द्विगुणद्विगुणाः क्रमात्।
गेहव्यासादयोऽन्येषु त्रिषु पद्मेषु हानितः ॥८७॥

अर्थ—प्रथम सरोवर की पद्मकर्णिका पर वैडूर्य मणियों की दीप्ति से दीप्तमान, उत्तम मणियों के तोरणद्वार आदि से विभूषित, लटकती हुई मुक्ता मालाओं (मोतियों के फानूसों) से अलंकृत और मन को हरण करने वाला एक कोश लम्बा, आधा कोस चौड़ा एवं पौन कोस ऊँचा श्री देवी का भवन है। इसके आगे दो कमलों पर क्रम से दुगुने–दुगुने विस्तार वाले और उससे आगे तीन कमलों पर क्रम से दुगुनी हानि को लिये हुए व्यास आदि से युक्त भवन हैं ॥८५–८७॥

अस्य व्याख्यानं–श्रीलक्ष्मीगृहयोरायामः क्रोशैकोऽस्ति, व्यासः अर्धक्रोशाश्च, उत्सेधः पादोनक्रोशः स्यात्। ह्री बुद्धि प्रासादयोर्दैर्घ्यं द्वौ क्रोशौ विस्तृतिरेकक्रोश, उन्नतिः सार्धक्रोशः। धृतिकीर्ति सौधयोर्दीर्घता चत्वारः क्रोशाः, विस्तारः द्वौ क्रोशौ, उच्छ्रायः त्रयः क्रोशाः।

इसी का विशेष व्याख्यान करते हैं–श्री और लक्ष्मी के भवनों की लम्बाई एक कोस, चौड़ाई आधा कोस और ऊँचाई पौन कोस है। ह्री और बुद्धि के भवनों की लम्बाई दो कोस, चौड़ाई एक कोस और ऊँचाई डेढ़ कोस है तथा धृति और कीर्ति के भवनों की लम्बाई चार कोस, चौड़ाई दो कोस और ऊँचाई तीन कोस प्रमाण है।

नोट—यहाँ एक कोस २००० धनुष प्रमाण है।

अब श्री आदि देवियों के निवास, आयु और स्वामी का विवेचन करते हैं–

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

श्रीह्रीर्धृतिश्च कीर्तिश्च बुद्धिर्लक्ष्मीरिमा हि षट्।
वसन्ति क्रमतो देव्यः आसु षट्द्रह पंक्तिषु ॥८८॥
स्यादासां सर्वदेवीनामायुः पल्यैकसम्मितम्।
परिवारामराः सन्ति नानापरिषदादयः ॥८९॥
श्री ह्री धृत्याख्यदेवीनां स्वामीसौधर्मनायकः।
ऐशानश्चोत्तरस्त्रीणां सर्वत्रैवं व्यवस्थितिः ॥९०॥

अर्थ—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये छह देवियाँ क्रम से पंक्तिबद्ध छह सरोवरों में रहती हैं। इन सर्व देवियों की आयु एक पल्य की होती है, तथा इनके पारिषद् आदि नाना प्रकार के परिवार देव १४०११५ हैं। श्री, ह्री और धृति देवियों का नायक (स्वामी) सौधर्मेन्द्र है और कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये तीन देवियाँ ऐशानेन्द्र के आधीन हैं। सर्वत्र अर्थात् अन्य सरोवरों में स्थित देवियों की भी ऐसी ही व्यवस्था है ॥८८-९०॥

अब श्री देवी के परिवार कमलों का अवस्थान एवं प्रमाण कहते हैं—

स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्त्राण्यन्ता परिषत्सुधाभुजाम्।
श्री गेहादब्जगेहानि ह्याग्नेयदिशि निश्चितम्॥९१॥
चत्वारिंशत्सहस्त्राणि दक्षिणाख्यदिशिस्फुटम्।
स्युर्मध्य परिषद्देवानां पद्मस्थ गृहाणि च ॥९२॥
भवेयुरष्टचत्वारिंशत्सहस्त्राब्जसद्गृहाः ।
नैऋत्यदिग्विभागे बाह्यपरिषत्सुधाशिनाम्॥ ९३॥
आद्यायाः पतिरेव स्यात्सूर्यः परिषदोऽमरः।
चन्द्रमा मध्यमायास्तु बाह्याया यदुपो महान्।९४॥
चतुःसहस्त्रपद्मा वायुकोणेशान कोणयोः।
सामान्यकाख्य देवानां सन्तिपद्मालयाः शुभाः॥ ९५॥
सप्तानीकामराणां स्युः पश्चिमायांदिशि स्थिताः।
प्रत्येकं सप्तभेदानां सप्ताम्भोजगृहाः शुभाः॥९६॥
कमलान्यङ्गरक्षाणां सहस्त्राणि तु षोडश।
श्रियोऽम्भोजसमीयानि पूर्वादिदिक्चतुष्टये॥९७॥
श्रीपद्मंपरितोऽष्टासु दिग्विदिक्ष्वम्बुजालयाः।
प्रतीहारोत्तमानां स्युरष्टोत्तरशतप्रमाः ॥९८॥

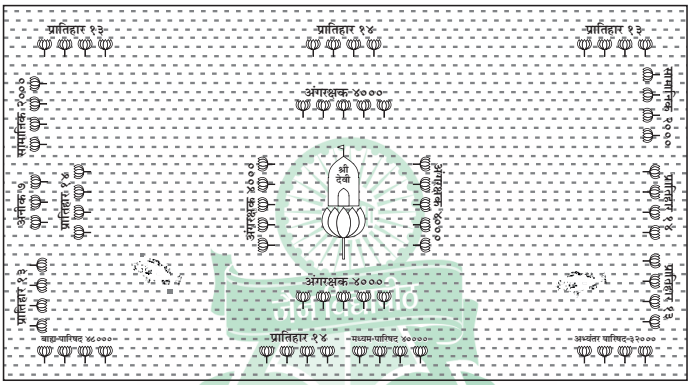
अर्थ—श्री देवी के मूल कमल की आग्नेय दिशा में आभ्यन्तर परिषद् देवों के ३२००० भवन, ३२००० कमलों पर स्थित हैं। इनके प्रमुख देव (स्वामी) का नाम सूर्य है, इसी प्रकार चन्द्र नाम का

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

देव है स्वामी जिनका, ऐसे मध्यपरिषद् के ४०००० कमलस्थ भवन (मूल कमल की) दक्षिण दिशा में स्थित हैं तथा यदुप नाम का देव है स्वामी जिनका, ऐसे बाह्य परिषद् देवों के ४८००० भवन ४८००० कमलों पर (श्री देवी के मूल कमल की) नैऋत्य दिशा में स्थित हैं। श्री देवी के मूल कमल की ऐशान और वायव्य दिशा में ४००० भवन ४००० कमलों पर स्थित हैं।

मूल कमल की पश्चिम दिशा में सात प्रकार के अनीक देवों के सात भवन सात कमलों पर स्थित हैं। ये प्रत्येक अनीक सात-सात कक्षाओं से युक्त हैं श्री देवी के मूल कमल की चारों दिशाओं में चार-चार हजार अर्थात् १६००० तनुरक्षक देवों के कमलस्थ भवन हैं। इसी प्रकार श्री देवी के मूल कमल के चारों ओर अर्थात् चार दिशाओं में (१४, १४) और चारों विदिशाओं में (१३-१३) प्रतिहार महत्तरों के कमलस्थ भवन १०८ हैं ॥९१-९८॥

विशेषार्थ—श्री देवी के और उनके परिवार कमलों के अवस्थान का चित्रण निम्नप्रकार है-



अब श्री देवी के सम्पूर्ण परिवार कमलों का प्रमाण कहते हैं—

क्र.	देवकुमारियाँ	भवनों की लम्बाई	भवनों की चौड़ाई	भवनों की ऊँचाई	ईशान वायव्य कोण में सामानिक देव	चतुर्दिश तनु रक्षक	तीनों पारिषद् देव: आग्नेय में अभ्यन्तर पारिषद	तीनों पारिषद् देव: दक्षिण में मध्य पारिषद	तीनों पारिषद् देव: नैऋत्य में बाह्य पारिषद	पश्चिम में अनीक देव	आठों दिशाओं में प्रतिहार	कुल योग
१	श्री	१ को.	$\frac{१}{२}$ को.	$\frac{३}{४}$ को.	४०००	१६०००	३२०००	४००००	४८०००	७	१०८	१४०११५
२	ह्री	२ को.	१ को.	$१\frac{१}{२}$ को.	८०००	३२०००	६४०००	८००००	९६०००	१४	२१६	२८०२३०
३	धृति	४ को.	२ को.	३ को.	१६०००	६४०००	१२८०००	१६००००	१९२०००	२८	४३२	५६०४६०
४	कीर्ति	४ को.	२ को.	३ को.	१६०००	६४०००	१२८०००	१६००००	१९२०००	२८	४३२	५६०४६०
५	बुद्धि	२ को.	१ को.	$१\frac{१}{२}$ को.	८०००	३२०००	६४०००	८००००	९६०००	१४	२१६	२८०२३०
६	लक्ष्मी	१ को.	$\frac{१}{२}$ को.	$\frac{३}{४}$ को.	४०००	१६०००	३२०००	४००००	४८०००	७	१०८	१४०११५

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

लक्षैकाग्रसहस्त्राणि चत्वारिंशत्तथाशतम्।
एकं पञ्चदशैत्येषां सर्वाब्जगणना मता: ॥९९॥

अर्थ—श्री देवी के सम्पूर्ण परिवार कमलों का प्रमाण एक लाख चालीस हजार एक सौ पन्द्रह है॥९९॥

विशेषार्थ—श्री देवी के सम्पूर्ण परिवार कमलों का प्रमाण निम्न प्रकार है–अङ्गरक्षक १६००० + सामानिक ४००० + अभ्यन्तर पारिषद् ३२००० + मध्यम पारिषद् ४०००० + बाह्य पारिषद् ४८०००+प्रातिहार १०८ और + ७ अनीक=१४०११५ परिवार कमल हैं।

हिमवान् से लेकर निषध पर्वत पर्यन्त कमलों का विष्कम्भ और उत्सेध आदि दुगुने–दुगुने प्रमाण वाला है। परिवार कमलों का प्रमाण भी दूना–दूना है। इसके आगे क्रमश: हीन–हीन है।

देवकुमारियों के भवनों का व्यास आदि एवं परिवार कमलों का प्रमाण—

अब परिवार कमलों का और उनके भवनों का व्यास आदि कहते हैं—

जलान्ते समनालानि नानामणिमयानि च।
परिवारामराब्जानि श्र्यादिषट्देव योषिताम् ॥१००॥
कमलेभ्योऽर्धमानानि व्यासायामादिभिस्तथा।
गृहेभ्य: परिवाराणां गृहाण्यर्धमितानि च ॥१०१॥

अर्थ—श्री आदि छह देवकुमारियों के परिवार कमल जल के मध्य में नाना प्रकार की मणियों से रचित और समान ऊँचाई पर (अर्थात् जल के बाहर जिनकी नाल समान निकली हुई है) स्थित हैं। श्री आदि देवी के मूल कमलों से परिवार कमलों का व्यास आदि अर्ध प्रमाण है, इसी प्रकार उनके मूल भवन से परिवार देवों के भवनों का व्यास आदि भी अर्ध प्रमाण है ॥१००–१०१॥

अमीषां पद्मगेहानां प्रत्येक व्यासादीन्युच्यन्ते–श्रीलक्ष्मी परिवार देव कमलानां व्यास: द्वौ क्रोशौ। कर्णिका व्यास: अर्धक्रोश: स्यात्। पत्रायाम: पादोनक्रोशश्च। ह्रीबुद्धिपरिवारामर पद्मानां विष्कम्भ: योजनैकं भवेत्। कर्णिका विष्कम्भ: एकक्रोश: पत्रदीर्घतासार्धक्रोशश्च। धृतिकीर्तिपरिवारदेवाम्भोजानां विस्तारो द्वे योजने। कर्णिकाविस्तार: द्वौ क्रोशौ। पत्रायामस्त्रय: क्रोशा:। श्री लक्ष्मीपरिवारसुरपद्मस्थगृहाणां आयामोऽर्धक्रोशोऽस्ति। व्यास: क्रोशचतुर्थांश:। उत्सेध: क्रोशाष्ट भागानां त्रयोभागा:। ह्री बुद्धि परिवार–देवाब्जस्थगृहाणां दीर्घता एक क्रोश:। विष्कम्भोऽर्धक्रोशश्च। उन्नति: पादोनक्रोश: स्यात्। धृतिकीर्ति–परिवारामराम्बुजस्थसौधानामायाम: द्वौ क्रोशौ, विस्तार: एक: क्रोश:, उत्सेध: सार्ध क्रोशाश्च॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त गद्यभाग में श्री आदि छह देवकुमारियों के परिवार देवों के कमल, कर्णिका और कमल पत्रों का तथा उन कमलों पर स्थित उनके भवनों के व्यास आदि का प्रमाण दर्शाया गया है, जिसके सम्पूर्ण अर्थ का समावेश निम्नांकित तालिका में है–

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

परिवार कमल आदि के एवं भवनों के व्यास आदि का प्रमाण–

क्र.	देवकुमारियों के नाम	कमल का व्यास	कर्णिका का व्यास	कमल पत्र का आयाम	परिवार भवनों की		
					लम्बाई	चौड़ाई	ऊँचाई
१	श्री देवी	२ कोस	$\frac{१}{२}$ कोस	$\frac{३}{४}$ कोस	$\frac{१}{२}$ कोस	$\frac{१}{४}$ कोस	$\frac{३}{८}$ कोस
२	ह्री देवी	१ योजन	१ कोस	$१\frac{१}{२}$ कोस	१ कोस	$\frac{१}{२}$ कोस	$\frac{३}{४}$ कोस
३	धृति देवी	२ योजन	२ कोस	३ कोस	२ कोस	१ कोस	$१\frac{१}{२}$ कोस
४	कीर्ति देवी	२ योजन	२ कोस	३ कोस	२ कोस	१ कोस	$१\frac{१}{२}$ कोस
५	बुद्धि देवी	१ योजन	१ कोस	$१\frac{१}{२}$ कोस	१ कोस	$\frac{१}{२}$ कोस	$\frac{३}{४}$ कोस
६	लक्ष्मी देवी	$\frac{१}{२}$ योजन	$\frac{१}{२}$ कोस	पौन कोस	$\frac{१}{२}$ कोस	$\frac{१}{४}$ कोस	$\frac{३}{८}$ कोस

दीर्घ एवं लघु भवनों की मुखदिशा का वर्णन–

एते महागृहारम्या उक्तसंख्या बुधैः स्मृताः।
एतेभ्यो बहवोऽन्येऽत्र ज्ञातव्याः क्षुल्लकालयाः ॥१०२॥
सर्वे स्युरुत्तमा गेहाः पूर्वाभिमुख शाश्वताः।
तेषामभिमुखा अन्ये सन्ति जघन्य सद्गृहाः ॥१०३॥

अर्थ–इस प्रकार विद्वानों के द्वारा श्री देवी के परिवार महागृहों की संख्या १४०११५ कही गई है। इन महागृहों से भिन्न और लघुगृह भी अनेक हैं, ऐसा जानना चाहिए। ये सर्व महागृह शाश्वत और पूर्वाभिमुख हैं अर्थात् सम्पूर्ण महागृहों का मुख पूर्व दिशा की ओर है, तथा अन्य सभी लघु गृहों के मुख महागृहों की ओर हैं अर्थात् पश्चिम दिशा की ओर हैं ॥१०२-१०३॥

सम्पूर्ण पद्मगृहों में जिनालयों का व्याख्यान करते हैं–

विश्वेषु पद्मगेहेषु शाश्वताः श्रीजिनालयाः।
अब्जालय प्रमा ज्ञेया देवदेवीगणार्चिताः ॥१०४॥
दिव्याष्ट मङ्गलद्रव्यैः प्रातिहार्याष्टभूतिभिः।
भासमानाः स्वतेजोभिर्रत्नार्हत्प्रतिमाभृताः ॥१०५॥

अर्थ–सम्पूर्ण पद्म भवनों में देव देवियों के समूह से अर्चित, दिव्य अष्ट मंगल द्रव्यों (भृंगार, ताल, कलश, ध्वज, सुप्रतीक, श्वेतातपत्र, दर्पण और चामर) और अष्ट प्रातिहार्यों से युक्त एवं अपने तेज से देदीप्यमान ऐसे रत्नमय अर्हन्त प्रतिमाओं से समन्वित शाश्वत श्री जिनमन्दिर हैं। इनका प्रमाण पद्मालयों के प्रमाण बराबर ही है, अर्थात् कमलों की जितनी संख्या है, उतने ही (कमलों के ऊपर) भवन हैं और प्रत्येक भवन में एक-एक अकृत्रिम श्रीजिनालय है अतः कमलभवनों के प्रमाण ही

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जिनमन्दिरों का प्रमाण है ॥१०४-१०५॥

अब उन्हीं कमल भवनों का विशेष व्याख्यान करते हैं–

उपपादगृहा रम्या अभिषेकगृहाः शुभाः।
मण्डनाख्यगृहा दीप्ताः सभास्थानगृहा वराः ॥१०६॥
रम्याः क्रीडनसद्गेहा विचित्रा नाटकालयाः।
रतिगेहाः परेदोलागृहाः सङ्गीतसद्गृहाः ॥१०७॥
विस्फुरन्तो भवन्त्यत्र विचित्रमणिदीप्तिभिः।
मृदङ्गतूर्यनादाद्यै र्धूपामोदैश्च वासिताः ॥१०८॥
न वनस्पतयोनैते निर्मिता व्यन्तरामरैः।
पृथ्वी सारमयाः किन्तु नित्याः पद्मादयोऽखिलाः ॥१०९॥
सर्वेषां कमलानां चोपरिज्येष्टालयोन्नताः।
स्फुरन्मणिमया भान्ति प्राकारद्वारतोरणैः ॥११०॥

अर्थ—उन उपर्युक्त पद्मभवनों में नाना मणियों के प्रकाशमान किरणों से युक्त दोलागृह, मृदंग एवं तूर्य के शब्दों से गम्भीर उत्तम संगीतगृह, धूप की सुगन्ध से वासित सम्भोगगृह, रमणीक उपपाद (जन्म) गृह, शुभ अभिषेक गृह, प्रकाशमान मण्डनगृह, उत्कृष्ट सभास्थान, शोभनीक क्रीड़ागृह और नाना प्रकार के नाटकगृह आदि होते हैं ॥१०६-१०८॥

ये पद्म, पद्मभवन एवं जिनमन्दिर आदि न तो वनस्पतिकाय हैं और न किन्हीं व्यन्तर देवों के द्वारा रचित हैं किन्तु ये सभी पृथिवी के विकार स्वरूप हैं। अर्थात् पृथ्वीकाय और अकृत्रिम हैं ॥१०८॥

इस प्रकार सम्पूर्ण कमलों के ऊपर नाना प्रकार के तोरण द्वारों आदि से युक्त, मणिमय और उन्नत उत्तम गृह हैं ॥११०॥

अब सात प्रकार की अनीकों के नाम कहते हैं–

गजा अश्वारथास्तुंगा वृषागन्धर्व निर्जराः।
नर्त्तक्यो भृत्यपादातयोऽमूनिप्रस्फुरन्ति च ॥१११॥
सप्तानीकानि युक्तानि कक्षाभिः सप्तसप्तभिः।
प्रत्येकं श्रीगृहद्वारे भूत्यैवं श्र्यादियोषिताम् ॥११२॥

अर्थ—श्रीदेवी के गृह द्वार पर गज, अश्व, ऊँचे-ऊँचे रथ, बैल, गन्धर्वदेव, नृत्यकी और दास अर्थात् पदाति ये सात-सात कक्षाओं से युक्त सप्त सेनाएँ शोभायमान होती हैं, इसी प्रकार ह्री आदि प्रत्येक देवकुमारियों के भी जानना चाहिए ॥१११-११२॥

अब प्रत्येक कक्षा की संख्या का अवधारण करते हैं–

प्रथमे या गजानीके गजसंख्या च सा ततः।
द्वितीये द्विगुणात्रैव सप्तसु द्विगुणोत्तराः ॥११३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तथान्याश्वाद्यनीकानां गणनाश्वादिसंख्यया।
प्रत्येकं सप्तकक्षासु द्विगुणा द्विगुणा मता॥ ११४॥

अर्थ—गज अनीक की प्रथम कक्षा में गजों की जो संख्या है, द्वितीय कक्षा में वह संख्या दुगुनी है। इस प्रकार गज अनीक की सातों कक्षाओं में क्रम से दुगुनी-दुगुनी संख्या है। इसी प्रकार अश्व आदि सातों अनीकों की प्रथम कक्षा की अश्व आदि की संख्या से द्वितीय कक्षा की अश्व आदि की संख्या उत्तरोत्तर दुगुनी मानी गई है ॥११३-११४॥

विशेषार्थ—गज, अश्व आदि सात अनीकें (सेनाएँ) हैं। प्रत्येक सेना में सात-सात कक्ष हैं। प्रथम कक्ष के हाथी, घोड़े, रथ आदि की संख्या (त्रिलोकसार गा. ५७४ की टीकानुसार) सामानिक देवों की संख्या के प्रमाण (४०००) मानी गई है, आगे-आगे की कक्षाओं में यह संख्या उत्तरोत्तर दूनी-दूनी होती गई है। इस प्रकार ह्री देवी की प्रथम अनीक की प्रथम कक्षा की संख्या ८००० से प्रारम्भ होकर दुगुनी होगी और धृति देवी की १६००० से प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर सातों कक्षाओं में दूनी-दूनी होगी।

श्री देवी की ७ अनीकों की सात कक्षों का सम्पूर्ण प्रमाण

कक्ष	गजानीक	अश्वानीक	रथाऽनीक	वृषभानीक	गन्धर्वानीक	नृत्यानीक	पदाति
१ला कक्ष	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००
२रा कक्ष	८०००	८०००	८०००	८०००	८०००	८०००	८०००
३रा कक्ष	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००
४था कक्ष	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००
५वाँ कक्ष	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००
६वाँ कक्ष	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००
७वाँ कक्ष	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००
योग	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००
सम्पूर्ण योग							३५५६०००

उत्तम चारित्र के द्वारा पुण्यार्जन करने की प्रेरणा—

एता दिव्यविभूतयः सुखकराः, सत्सौधसैन्यादिकाः।
प्राप्ताः श्रयादि सुदेवताभिरखिला, मान्यप्रभुत्वादयः।
अन्ये चावधि विक्रियर्धि सुगुणाः, प्रागर्जितश्रेयसा।
मत्त्वेतीह जनाः कुरुध्वमनिशं, श्रेयोऽर्जनं सद्व्रतैः ॥११५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—इस प्रकार श्री ही आदि देव कुमारियों को जो दिव्य विभूतियाँ, सुखों का समूह, उत्तम भवन, उत्तम सैन्य आदि का वैभव तथा प्रभुत्व आदि का ऐश्वर्य एवं और भी जो अवधिज्ञान, विक्रिया आदि ऋद्धियाँ एवं अन्य उत्तम गुण प्राप्त हुए हैं, वे सब पूर्व उपार्जित पुण्य कर्म से ही प्राप्त हुए हैं, ऐसा मानकर हे भव्यजनो! इस लोक में अर्थात् मनुष्य पर्याय में उत्तम चारित्र के द्वारा निरन्तर पुण्य उपार्जन करो ॥११५॥

अधिकार के अन्त में आचार्यवर्य रत्नत्रय धारण करने का प्रोत्साहन देते हैं—

श्रेयः[१] श्रेयनिबन्धनोऽसुखहरः श्रेयं श्रयन्त्युत्तमाः
श्रेयेनात्र च लभ्यतेऽखिलसुखं श्रेयाय शुद्धा क्रियाः।
श्रेयाच्छ्रैयकरोऽपरो न च महान् श्रेयस्य मूलं सुदृक्।
श्रेये यत्नमनारतं बुधजनाः कुर्वन्तु दृक्चिद्व्रतैः ॥११६॥

इति श्री सिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते कुलाचल, ह्रद श्र्यादिदेवी विभूति वर्णनो नाम चतुर्थोऽधिकारः ॥४॥

अर्थ—पुण्य कल्याण का निबन्धक अर्थात् कल्याण प्राप्त कराने वाला और दुःखों का हरण करने वाला है, इसलिये सज्जन पुरुष पुण्य का आश्रय लेते हैं अर्थात् पुण्य अर्जन करते हैं। पुण्य से ही सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति होती है, अतः पुण्य अर्जन के लिये शुद्ध क्रियाएँ (कुल एवं पद के योग्य क्रियाएँ) करना चाहिए। पुण्य से अधिक कल्याणकारी और कोई महान् नहीं है। पुण्य की जड़ सम्यग्दर्शन है, इसलिये बुद्धिमानों को रत्नत्रय धर्म के द्वारा पुण्य में अर्थात् पुण्यार्जन के लिये अनवरत प्रयत्न करना चाहिये ॥११६॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नाम के महाग्रन्थ में छह कुलाचल, छह सरोवर एवं श्री आदि देवकुमारियों की विभूति का वर्णन करने वाला चतुर्थ अधिकार समाप्त।

❑ ❑ ❑

१ श्रयितुं योग्यः श्रेयः सेवनीयः धर्मः इत्यर्थः। नायं श्रेयस् शब्दः।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पञ्चम अधिकार

महानदी, गिरि वर्णन

मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा

अथ नत्वा जिनेन्द्रादींस्तदर्चाश्च जिनालयान्।
नदीगङ्गादिका वक्ष्ये निर्गमस्थानविस्तरैः ॥१॥

अर्थ—अब मैं जिनेन्द्र आदि पञ्च परमेष्ठियों को, जिन प्रतिमाओं को और जिनालयों को नमस्कार करके गंगा आदि नदियों के निर्गम स्थान आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन करूँगा ॥१॥

चतुर्दश महा नदियों के नाम—

गङ्गासिन्धुनदीरोहिद्रोहितास्या हरित्सरित्।
हरिकान्ता च सीताख्या सीतोदावाहिनी ततः ॥२॥
नारी च नरकान्ता सुवर्णकूलाह्वया नदी।
रूप्यकूलाभिधा रक्ता रक्तोदैताश्चतुर्दश ॥३॥

अर्थ—गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये चौदह नदियाँ हैं ॥२-३॥

इन नदियों के गिरने का स्थान कहते हैं—

पूर्वोक्ताः सप्तगङ्गाद्या नद्यः पूर्वाब्धिगा मताः।
शेषाः सिन्ध्वादयः सप्त चापराम्बुधि मध्यगाः ॥४॥

अर्थ—उपर्युक्त १४ नदियों में से पूर्व कथित गंगा आदि सात नदियाँ पूर्व समुद्र में और शेष सिन्धु आदि सात नदियाँ पश्चिम समुद्र में गिरतीं हैं ॥४॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त १४ महा नदियाँ लवण समुद्र में गिरती हैं। इनमें से गंगा, रोहित, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये सात नदियाँ पूर्व लवण समुद्र में और सिन्धु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तोदा ये सात नदियाँ पश्चिम लवण समुद्र में गिरतीं हैं।

अब द्रहों की वेदिकाओं का प्रमाण कहते हैं—

तेषां च षड्द्रहाणां स्यात् सर्वत्र रत्नवेदिका।
तटे क्रोशद्वयोत्तुङ्गा क्रोशैकपादविस्तृता ॥५॥

अर्थ—उन पद्म आदि छह द्रहों के तट पर चारों ओर रत्नवेदिका है, जो दो कोस ऊँची और सवा कोस चौड़ी है ॥५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब गङ्गा आदि के निर्गम द्वारों का सविशेष वर्णन करते हैं—

पद्मद्रहस्य पूर्वस्मिन् दिग्भागे तोरणान्वितम्।
वज्रद्वारं भवेत्क्रोशाग्रषड्योजनविस्तृतम् ॥६॥
उन्नतं सार्धगव्यूति संयुक्तनव योजनैः।
द्वारस्य तोरणं ज्ञेयं जिनबिम्बाद्यऽलङ्कृतम् ॥७॥
पूर्ववत्पश्चिमद्वारं ह्रदस्यास्य समानकम्।
शेषद्वितीयनदीनां सीतोदान्तानां भवन्ति च ॥८॥
ह्रदस्थनिर्गमद्वार व्यासाद्यै र्द्विगुणोत्तराः।
नार्यादिवाहिनीनां स्युः क्रमह्रासास्ततोऽखिलाः॥९॥

अर्थ—पद्मसरोवर की पूर्व दिशा में गंगा नदी को निकलने के लिये तोरण से संयुक्त एक वज्रमय द्वार है, जो ६ योजन एक कोश अर्थात् सवा छह ($६\frac{१}{४}$) योजन चौड़ा और ९ योजन $१\frac{१}{२}$ कोस ऊँचा है। इस द्वार का तोरण जिनबिम्ब और दिक्कन्याओं के आवासों से अलंकृत है ॥६-७॥

पद्मसरोवर की पूर्व दिशा के समान पश्चिम दिशा में भी एक निर्गम द्वार है, जिससे सिन्धु नदी निकलती है। इस प्रकार अन्य सरोवरों में भी सीतोदा नदी पर्यन्त दो-दो निर्गम द्वार हैं, जिनका व्यास आदि उत्तरोत्तर दूना-दूना होता गया है। इसके आगे अवशेष तीन सरोवरों से निकलने वाली नारी, नरकान्ता आदि नदियों के निर्गम द्वारों का व्यास आदि क्रम से दुगुना-हीन होता गया है ॥८-९॥

विशेषार्थ—छह सरोवरों से १४ महानदियाँ निकलीं हैं—पद्मह्रद से गंगा, सिन्धु और रोहितास्या, महापद्म से रोहित् और हरिकान्ता, तिगिञ्छ सरोवर से हरित् और सीतोदा, केसरी ह्रद से सीता और नरकान्ता, महापुण्डरीक से नारी और रूप्यकूला तथा पुण्डरीक सरोवर से सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा नदियाँ निकलीं हैं।

गंगा नदी की उत्पत्ति और उसके गमन का प्रकार ४ श्लोकों द्वारा कहते हैं—

तस्मात्पद्मद्रहद्वाराद्गङ्गा निर्गत्य विस्तृता।
क्रोशाग्रयोजनैः षड्भिर्हिमवद्गिरि मस्तके ॥१०॥
अर्धक्रोशावगाहाढ्या याता पञ्च शतानि च।
योजनानि चलद्वेगा गङ्गाकूटस्य सन्मुखा ॥११॥
गङ्गाकूटं ततस्त्यक्त्वा योजनार्धेन दूरतः।
दक्षिणाभिमुखीभूय शतपञ्चक योजनान् ॥१२॥
संयुतान् साधिकार्धक्रोश त्रयोविंशयोजनैः।
सा गिरेस्तटमायाता तत्रास्ति गोमुखाकृतिः ॥१३॥

अर्थ—$६\frac{१}{४}$ योजन चौड़ी और $\frac{१}{२}$ कोस गहरी गंगा नदी पद्मसरोवर की पूर्व दिशा में स्थित वज्रद्वार

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

से निकलकर हिमवान् पर्वत के ऊपर ५०० योजन (हिमवान् पर्वत पर स्थित) गंगाकूट के सम्मुख अर्थात् पूर्व दिशा की ओर जाकर गंगाकूट को अर्धयोजन दूर से ही छोड़ती हुई दक्षिण दिशा में मुड़ जाती है, तथा उसी दक्षिण दिशा की ओर साधिक अर्धकोस से अधिक ५२३ योजन आगे जाकर वह गंगा हिमवान् पर्वत के तटभाग पर स्थित गोमुखाकृति प्रणालिका (नाली) को प्राप्त हो जाती है ॥१०-१३॥

विशेषार्थ—हिमवान् पर्वत के ऊपर गंगा नदी का दक्षिण दिशा में साधिक अर्धकोस से अधिक ५२३ योजन जाने का कारण यह है कि गंगा नदी हिमवान् पर्वत के ठीक मध्य में से बहती है, क्योंकि पर्वत के ठीक मध्य में पद्म सरोवर है और सरोवर के ठीक मध्य से ६$\frac{१}{४}$ योजन की चौड़ाई को लिये हुए गंगा निकली है, अतः पर्वत के व्यास (१०५२$\frac{१२}{१९}$ में से नदी का व्यास (६ $\frac{१}{४}$ योजन) घटाकर १०५२ $\frac{१२}{१९}$ -६$\frac{१}{४}$ =१०४६ $\frac{२९}{७६}$) अवशेष भाग का आधा (१०४६ $\frac{२९}{७६}$ ÷ २) करने पर आधा भाग उत्तर में और आधा (५२३ $\frac{२९}{१५२}$ योजन) दक्षिण में रहा, अतः दक्षिण के उस अर्धभाग को पार करने के बाद ही गंगा को हिमवान् पर्वत का तट प्राप्त हो जाता है।

अब प्रणालिका की आकृति और उसके प्रमाण आदि का निर्धारण तीन श्लोकों द्वारा करते हैं—

द्विक्रोशदीर्घता युक्ता द्वि क्रोशस्थूलता युता।
प्रणालीयोजनैः षड्भिः क्रोशाग्रैर्विस्तरान्विता ॥१४॥
नित्यायत जलाभेद्या सिंहवच्छ्रुति जिह्विका।
ज्ञेयास्या दीर्घ विस्तारैः समासिन्धुप्रणालिका ॥१५॥
शेषाः प्रणालिका व्यासाद्यै विदेहान्त मञ्जसा।
द्विगुणाद्विगुणाः स्युश्च तथालध्वास्ततोऽपराः ॥१६॥

अर्थ—[हिमवान् पर्वत के तट पर स्थित वह] जिह्विका नाम की प्रणालिका (नाली) दो कोस लम्बी, दो कोस मोटी और ६ योजन एक कोश अर्थात् ६$\frac{१}{४}$ योजन चौड़ी है। यह प्रणालिका शाश्वत और जल से अभेद्य अर्थात् नष्ट भ्रष्ट होने के स्वभाव से रहित है। इसकी मुखाकृति गाय के सदृश है किन्तु इसके कान सिंह के कान सदृश हैं। [गंगा नदी इसी नाली में जाकर हिमवान् पर्वत से नीचे गिरती है।] सिन्धु नदी की प्रणालिका की लम्बाई चौड़ाई भी इसी के समान है। इसके बाद विदेह पर्यन्त की शेष प्रणालिकाओं का व्यास आदि उत्तरोत्तर दूना दूना और उसके आगे क्रमशः हीन-हीन होता गया है ॥१४-१६॥

गिरती हुई गंगा नदी के विस्तार आदि का वर्णन—

काहलाकारमाश्रित्य पतिता भरतावनौ।
दशयोजनविस्तीर्णा धारा तस्या अखण्डिता ॥१७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

धारापर्वतयोर्मध्ये ह्यन्तरं पञ्चविंशतिः।
योजनानि ततोऽन्येषां द्विगुणद्विगुणं क्रमात् ॥१८॥
धाराया उन्नतिश्चात्र शतैकयोजनप्रमा।
द्विगुणा द्विगुणान्याद्रिद्वयेऽर्धार्धाऽचलत्रये ॥१९॥

अर्थ—(हिमवान् पर्वत को छोड़कर) काहला (एक प्रकार के बाजा) के आकार को धारण करने वाली, दस योजन विस्तार वाली तथा अखण्ड धारा से युक्त गंगा नदी भरत भूमि पर गिरती है। जहाँ धारा गिरती है उस स्थान के और पर्वत के मध्य में पच्चीस योजनों का अन्तराल है अर्थात् गंगा नदी हिमवान् पर्वत से पच्चीस योजन दूरी पर गिरती है। विदेह पर्यन्त यह अन्तर क्रमशः दूना और उससे आगे क्रमशः हीन होता गया है। इस स्थान पर गंगा की धारा की ऊँचाई सौ योजन प्रमाण है। विदेह पर्यन्त धारा की ऊँचाई क्रम से दूनी-दूनी प्राप्त होती है और उसके आगे तीन कुलाचलों पर यह ऊँचाई क्रमशः अर्ध-अर्ध प्राप्त होती है ॥१७-१९॥

अब गिरी हुई नदी और उसके गिरने का स्वरूप ११ श्लोकों द्वारा कहते हैं—

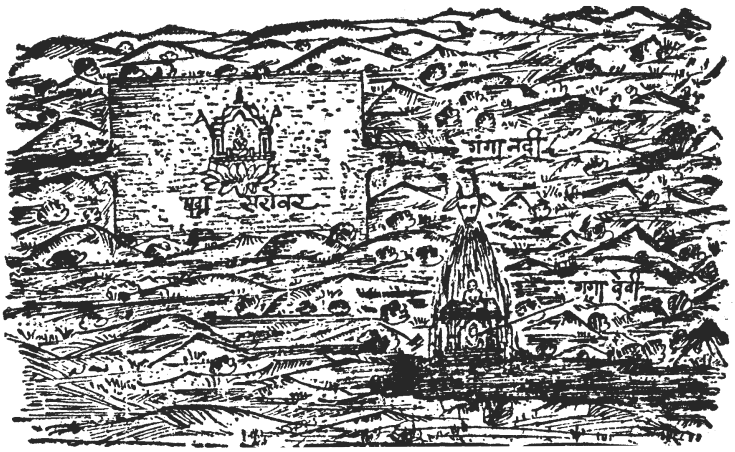
तत्राद्रि पार्श्वभूभागे कुण्डवज्रमयं भवेत्।
वृत्तं नित्यं सुविस्तीर्णं सार्धं द्विषष्टियोजनैः ॥२०॥
वेष्टितं रत्नवेद्या चावगाहं दशयोजनैः।
तस्य मध्य प्रदेशेऽस्ति सद्वीपः सलदाह्वयः ॥२१॥
अष्ट योजन विस्तीर्णो जलात् क्रोशाद्वयोच्छ्रितः।
तन्मध्ये स्याद्गिरिर्वज्रमयस्तुङ्गश्चयोजनैः ॥२२॥
दशभिर्विस्तृतो मूले चतुर्भिर्मध्य विस्तरः।
द्वाभ्यां च योजनाभ्यां मूर्ध्न्येक योजन विस्तृतः ॥२३॥
तस्याद्रेः श्रीगृहं मूर्ध्नि दिव्यं क्रोश समुन्नतम्।
भूतले सार्धगव्यूति दीर्घमायाम संयुतम् ॥२४॥
क्रोशेनैकेन मध्येग्रे क्रोशार्ध दीर्घताश्रितम्।
स्फुरद्रत्नमयं सार्ध शतद्विचाप विस्तृतम् ॥२५॥
चतुर्गोपुरयुक्तस्य वेदिका वेष्टितस्य च।
गङ्गा कूटाभिधस्यास्य द्वारं मणिमयं भवेत् ॥२६॥
चत्वारिंशद्धनुर्व्यासं चापाशीत्युच्छ्रितं शुभं।
गंगादेवीवसेदत्र प्रासादे वनभूषिते ॥२७॥
प्रासादमस्तकेऽत्रास्ति शाश्वतं कमलोर्जितं।
तत्कर्णिकोपरिस्फीतं रत्नसिंहासनोन्नतम् ॥२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तस्योपरिस्फुरद्रत्नमयी नित्या मनोहरा।
जिनेन्द्रं प्रतिमा तुङ्गा तेजो मूर्तिरिवास्ति च ॥२९॥
तस्याः शिरसि सर्वाङ्गे पतन्त्यचलमस्तकात्।
महाभिषेक धारेवगङ्गासरिद्रवाकुला ॥३०॥

अर्थ—हिमवान् पर्वत के पार्श्व भाग (मूल) में पृथ्वी पर एक वज्रमय अकृत्रिम गोल कुण्ड है, जो ६२ $\frac{१}{२}$ योजन व्यास अर्थात् चौड़ा और १० योजन गहरा तथा रत्नों की वेदी से वेष्टित है। इस कुण्ड के मध्य में सलद (जलद) नाम का एक उत्तम द्वीप (टापू) है, जो आठ योजन विस्तृत और जल से दो कोस ($\frac{१}{२}$ योजन) ऊँचा है। उस द्वीप के मध्य में वज्रमय दस योजन ऊँचा एक पर्वत है। उस पर्वत का व्यास मूल में चार योजन, मध्य में दो योजन और शिखर पर एक योजन प्रमाण है। उस पर्वत के शिखर पर शोभायुक्त गृह है, जो एक कोस ऊँचा, रत्नमय दिव्य भवन है, जो भूतल पर १$\frac{१}{२}$ कोस (३००० धनुष) लम्बा (व्यास) मध्य में एक कोस (२००० धनुष) तथा अग्रभाग में $\frac{१}{२}$ कोस (१००० धनुष) लम्बा (व्यास) है। इस गृह (गंगा कूट) का अभ्यन्तर व्यास २५० धनुष है। गंगा कूट है नाम जिसका, ऐसा यह गंगा देवी का गृह चार गोपुरों से युक्त और वेदिका से वेष्टित है। इसके द्वार अर्थात् दोनों किवाड़ अत्यन्त शुभ और रत्नमय हैं, जिनकी चौड़ाई ४० धनुष और ऊँचाई ८० धनुष है। वन से विभूषित इस महल में गंगा नाम की देवी रहती है। इस महल के मस्तक-अग्रभाग पर एक शाश्वत और उन्नत कमल है, जिसकी कर्णिका के ऊपर देदीप्यमान रत्नमय उन्नत-विशाल सिंहासन है। उस सिंहासन पर तेज की मूर्ति ही हो मानो इस प्रकार की अत्यन्त भास्वर, मनोहर और अकृत्रिम, रत्नमय उत्तुंग जिनेन्द्र प्रतिमा अवस्थित है, नदी के कलकल शब्दों से युक्त, महा अभिषेक की धारा के समान गंगा नदी हिमवान् पर्वत के मस्तक से उन प्रतिमा के सिर पर से सम्पूर्ण शरीर पर गिरती है ॥२०-३०॥

गंगा गिरने का सामान्य चित्रण निम्नप्रकार है—



FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कुण्ड से निकलकर जाती हुई गंगा का एवं उसके स्थान का स्वरूप चार श्लोकों द्वारा निरूपित करते हैं–

तत् कुण्ड देहली द्वारान्निर्गत्य सा सतोरणात्।
ततः खण्डप्रपाताख्या गुहासन्मुखमागता ॥३१॥
रूप्याचल तले तस्या गुहाया योजनानि च।
द्वादशव्यासआयामः पञ्चाशद्योजनान्यपि ॥३२॥
उन्नतिर्योजनान्यष्टौ द्वौ स्तो वज्रकपाटकौ।.
षट्षड्योजनविस्तारौ ह्यष्टाष्टयोजनोन्नतौ ॥३३॥
देहल्या विजयार्धस्य प्रविष्टैषाप्यधस्तले।
अष्टयोजनविस्तीर्णा सर्वत्रात्र गुहान्तरे ॥३४॥

अर्थ–गंगा नदी उस कुण्ड के तोरण सहित दक्षिण द्वार से निकलकर [दक्षिण की ओर बहती हुई विजयार्ध पर्वत की] खण्डप्रपात नाम की गुफा की ओर जाती है और गुफा के तोरण सहित (दक्षिण) द्वार की देहली के नीचे से निकलकर [गुफा की ५० योजन लम्बाई को पार करती हुई] आठ योजन विस्तार वाली गंगा उसी गुफा के उत्तर द्वार की देहली के नीचे से निकल जाती है विजयार्ध पर्वत के नीचे स्थित गुफा और गुफा द्वार दोनों बारह-बारह योजन चौड़े और आठ-आठ योजन ऊँचे हैं। गुफा की लम्बाई ५० योजन है (क्योंकि विजयार्ध ५० यो. ही चौड़ा है)। गुफा के (दक्षिण उत्तर) दोनों द्वारों पर प्रत्येक छह-छह योजन चौड़े और आठ-आठ योजन ऊँचे वज्रमय कपाट लगे हैं ॥३१-३४॥

विशेषार्थ–एक कपाट की चौड़ाई ६ योजन है, अतः दोनों कपाट १२ योजन चौड़े हुए, क्योंकि गुफा का द्वार भी १२ योजन चौड़ा है। जब कपाटों की चौड़ाई १२ योजन है तब देहली की लम्बाई भी १२ योजन होगी, अतः उसके नीचे से आठ योजन चौड़ी गंगा का निकल जाना स्वाभाविक ही है।

उम्नगा और निम्नगा नदियों का वर्णन–

उम्नगानिम्नगा संज्ञे द्विर्द्विर्योजन विस्तृते।
द्विर्द्विर्योजन दीर्घ द्वे नद्यौ विनिर्गते घने ॥३५॥
पूर्वापरगुहाभित्ति भूकुण्डाभ्यो क्षयोज्झिते।
गुहामध्ये प्रविष्टे स्तः प्रवाहेऽस्याद्विपार्श्वयोः ॥३६॥

अर्थ–[विजयार्ध की खण्डप्रपात गुफा ५० योजन लम्बी है। २५ योजन पर अर्थात्] गुफा के ठीक मध्य में पूर्व पश्चिम दोनों दीवालों के निकट भूमि पर दो कुण्ड हैं, इन कुण्डों से दो-दो योजन चौड़ी और दो-दो योजन लम्बी उम्नगा और निम्नगा नाम की दो नदियाँ निकलतीं हैं तथा विनाश रहित और मेघसदृश ये दोनों नदियाँ दोनों पार्श्वभागों से गंगा के प्रवाह में प्रविष्ट हो जाती हैं ॥३५-३६॥

विशेषार्थ–खण्डप्रपात गुफा की चौड़ाई १२ योजन प्रमाण है। इस गुफा के ठीक मध्य में से ८ योजन चौड़ी गंगा बहती है, अतः दोनों पार्श्वभागों में गुफा की भित्ति से गंगा नदी तक मात्र दो-

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दो योजन ही अवशेष रहते हैं, इसलिए उम्नगा और निम्नगा नदियों की लम्बाई दो-दो योजन कही गई है।

गंगा के पतन का और पतन समय उसके व्यास आदि का वर्णन–

ततस्त्यक्त्वाद्रिमागत्य दक्षिणाभिमुखा सरित्।
दक्षिणभरतस्यार्धं भूतलं प्राग्मुखी ततः ॥३७॥
वलित्वा विस्तृता सार्धद्विषष्टियोजनैःपरा।
पञ्चक्रोशावगाहा सा प्रविष्टा पूर्वसागरम् ॥३८॥

अर्थ–इस प्रकार विजयार्ध पर्वत को छोड़कर दक्षिणाभिमुख बहती हुई गंगा दक्षिणभारत के अर्धभाग (११९$\frac{३}{३८}$ योजन) पर्यन्त सीधी आती है। पश्चात् पूर्व दिशा के सम्मुख मुड़ती हुई, ६२$\frac{१}{२}$ योजन चौड़ी और ५ कोस गहरी वह गंगा महानदी अन्ततः (मागध द्वार से) पूर्व समुद्र में प्रवेश कर जाती है ॥३७-३८॥

विशेषार्थ–११९$\frac{३}{३८}$योजन अर्थात् अर्ध दक्षिण भारत को पार करती हुई गंगा जब पूर्वाभिमुख होती है तब वह ढाई म्लेच्छखण्डों को प्राप्त करती है और वहाँ से १४००० प्रमाण परिवार नदियों को लेकर लवण समुद्र में प्रवेश कर जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अकृत्रिम वस्तुओं की अवस्थिति म्लेच्छखण्ड पर्यन्त ही प्राप्त हो सकती है आर्यखण्ड में नहीं, क्योंकि आर्यखण्डों में प्रलय पड़ता है।

अब मागधद्वार के व्यास आदि का वर्णन करते हैं–

तन्मागधामरद्वारं गङ्गाप्रवेश कारणम्।
क्रोशाद्वयावगाहं द्विक्रोशबाहुल्य संयुतम् ॥३०॥
गङ्गाव्याससमव्यासं रत्नतोरण भूषितम्।
योजनत्रिनवत्यामा त्रिक्रोशेनोच्छ्रितं भवेत् ॥४०॥

अर्थ–पूर्व लवण समुद्र में गंगा के प्रवेश का कारणभूत मागध नाम का द्वार है। अर्थात् मागधद्वार से भीतर जाकर गंगा समुद्र में प्रवेश करती है। इस द्वार के रक्षकदेव का नाम मागध है। यह द्वार रत्नों के तोरण से विभूषित है, द्वार की नींव दो कोस, मोटाई दो कोस, ऊँचाई तीन कोस अधिक ९३ योजन और चौड़ाई गंगा के व्यास सदृश अर्थात् ६२ $\frac{१}{२}$ योजन प्रमाण है ॥३८-४०॥

मागध द्वार के ऊपर स्थित तोरण द्वार का वर्णन करते हैं–

स्युस्तत्रतोरणद्वारे जिनबिम्बान्यनेकशः।
मङ्गलद्रव्यभूषाणि दीप्तरत्नमयानि च ॥४१॥
तोरणोपरिचोत्तुङ्ग मणिप्रासादपंक्तयः।
दिक्कुमारीव्रजापूर्णा नित्याः सन्ति मनोहराः ॥४२॥

अर्थ–मागधद्वार के ऊपर जो तोरणद्वार है, उसके ऊपर दिक्कुमारियों के समूह से व्याप्त, मन

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

को हरण करने वाले, अनादिनिधन, उत्तुंग और पंक्तिबद्ध मणिमय भवन हैं और इन भवनों के ऊपर मंगल द्रव्यों से विभूषित, देदीप्यमान रत्नमय अनेक जिनबिम्ब अवस्थित हैं ॥४१-४२॥

निर्गमद्वार आदि के व्यास का कथन–

ह्रदस्य निर्गमद्वारं कुण्डस्य च महाम्बुधेः।
प्रवेशद्वारमस्त्येव व्यासेन समविस्तृतम् ॥४३॥

अर्थ–पद्म सरोवर गंगा के निर्गम द्वार की चौड़ाई गंगा के निर्गम व्यास के सदृश अर्थात् ६$\frac{१}{४}$ योजन है। कुण्ड का व्यास और लवण समुद्र के गंगा प्रवेश द्वार का व्यास गंगा के प्रवेश व्यास के सदृश अर्थात् ६२$\frac{१}{२}$ योजन प्रमाण है ॥४३॥

गङ्गाया द्वारविस्तारात्सर्वे ते द्वारतोरणाः।
अर्धाधिकेन तद्व्यासेनोन्नता निखिला मताः ॥४४॥
ह्रदकुण्डसमुद्राणां निर्गमद्वारपंक्तिषु।
प्रवेशद्वारसर्वेषु गंगादिसरितां भवेत् ॥४५॥

अर्थ–गंगा के समस्त तोरण द्वारों का जितना-जितना विस्तार है, अपने-अपने उन व्यासों (विस्तारों) का डेढ़ गुणा उन तोरण द्वारों की ऊँचाई है। गंगा आदि सभी नदियों के तालाब, कुण्ड और समुद्र सम्बन्धी निर्गम द्वार व प्रवेश द्वार होते हैं ॥४४-४५॥

तोरणद्वारों का विशेष वर्णन–

क्रोशद्वयावगाहत्वं तोरणानि महान्ति च।
तोरणेषु जिनेन्द्राणां प्रतिमा दिव्यमूर्तयः ॥४६॥
तोरणोपरिभागेषु दिक्कन्यावास पंक्तयः।
भवन्ति शाश्वता रम्या विश्वेषु मणितेजसः ॥४७॥

अर्थ–दो कोस है नींव जिनकी, ऐसे महान् तोरण द्वारों के उपरिम भाग में दिक्कन्याओं के अकृत्रिम, रमणीक और पंक्तिबद्ध आवास भवन हैं और उन समस्त तोरण भवनों पर जिनेन्द्र भगवान् की देदीप्यमान मणिमय दिव्य प्रतिमाएँ हैं ॥४६-४७॥

जम्बूद्वीपस्थ समस्त कुण्ड आदि के व्यास आदि का वर्णन–

कुण्डतद्द्वीपशैलानां तद्गृहाणां च वारिधेः।
गंगादिक प्रवेशद्वाराणां व्यासादयोऽखिलाः ॥४८॥
द्विगुण द्विगुणा ज्ञेयाः सीतोदान्तास्ततोऽपरे।
अर्धार्धश्च भवेयुस्त्रि क्षेत्रेषु रम्यकादिषु ॥४९॥

अर्थ–सीतोदा नदी अर्थात् विदेह पर्यन्त स्थित नदी पतन के कुण्ड, कुण्ड सम्बन्धी उपद्वीप (टापू), इनके ऊपर स्थित पर्वत और पर्वतों के ऊपर स्थित गृह तथा समुद्र में गंगानदियों के प्रवेश द्वारों

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

की चौड़ाई एवं ऊँचाई का प्रमाण उत्तरोत्तर दूना-दूना और इसके आगे रम्यक आदि तीन क्षेत्र सम्बन्धी नारी नरकान्ता आदि नदियों के पतन सम्बन्धी कुण्ड आदि का प्रमाण क्रमशः अर्ध-अर्ध हीन जानना चाहिए ॥४८-४९॥

अब पद्म आदि सरोवरों से निकलने वाली नदियों के प्रवेश व्यास आदि को प्राप्त करने के लिये नियम निर्धारित करते हैं-

गंगादिसरितामादौ स्वह्रदान्निर्गमे च यः।
स्वव्यासो योऽवगाहः स भवेद् दशगुणो हि सः ॥५०॥

अर्थ-अपने-अपने सरोवरों से निकलने वाली गंगा आदि नदियों के अपने-अपने निर्गम व्यास और अवगाह से अपना-अपना प्रवेश व्यास और अवगाह दस गुणित होता है ॥५०॥

विशेषार्थ-जैसे पद्म सरोवर से निकलने वाली गंगा सिन्धु का निर्गम व्यास ६ $\frac{१}{४}$ योजन (२५ कोस) और निर्गम गहराई $\frac{१}{२}$ कोस है, अतः इन नदियों का समुद्र में प्रवेश करते समय व्यास (६ $\frac{१}{४}$ × १०) = ६२ $\frac{१}{२}$ योजन और अवगाह ($\frac{१}{२}$ कोस × १०) = ५ कोस प्रमाण होगा। यही नियम सर्वत्र जानना चाहिए।

गंगा के सदृश सिन्धु का कथन-

अब्धेः प्रवेशासद्द्वारेषु गंगायाः समानका।
ऋजुव्यासावगाहाद्यैः सिन्धुर्गतापरार्णवम् ॥५१॥

अर्थ-पश्चिम समुद्र में जाने वाली सिन्धु नदी के समुद्र प्रवेश द्वार आदि में व्यास, अवगाह एवं सीधे प्रवाह आदि का प्रमाण गंगा के सदृश है ॥५१॥

अब अवशेष नदियों के निर्गम आदि का संक्षिप्त कथन करते हैं-

रोहिन्महादिपद्मस्य दक्षिणद्वार निर्गता।
क्षेत्रं हैमवतं प्राप्य गता पूर्वाख्यसागरम् ॥५२॥
पद्मस्यास्योत्तरद्वाराद्रोहिताख्या विनिर्गता।
जघन्यभोगभूमध्येन पश्चिमाम्बुधिं गता ॥५३॥
इत्येवं सरितस्तिस्त्रः पद्मह्रदाद् विनिर्गताः।
पुण्डरीकह्रदात्तिस्त्रो नद्यः शेषेभ्य एव च ॥५४॥
ह्रदेभ्यो निर्गते द्वे द्वे नद्यौ ह्यन्योन्य मिश्रिते।
विस्तरं सुखबोधाय संवक्ष्येऽतः पृथक् पृथक् ॥५५॥

अर्थ-रोहित् नदी महापद्म सरोवर के दक्षिण द्वार से निकलकर हैमवत क्षेत्र अर्थात् जघन्य भोगभूमि को प्राप्त करती हुई पूर्व समुद्र में गिरी है। रोहितास्या नदी पद्मसरोवर के उत्तर द्वार से निकलकर जघन्य भोगभूमि अर्थात् हैमवत क्षेत्र के मध्य में से बहती हुई पश्चिम समुद्र को प्राप्त हुई

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है। इस प्रकार पद्मह्रद से गंगा, सिन्धु और रोहितास्या ये तीन नदियाँ निकलीं हैं और पुण्डरीक सरोवर से सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा ये तीन नदियाँ निकलीं हैं शेष सरोवरों से एक दूसरे से मिश्रित होती हुई दो-दो नदियाँ निकलीं हैं। अर्थात् महापद्म से रोहित् और हरिकान्ता, तिगिञ्छ से हरित् और सीतोदा, केसरी से सीता और नरकान्ता तथा महापुण्डरीक से नारी और रूप्यकूला ये दो-दो नदियाँ निकलीं हैं। (महापद्म से रोहित् और हरिकान्ता तथा तिगिञ्छ से हरित् और सीतोदा आदि का निकलना ही अन्योन्य मिश्रण है)। सरलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त कराने के अभिप्राय से अब इन नदियों का पृथक् पृथक् वर्णन क्रिया जा रहा है ॥५२-५५॥

अथ पद्मह्रदस्य पश्चिमदिग्भागे द्वि क्रोशावगाहं क्रोशाधिक षट्योजन विस्तृतं सार्धक्रोशाधिक नवयोजनोन्नतं जिनेन्द्रबिम्बदिक्कन्यावासाद्यऽलंकृतं तोरणद्वारमस्ति। तस्मात्तोरणद्वारात् सिन्धुनदी अर्ध-क्रोशावगाहा, क्रोशाग्रषड्योजनव्यासा निर्गत्य पर्वतस्योपरि ऋज्वी पश्चिमदिशि पञ्चशतयोजनानि गत्वा गव्यूतिद्वयेन सिन्धुकूटं विहाय दक्षिणाभिमुखी भूय किञ्चिदधिकार्धक्रोशाग्रपञ्चशतत्रयोविंशति-योजनान्येत्यक्रोशाधिकषड्योजनव्यासया द्वि क्रोशाय तया द्वि क्रोशस्थूलया वज्रप्रणाल्या गिरेस्तटाद्भूमौ पतति।

तत्र सार्धद्विषष्टियोजनविस्तीर्णं, दशयोजनावगाहं, रत्नवेदीद्वारतोरणाद्यलंकृतं, शाश्वतं कुण्डं विद्यते। कुण्डमध्ये जलाद् द्विक्रोशोच्छ्रितोष्टयोजनविस्तीर्णः सलदाख्यो द्वीपोऽस्ति। द्वीपो मध्ये दशयोजनोत्तुंगः मूले चतुर्योजन विस्तृतो, मध्ये द्वियोजनव्यासः, शिखरे योजनैकविस्तारः वज्रमयो गिरिरस्ति। तस्याद्रेर्मूर्ध्नि-क्रोशैकोन्नतं भूतले, सार्धक्रोशदीर्घं मध्ये, क्रोशैकायतम्शिखरे अर्धक्रोशायामं सार्धद्विशतधनुर्व्यासं। पद्मकर्णिका सिंहासनस्थ जिनबिम्बालंकृतं। चत्वारिंशद्धनुर्व्यासाशीति, चापोन्नतद्वाराङ्कितं, चतुर्गोपुरवेदिका वनखण्डादि-वेष्टितं दिव्यं गृहमस्ति। दशयोजनविस्तीर्णा सा सिन्धुधारा शतयोजनोत्सेधा। पञ्चविंशतियोजनान्यचलं मुक्त्वा स्नानधारेवतदग्रस्थश्रीजिनबिम्बाङ्गे वहति। ततः कुण्डस्थदक्षिणद्वारेणनिर्गत्य विजयार्धस्य तिमिश्रगुहाद्वारे देहलीतलं प्रविश्याष्टयोजनविस्तीर्णा दक्षिणभरतार्ध भूतलमागत्य पश्चिमाभिमुखीभूय सार्धद्विषष्टि योजन विस्तृत त्रिक्रोशाधिक त्रिनवतिर्योजनोतुङ्ग तोरणस्थश्रीजिनबिम्ब, दिक्कन्यावासाद्यलंकृत प्रभासामरद्वारेण सार्द्धं द्विषष्टि योजनविस्तारा पञ्चक्रोशावगाहा सिन्धुनदी पश्चिमाम्बुधिं प्रविष्टा। महापद्मह्रदस्य दक्षिणदिग्भागे सार्धद्वादशयोजनविस्तारं, त्रिक्रोशाधिकाष्टादशयोजनोच्छ्रितं। द्विक्रोशावगाहं जिनबिम्बदिक्कन्याप्रासादादिभूषितं सतोरणं वज्रद्वारं स्यात्। तद् द्वारात्सार्धद्वादशयोजनविस्तीर्णा क्रोशैकावगाहा-रोहिन्नदी निर्गत्य दक्षिणदिशि-द्रहव्यासोनाचलव्यासार्ध भूतलमागत्य गिरेस्तटात्सार्ध द्वादशयोजनविस्तृता योजनैकस्थूला योजनैकदीर्घा गोमुखाकृतिवज्रप्रणाल्याधो भूतले पतति। तत्रपञ्चविंशत्यग्रशतयोजन विस्तृतं विंशतियोजनावगाहं मणिवेदिका द्वारतोरणादि मण्डितं कुण्डं स्यात्। तन्मध्ये जलाद्वियति षोडश योजन विस्तीर्णो द्वीपोस्ति। तस्य मध्ये विंशतियोजनोत्तुङ्गो मूलेऽष्टयोजन व्यासो, मध्ये चतुर्योजनविस्तारो, मस्तके द्वियोजन

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विस्तृतो वज्रमयोऽचलोऽस्ति। तस्य मूर्ध्नि द्विक्रोशोच्छ्रितं, भूतले त्रिकोशायामं, मध्ये द्विक्रोशायतं, शिखरे क्रोशैकदीर्घं पञ्चशतचापव्यासं कमलकर्णिकासिंहासनस्थ जिन प्रतिमाद्यलंकृतं। अशीतिचापविस्तृतं षष्ट्यधिकशतशरासनोत्सेधद्वारान्वितं चतुर्गोपुरवनवेदिकादि भूषितं दिव्यं प्रासादं भवति। विंशतियोजन-विस्तृता द्विशतयोजनदीर्घा पञ्चशद् योजनान्यद्रिं विहाय जिनमभिषेक्तु कामेव गृहाग्रस्थ जिनप्रतिमाङ्गे वहति सा रोहित् नदी। ततः कुण्डस्य दक्षिणद्वारान्निर्गत्य हैमवतक्षेत्रमध्ये समागत्य तत्रस्थ नाभिगिरिं योजनार्धेनास्पर्शन्ती तस्यैवार्ध प्रदक्षिणां कृत्वा पञ्चविंशतियुतशतयोजनविस्तारा-सार्धद्वियोजनावगाहा पञ्चविंशत्यग्रशतयोजन विस्तृता-सार्धसप्ताशीतियुतशतयोजनोत्तुंग द्विक्रोशावगाहार्धयोजन बाहुल्य तोरणस्यार्हत्प्रतिमादिक्कन्या-वासाद्यलंकृत रोहित्प्रवेशद्वारेणरोहित्सरित् पूर्वसमुद्रं प्रविष्टा। हिमवत्पर्वते पद्महृदस्य व्यासोत्सेधाद्यैर्महा-पद्महृदस्य दक्षिणद्वारं सममुत्तरदिशि द्वारमस्ति। तद्द्वाराद् विस्तारावगाहादिभिः रोहित्सदृशी रोहितास्या निर्गत्योत्तराभिमुखा द्रह व्यासोनार्धाचलतटमागत्य प्रागुक्त व्यासादि सम प्रणालिकया विंशतियोजन व्यासा शतयोजन दीर्घा आगमोक्त योजनैरद्रि मुक्त्वाधो भूतलं पतति। तत्र व्यासाद्यैः रोहित्समाः कुण्डद्वीपाचलगृहादयो विज्ञेयाः। ततः कुण्डस्थोत्तर द्वारेण निर्गत्य हैमवत् क्षेत्रमध्यस्य नाभिगिरिं योजनार्धेन विहाय तस्यार्धे प्रदक्षिणां कृत्वा व्यासाद्यैः रोहित्समानारोहितास्या प्रागुक्त विस्तारादिभिः पूर्वद्वारसमापरद्वारेण पश्चिमार्णवं प्रविष्टा। निषधपर्वतस्थ तिगिञ्छाख्य ह्रदस्य दक्षिणदिग्भागे पञ्चविंशति योजन विस्तृतं सार्धसप्तत्रिंशद्योजनोन्नतं द्वि क्रोशावगाहं तोरणार्हत्प्रतिमा दिक्कन्यावासाद्यलंकृतं वज्रद्वारमस्ति। तद्द्वारात्पञ्चविंशति योजन विस्तारा द्वि क्रोशावगाहा हरिन्नदी निर्गत्य द्रहव्यासोनाद्रि व्यासार्धमागत्य शैलस्य तटात् पञ्चविंशति योजन व्यास द्वि योजन बाहुल्य द्वि योजनायत गोमुखप्रणालिकया चत्वारिंशद्योजन विस्तीर्णा चतुःशतयोजन दीर्घा, शतयोजनान्यद्रिं मुक्त्वाधो भू भागे पततिस्म। तत्रसार्ध द्विशतयोजन विस्तीर्णं चत्वारिंशद्योजनावगाहं रत्नवेदीद्वारतोरणाद्यलंकृतं कुण्डं विद्यते। तन्मध्ये जलादाकाशे द्वात्रिंशद्योजनव्यासो द्वीपः स्यात्। द्वीपमध्ये चत्वारिंशद्योजनोन्नतः, मूले षोडशयोजनविष्कम्भः, मध्येऽष्टयोजन विस्तारोऽग्रे चतुर्योजनव्यासोऽचलोऽस्ति तस्य शिरसि योजनोच्छ्रितं, भूतले सार्धयोजनदीर्घं मध्ये योजनायतं, मूर्ध्नि द्वि क्रोशायामं, अर्धक्रोश व्यासं-

षष्ट्यग्रशतधनुः विस्तीर्णं विंशत्यधिक त्रिशतचापोच्च द्वाराङ्कितं, चतुर्गोपुर वनवेदिकादि शोभितं, पद्मकर्णिका सिंह विष्टरार्हद् बिम्बाद्यलंकृतं, दिव्यं भवनं स्यात्। तज्जिनबिम्बाङ्गे प्रवहन्ती सा हरित्कुण्डस्थ दक्षिणद्वारेण निर्गत्य हरिक्षेत्र मध्य भूभागमागत्य तत्रस्थ नाभिगिरिं योजनार्धेन मुक्त्वा तस्यार्धे प्रदक्षिणां कृत्वा सार्ध द्विशत योजन व्यासा पञ्चयोजनावगाहा स्वप्रवेशद्वारेण पूर्वाब्धिं गता। सार्धद्विशतयोजन विस्तीर्णं पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशतयोजनोत्तुङ्गं द्विक्रोशावगाहं अर्धयोजनस्थूलं, तोरणार्हन्मूर्तिदिक्कन्यावासादि भूषितं तद्धरित् नदी प्रवेशद्वारं ज्ञातव्यं।

महाहिमवत्पर्वतस्थं महापद्मद्रहस्योत्तरदिशि व्यासाद्यैः प्रागुक्त तिगिञ्छदक्षिणद्वारप्रमं द्वारमस्ति। तदुत्तरद्वारान्निर्गत्य हरित्समव्यासावगाहा हरिकान्ता सरित् ह्रदविस्तारोनाचलव्यासार्धमेत्य

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

व्यासाद्यैर्हरित्प्रणाली–समप्रणालिकया चत्वारिंशद्योजनविस्तीर्णा द्विशतयोजनोत्सेधा श्रुतोक्तयोजनैरचलान्तरं कृत्वाद्रेर्मस्तकाद्भूतलं पतति। तत्र विस्ताराद्यैः प्रागुक्तहरित्पात समानाः कुण्ड द्वीपाद्रिगृहादयः सन्ति। ततः कुण्डोत्तर द्वारानिर्गत्य हरिक्षेत्रमध्यभागं गत्वा तत्रस्थ नाभिगिरिं योजनार्धेन विमुच्य तस्यार्धप्रदक्षिणां कृत्वा हरित्सम विस्तारावगाहा हरिकान्ता नदी व्यासादिभिः प्रागुक्तपूर्वाब्धिद्वारप्रम स्वप्रवेशद्वारेण पश्चिम समुद्रं प्रविष्टा।

अथ नीलपर्वतस्थितकेसरिद्रहस्य दक्षिणदिग्भागे पञ्चाशद्योजन विस्तीर्णं पञ्चसप्तति योजनोत्सेधं द्विक्रोशावगाहं तोरणार्हद्बिम्ब दिक्कन्यावासादि मण्डितं वज्रद्वारं स्यात्। तद् द्वारात्पञ्चाशद्योजनव्यासा योजनावगाहा सीतानदी निर्गत्य गिरिशिरसि द्रहव्यासोनाचलव्यासार्धं शैलतटं चागता तस्मिन्नद्रौ पञ्चाशद्योजन विस्तारा चतुर्योजनायता चतुर्योजनस्थूला गोमुखाकारा प्रणाली भवति। अचलाधो भूतले पञ्चशतयोजन विस्तीर्णं अशीतियोजनावगाहं रत्नवेदीद्वारतोरणादि मण्डितं कुण्डं स्यात्। तन्मध्ये तोयात् खे चतुःषष्टियोजन विष्कम्भो द्वीपोऽस्ति। तन्मध्यभागे अशीति योजनोच्छ्रितः, मूले द्वात्रिंशद्योजन विस्तारः, मध्ये षोडशयोजनविष्कम्भः, शिखरे अष्टयोजनव्यासः गिरिरस्ति। तस्य मूर्ध्नि द्वियोजनोन्नतं, महीतले त्रियोजन दीर्घं मध्ये द्वियोजनायामं, मस्तके योजनायतं, क्रोशव्यासं, विंशत्यधिक त्रिशतविस्तृतं, चत्वारिंशदधिक षट्शतचापोत्तुङ्ग द्वारान्वितं, चतुर्गोपुर वेदी वनाद्यलंकृतं दिव्यं गृहं स्यात्। तन्मूर्ध्नि पद्मकर्णिकान्तः सिंहासनस्थ शाश्वतं जिनबिम्बं विद्यते। सा सीता जिनबिम्बमस्तके प्रवहन्ती अशीति योजन विस्तीर्णा, चतुःशतयोजनोत्सेधा, द्विशतयोजनैरद्रिमस्पर्शन्ती कुण्डद्वारेण निर्गत्योत्तरकुरुसंज्ञोत्कृष्ट भोग भूमध्येन गत्वा मेरुसमीपे माल्यवन्तं गजदन्तपर्वतं भित्त्वा प्रदक्षिणेन योजनार्धेन महामेरुं विहाय पूर्वभद्रशालवनपूर्वविदेहक्षेत्रमध्येन, पञ्चशत–योजनविष्कम्भा, दशयोजनावगाहा स्वप्रवेश द्वारेण पूर्वाब्धिं प्रविष्टा। पञ्चशतयोजन व्यासं सार्धसप्तशत–योजनोन्नतं द्वि क्रोशावगाहं अर्धयोजनस्थूलं तोरणार्हद्–बिम्बदिक्कन्यावासादि संयुतं तत्प्रवेशद्वारं विज्ञेयं।

निषधाद्रिस्थ तिगिञ्छद्रहस्य व्यासादिभिः सीतानिर्गम द्वारसमोत्तरद्वारेण सीतातुल्यव्यासावगाहा सीतोदा निर्गत्याचलतटमागत्य विस्ताराद्यैर्नीलगिरिप्रणालीसमप्रणालिकयाधो भूभागे पतति। तत्र विष्कम्भाद्यैः सीतापातसमानाः कुण्डद्वीपाद्रिगेहादयः स्युः। अशीतियोजनविस्तारा, चतुः शतयोजन दीर्घा, द्विशतयोजनैः शैलं मुक्त्वा जिनार्चांगे प्रवहन्ती सीतोदा नदी कुण्डस्योत्तर द्वारेण निर्गत्य देवकुरुनामोत्तमभोगभूमिक्षेत्रमध्येन गत्वा मेरुसमीपे गजदन्ताचलं भित्त्वा प्रदक्षिणेन क्रोशद्वयेन मेरुं विमुच्य पश्चिम भद्रशाल वनस्य मध्येनापरविदेहान्तर्भागेनैत्य सीतानिभ, व्यासावगाहा, व्यासाद्यैः सीताप्रवेशपूर्वाब्धिद्वारसमपश्चिमद्वारेणापराम्बुधिं गता।

रुक्मिपर्वतस्थमहापुण्डरीकद्रहस्य दक्षिणद्वारेण निर्गत्य नारी सरित् शैलतटप्रणाल्या द्विशतयोजनो–त्सेधाधोभूस्थ कुण्डमध्ये पतित्त्वा तद्दक्षिण द्वारेण निर्गत्य रम्यकक्षेत्रमध्ये गत्वा तत्रस्थ नाभिगिरि क्रोशद्वयेन विहाय तस्यैवार्धप्रदक्षिणां कृत्वा पूर्वसमुद्रं प्रविष्टा।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नीलपर्वतस्थकेसरीह्रदस्योत्तरद्वारेण नरकान्तानदी निर्गत्याद्रि तटमागत्य तत्प्रणालिकया चतुःशत-योजनोच्छिताधोधरातले पतित्त्वा तत् कुण्डद्वारेण चलित्वा रम्यकक्षेत्रमध्य भूतलमभ्येत्य तत्रस्थं नाभिगिरिं योजनाऽर्धेन त्यक्त्वा तस्यार्ध प्रदक्षिणां विधाय पश्चिमार्णवं गता अस्मिन् रम्यकाख्य मध्यमभोगभूमिक्षेत्रे ह्रदद्वयनिर्गमद्वार व्यासोन्नति नार्यादि द्वि नदी व्यासावगाहप्रणालीद्वयविस्तारादिपर्वतनद्यन्तरधाराविस्तार-कुण्डद्वीपाचलगृहादिपूर्वापराब्धिद्वारव्यासोच्छित्यादि सरिदन्तविष्कम्भादयोऽखिलाः योजनाद्यैः हरिक्षेत्र समाना मंतव्याः।

शिखरिस्थपुण्डरीकद्रहस्यदक्षिणद्वारेण निर्गत्य स्वर्णकूलाख्यानदी पर्वतान्त प्रणालिकया शतयोजनदीर्घधारा कुण्डे निपत्य तद्दक्षिणद्वारेण चलित्वा हैरण्यवतक्षेत्र मध्ये गत्वा तत्रस्थ नाभिगिरिं गव्यूतिद्वयेन मुक्त्वा तस्यार्ध प्रदक्षिणां कृत्वा पूर्वसमुद्रं गता।

रुक्मिशैलस्थित महापुण्डरीक ह्रदस्योत्तर द्वारेण निर्गत्य रूप्यकूलाह्वया सरित् द्विशतयोजनोत्सेधा गिरिः प्रणाल्या कुण्डेऽवतीर्य-तदुत्तर द्वारेण निर्गत्य हैरण्यवताख्यजघन्यभोगभूमिक्षेत्रमध्ये गत्वा तत्रस्थ नाभिगिरिं योजनार्धेन विहाय तस्यार्धप्रदक्षिणां विधाय पश्चिमाब्धिं प्रविष्टा। अस्मिन् हैरण्यवतक्षेत्रे प्रागुक्ता द्रहनदीनिर्गमद्वाराद्याः सरित्प्रवेशाब्धिद्वारान्ताः सर्वे व्यासादिभिः हैमवतक्षेत्रसादृश्या ज्ञातव्याः।

शिखरिशैलस्थपुण्डरीकह्रदस्य पूर्वद्वारेण निर्गत्य पञ्चशतयोजनानि गत्वा योजनार्धेन रक्ताकूटं विहायदक्षिणाभिमुखीभूय किञ्चिदधिकार्धक्रोशाग्रपञ्चशतयोजनानि गत्वाऽचल प्रणालिकया कुण्ड मध्ये पतित्वा तदुत्तर द्वारेण निर्गत्य विजयार्ध गुहा देहली तले प्रविश्योत्तरैरावत क्षेत्रार्धभूभागं गत्वा प्राग्मुखीभूय रक्तानदी स्वप्रवेशद्वारेण पूर्वसमुद्रं गता।

तस्यैव पुण्डरीकद्रहस्य पश्चिमद्वारेण निर्गत्य रक्तोदा सरित् पञ्चशतयोजनानि गत्वा क्रोशद्वयेन रक्तोदा कूटं त्यक्त्वा गिरेस्तटमागत्य तत्प्रणाल्याधोभूस्थकुण्डे निपत्य तदुत्तरद्वारेण चलित्वा विजयार्ध गुहाद्वार देहलीतले प्रविश्योत्तरैरावतार्धभूतलं गत्वा पश्चिमाभिमुखी भूयापर सागरं प्रविष्टा। अनयोर्नद्योर्ह्रद निर्गम-द्वारव्यासादिप्रणालीविस्तरादिनदीपर्वतान्तरधारोच्छितिविस्तृतिकुण्ड द्वीपाद्रि गृहादिसमुद्र प्रवेशद्वार विष्कम्भादयः समस्ताः गंगासिन्धुनदी समानाः ज्ञातव्या।

सिन्धु नदी का सविस्तार वर्णन–

पद्मसरोवर की पश्चिम दिशा में दो कोस नींव वाला, ६ $\frac{१}{४}$ योजन चौड़ा और ९ योजन १ $\frac{१}{२}$ कोस ऊँचा जिनबिम्ब एवं दिक्कन्याओं के आवासों (भवनों) से अलंकृत एक तोरणद्वार है। अर्ध कोस गहरी और ६ $\frac{१}{४}$ योजन चौड़ी सिन्धु नदी उस तोरण द्वार से निकलकर हिमवान् पर्वत के ऊपर पश्चिम दिशा में अर्थात् सिन्धु कूट के सम्मुख सीधी ५०० योजन जाकर सिन्धु कूट को दो कोस ($\frac{१}{२}$ यो.) दूर से ही छोड़ती हुई दक्षिणाभिमुख होती है और साधिक अर्ध कोस से अधिक ५२३ योजन आगे जाकर हिमवान् पर्वत के तट पर स्थित ६ $\frac{१}{४}$ योजन चौड़ी, दो कोस लम्बी और दो कोस मोटी वज्रमय प्रणाली से (पर्वत के तट से) भरत भूमि पर गिरती है। वहाँ ६२ $\frac{१}{२}$ योजन चौड़ा और दश योजन गहरा, रत्नवेदी

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

से वेष्टित तथा तोरणद्वार आदि से अलंकृत एक शाश्वत कुण्ड है। उस कुण्ड के मध्य में जल से दो कोस ऊँचा और आठ योजन चौड़ा एक सलद नाम का द्वीप (टापू) है। उस द्वीप के मध्य में दश योजन ऊँचा, मूल में चार योजन चौड़ा, मध्य में दो योजन और शिखर पर एक योजन चौड़ा वज्रमय एक पर्वत है। उस पर्वत के शिखर पर एक कोस ऊँचा, भूतल पर १$\frac{१}{२}$ कोस लम्बा, मध्य में एक कोस लम्बा और शिखर पर अर्ध कोस लम्बा गृह है। इस गृह (सिन्धुकूट) का अभ्यन्तर व्यास २५० धनुष है। इसके द्वार अर्थात् दोनों किवाड़ ४० धनुष चौड़े और ८० धनुष ऊँचे हैं। यह सिन्धु देवी का गृह चार गोपुर द्वारों से युक्त और वेदिका एवं वनखण्ड आदि से वेष्टित है। इस महल के अग्रभाग पर पद्मकर्णिकास्थ सिंहासन जिनबिम्ब से अलंकृत है। दश योजन चौड़ी और १०० योजन ऊँची सिन्धु नदी की यह जलधारा हिमवान् पर्वत को छोड़कर अभिषेक की धारा के समान हिमवान् पर्वत से पच्चीस योजन दूरी पर भवन के अग्रभाग पर स्थित जिनदेव के शरीर पर गिरती है। इसके बाद उस कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकलकर [दक्षिण की ओर बहती हुई] विजयार्ध की तिमिश्रगुफा के द्वार की देहली के नीचे प्रवेश करती हुई आठ योजन विस्तृत (सिन्धु नदी) अर्ध दक्षिण भरतक्षेत्र की भूमि पर आकर पश्चिमाभिमुख होती हुई ६२$\frac{१}{२}$ योजन चौड़ी और पाँच कोस गहरी वह सिन्धुनदी ६२$\frac{१}{२}$ योजन चौड़े, ९३ योजन ३ कोस ऊँचे तोरणस्थ जिनबिम्ब और दिक्कुमारियों के भवनों से अलंकृत, तथा प्रभास देव है अधिपति जिसका, ऐसे प्रभास द्वार से पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट हो जाती है।

रोहित् नदी का विवेचन-

महापद्म सरोवर की दक्षिण दिशा में १२$\frac{१}{२}$ योजन चौड़ा, १८ योजन ३ कोश ऊँचा, दो कोस नींव वाला, जिनबिम्ब एवं दिक्कन्याओं के भवनों से विभूषित तथा तोरण सहित वज्रमय एक द्वार है। १२$\frac{१}{२}$ योजन चौड़ी और एक कोश गहरी रोहित् नदी उस द्वार से निकलकर द्रह व्यास से कम कुलाचल के अर्ध व्यास प्रमाण अर्थात् (४२१०$\frac{१०}{१९}$ -१०००=३२१०$\frac{१०}{१९}$ ÷ २)=१६०५$\frac{५}{१९}$ योजन भूतल पर (महाहिमवान् पर्वत पर) आगे आकर कुलाचल के तट से १२$\frac{१}{२}$ योजन चौड़ी, एक योजन मोटी और एक योजन लम्बी गोमुखाकृति वज्रमय प्रणाली से नीचे भूतल पर (हैमवत क्षेत्र में) गिरती है। जहाँ यह रोहित् नदी गिरती है, वहाँ १२५ योजन चौड़ा और २० योजन गहरा, मणिमय वेदिका, द्वार एवं तोरणादि से मण्डित एक कुण्ड है। उस कुण्ड के मध्य में जल से आकाश में [एक योजन ऊँचा और सोलह योजन चौड़ा] द्वीप है। उस द्वीप के मध्य में बीस योजन ऊँचा मूल में आठ योजन चौड़ा, मध्य में चार योजन और शिखर पर दो योजन चौड़ा वज्रमय एक पर्वत है। उस पर्वत के शिखर पर दो कोस ऊँचा, भूतल पर तीन कोस लम्बा, मध्य में दो कोस लम्बा और मस्तक पर एक कोस लम्बा, ५०० धनुष चौड़ा, कमलकर्णिका के ऊपर स्थित सिंहासनस्थ जिन प्रतिमा आदि से अलंकृत, ८० धनुष चौड़े और १६० धनुष ऊँचे द्वार से युक्त, चार गोपुर, वन एवं वेदिका आदि से विभूषित एक दिव्य महल (रोहित् कूट) है। बीस योजन चौड़ी वह रोहित् नदी २०० योजन ऊँची जलधारा के साथ महाहिमवान्

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पर्वत को छोड़कर ५० योजन दूरी पर जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक करने की इच्छा से ही मानो भवन के अग्रभाग पर स्थित जिनेन्द्र प्रतिमा के शरीर पर गिरती है। इसके बाद उस कुण्ड के दक्षिणद्वार से निकलकर हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) को प्राप्त कर वहाँ स्थित (श्रद्धावान) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से ही छोड़ती हुई तथा उसी नाभिगिरि की अर्ध प्रदक्षिणा करती हुई अर्थात् पूर्वाभिमुख होकर पश्चात् फिर दक्षिणाभिमुख होती हुई १२५ योजन चौड़ी और २$\frac{१}{२}$ योजन गहरी वह रोहित् नदी १२५ योजन चौड़े, १८७ $\frac{१}{२}$ योजन ऊँचे, $\frac{१}{२}$(अर्ध) योजन मोटे, दो कोस अवगाह (नींव) वाले, तोरणस्थ अर्हन्त प्रतिमाओं एवं दिक्कन्याओं के आवासों से अलंकृत रोहित् देव है अधिपति जहाँ का, ऐसे रोहित् द्वार से पूर्व समुद्र में प्रविष्ट करती है।

रोहितास्या नदी का वर्णन–

हिमवान्पर्वतस्थ पद्म सरोवर की उत्तर दिशा में एक द्वार है, जिसके व्यास आदि का प्रमाण महापद्म सरोवर की दक्षिण दिशा में स्थित द्वार के समान है। रोहित् नदी के व्यास और अवगाह के समान जिसका व्यास और अवगाह है ऐसी रोहितास्या नदी उस पद्मसरोवर के उत्तर द्वार से निकलकर उत्तराभिमुख होती हुई ह्रद के व्यास से हीन हिमवान् पर्वत के अर्धव्यास प्रमाण अर्थात् (१०५२$\frac{१२}{१९}$ – ५००=५५२$\frac{१२}{१९}$÷२) = २७६ $\frac{६}{१९}$ योजन आगे तट पर आकर पहले कही हुई रोहित् की प्रणालिका के व्यासादि के सदृश प्रणालिका से बीस योजन चौड़ी और १०० योजन ऊँची रोहितास्या नदी आगमोक्त योजनों द्वारा पर्वत को छोड़ती हुई हैमवत क्षेत्र के भूतल पर गिरती है। जहाँ यह नदी गिरती है वहाँ स्थित कुण्ड, द्वीप, पर्वत और गृह आदि के व्यास आदि का प्रमाण रोहित् नदी सम्बन्धी कुण्ड आदि के व्यासादि के समान जानना चाहिए। उस कुण्ड के उत्तर द्वार से निकलकर हैमवत क्षेत्र के मध्य में स्थित (श्रद्धावान) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से छोड़कर उसकी अर्ध प्रदक्षिणा करती हुई अर्थात् पश्चिम दिशा में जाकर पश्चात् उत्तराभिमुख होती हुई रोहित् नदी के समान व्यास और अवगाह से युक्त रोहितास्या नदी पूर्वोक्त पूर्व द्वार के व्यासादि के सदृश व्यास वाले पश्चिम द्वार से पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट होती है।

हरित् नदी का सविस्तार वर्णन–

निषध पर्वत के ऊपर स्थित तिगिञ्छ नाम के सरोवर की दक्षिण दिशा में २५ योजन चौड़ा, ३७ $\frac{१}{२}$ योजन ऊँचा, दो कोस गहरा (नींव), तोरणस्थ जिनप्रतिमा और दिक्कन्याओं के आवास (भवनों) आदि से मण्डित एक वज्रमय द्वार है। २५ योजन चौड़ी और दो कोस गहरी हरित् नदी उस द्वार से निकलकर सरोवर के व्यास से हीन पर्वत के अर्धव्यास प्रमाण अर्थात् (१६८४२$\frac{२}{१९}$ – २०००=१४८४ $\frac{१}{१९}$ ÷२) = ७४२१$\frac{१}{१९}$ योजन आगे जाकर निषध कुलाचल के तट से २५ योजन चौड़ी, दो योजन मोटी और दो योजन लम्बी गोमुख प्रणालिका द्वारा ४० योजन चौड़ी और ४०० योजन ऊँची धारा वाली वह हरित् नदी निषध कुलाचल को छोड़कर १०० योजन दूरी पर (हरिक्षेत्र–मध्यम

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भोगभूमि) की पृथ्वी पर गिरती है। जहाँ यह नदी गिरती है वहाँ २५० योजन चौड़ा और ४० योजन गहरा, रत्नों की वेदी, रत्नों का द्वार और रत्नमय तोरण आदि से अलंकृत एक कुण्ड है। उस कुण्ड के मध्य में जल से आकाश में [दो योजन ऊँचा और ३२ योजन चौड़ा] एक द्वीप (टापू) है। उस द्वीप के मध्य में ४० योजन ऊँचा, मूल में १६ योजन चौड़ा, मध्य में आठ योजन चौड़ा और शिखर पर ४ योजन चौड़ा एक पर्वत है। उस पर्वत के शिखर पर एक योजन ऊँचा, भूतल पर १$\frac{१}{२}$ योजन लम्बा, मध्य में एक योजन और अग्रभाग पर अर्ध योजन लम्बा, अर्ध कोस अभ्यन्तर व्यास, १६० धनुष चौड़े और ३२० धनुष ऊँचे द्वार से युक्त, चार गोपुर, वन एवं वेदिका से सुशोभित तथा पद्मकर्णिका पर स्थित सिंहासनस्थ अर्हन्त प्रतिमाओं एवं दिक्कन्याओं के भवनों आदि से अलंकृत एक दिव्य भवन है। उस भवन के अग्रभाग पर स्थित जिनबिम्ब के शरीर पर से बहती हुई वह हरित् नदी कुण्ड के दक्षिणद्वार से निकलकर तथा हरिक्षेत्र (मध्यम भोगभूमि) के मध्य भूभाग में आकर वहाँ स्थित (विजयवान) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से ही छोड़कर उसकी अर्ध प्रदक्षिणा करती हुई अर्थात् पूर्वाभिमुख जाकर पश्चात् दक्षिणाभिमुख होती हुई २५० योजन चौड़ी और पाँच योजन गहरी वह नदी अपने प्रवेशद्वार से पूर्व समुद्र में प्रविष्ट करती है। उस हरित् नदी का समुद्र प्रवेश द्वार २५० योजन चौड़ा, ३७५ योजन ऊँचा, दो कोस गहरा (नींव), अर्ध योजन (दो कोस) मोटा तथा अर्हन्त प्रतिमाओं एवं दिक्कन्याओं के भवनों आदि से अलंकृत तोरणों से युक्त जानना चाहिए।

हरिकान्ता नदी का वर्णन–

महाहिमवान्पर्वतस्थ महापद्म सरोवर की उत्तर दिशा में पूर्व कहे हुए तिगिञ्छ सरोवर के दक्षिण द्वार के व्यास आदि के समान प्रमाण वाला एक द्वार है। हरित् नदी समान व्यास और अवगाह से युक्त हरिकान्ता नदी उस उत्तर द्वार से निकलकर सरोवर के विस्तार से हीन पर्वत के अर्ध व्यास प्रमाण अर्थात् (१०५२$\frac{१२}{१९}$ –५००=५५२$\frac{१२}{१९}$ ÷२)=२७६ $\frac{६}{१९}$ योजन प्रमाण–हिमवान् पर्वत के तट पर्यन्त उत्तर दिशा में जाकर हरित् नदी की प्रणालिका के व्यास आदि के प्रमाण समान प्रणालिका से ४० योजन चौड़ी और २०० योजन ऊँची हरिकान्ता नदी श्रुत (शास्त्र) में कहे हुए योजनों प्रमाण अर्थात् १०० योजनों के द्वारा पर्वत को अन्तरित करती हुई पर्वत के मस्तक से हरिक्षेत्र के भूतल पर गिरती है। जहाँ यह नदी गिरती है वहाँ हरित् नदी के पतन योग्य कुण्ड आदि के विस्तार आदि के समान कुण्ड, द्वीप, पर्वत और गृह आदि हैं। इस प्रकार उस कुण्ड के उत्तर द्वार से निकलकर हरिक्षेत्र–मध्यम भोगभूमि के मध्यभाग पर्यन्त जाकर वहाँ स्थित विजटा (विजयवान) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से छोड़ती हुई उसकी अर्ध प्रदक्षिणा करके अर्थात् पश्चिमाभिमुख होकर पश्चात् उत्तर दिशा में जाती हुई हरित् नदी के समान विस्तार और अवगाह के प्रमाण वाली हरिकान्ता नदी पूर्व कहे हुए पूर्व समुद्र के द्वार के व्यासादिक के प्रमाण के समान प्रमाण वाले अपने प्रवेशद्वार से पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट कर जाती है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सीता नदी का वर्णन–

नील पर्वत पर स्थित केसरी सरोवर की दक्षिण दिशा में ५० योजन चौड़ा और ७५ योजन ऊँचा तथा तोरणस्थ अर्हन्त प्रतिमा और दिक् कन्याओं के भवनों से मण्डित एक वज्रमय द्वार है। ५० योजन चौड़ी और एक योजन गहरी सीता नदी उस द्वार से निकलकर पर्वत के शिखर पर द्रह व्यास से हीन पर्वत के अर्ध व्यास प्रमाण अर्थात् (१६८४२$\frac{२}{१९}$-२०००=१४८४२$\frac{२}{१९}$÷२)=७४२१$\frac{६}{१९}$ योजन आगे कुलाचल के तट पर्यन्त आती है। उस पर्वत पर ५० योजन चौड़ी, चार योजन लम्बी और चार योजन मोटी एक गोमुखाकार प्रणाली स्थित है। पर्वत के नीचे जमीन पर ५० योजन चौड़ा, ८० योजन गहरा तथा रत्नवेदी, रत्नद्वार एवं रत्नों के तोरणों आदि से मण्डित एक कुण्ड है। उस कुण्ड के मध्य में जल से चार योजन ऊँचा और ६४ योजन चौड़ा द्वीप है। उस द्वीप के मध्यभाग में ८० योजन ऊँचा, मूल में ३२ योजन चौड़ा, मध्य में १६ योजन और शिखर पर आठ योजन चौड़ा एक पर्वत है। उस पर्वत के अग्रभाग पर दो योजन ऊँचा, पृथ्वीतल पर तीन योजन लम्बा, मध्य में दो योजन लम्बा और शिखर पर एक योजन लम्बा तथा एक कोस चौड़े अभ्यन्तर व्यास वाला एक दिव्य गृह है, जिसका द्वार ३२० योजन चौड़ा और ६४० योजन ऊँचा है तथा जो चार गोपुर, वेदी एवं वन आदि से अलंकृत है। उस गृह के ऊर्ध्वभाग में पद्मकर्णिका पर सिंहासन स्थित है, जिसमें शाश्वत जिनप्रतिमा विद्यमान रहती है। ८० योजन चौड़ी और ४०० योजन ऊँची वह सीता नदी जिनबिम्ब के मस्तक पर से बहती हुई २०० योजनों द्वारा पर्वत को अन्तरित करती है अर्थात् पर्वत के तट पर स्थित उपर्युक्त प्रणालिका द्वारा नील पर्वत से २०० योजन दूरी पर नीचे गिरती है। इसके बाद सीता कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकलकर दक्षिणाभिमुख होती हुई उत्तरकुरु है नाम जिसका, ऐसी उत्तमभोगभूमि के मध्य से आकर मेरु पर्वत के समीप माल्यवान गजदन्त पर्वत को भेदकर अर्थात् माल्यवान् गजदन्त पर्वत की दक्षिण दिशा सम्बन्धी गुफा में प्रवेश कर प्रदक्षिणा रूप से सुमेरु पर्वत को अर्ध योजन दूर से ही छोड़कर पूर्व भद्रशाल वन एवं पूर्व विदेह क्षेत्र के मध्य से बहती हुई ५०० योजन चौड़ी और १० योजन गहरी सीता नदी अपने प्रवेशद्वार से पूर्व समुद्र में प्रविष्ट होती है। वह समुद्र प्रवेश द्वार ५०० योजन चौड़ा, ७५० योजन ऊँचा, दो कोस गहरा (नींव) और अर्ध योजन मोटा तथा तोरणस्थ अर्हन्त बिम्ब एवं दिक्कन्याओं के आवासों से मण्डित जानना चाहिए।

सीतोदा नदी का विवेचन–

निषधपर्वतस्थ तिगिञ्छ सरोवर के उत्तर द्वार का व्यास आदि सीता निर्गम द्वार के व्यासादि के समान है। सीता सदृश व्यास और अवगाह वाली सीतोदा नदी तिगिञ्छ सरोवर के उस उत्तर द्वार से निकलकर तथा पर्वत के तट पर पहुँचकर नील पर्वतस्थ प्रणाली के व्यास आदि के समान प्रमाण वाली प्रणालिका द्वारा नीचे पृथ्वीतल पर (विदेह क्षेत्रस्थ सीतोदा कुण्ड में) गिरती है। जहाँ सीतोदा गिरती है वहाँ सीतापतन कुण्ड के व्यासादि के सदृश व्यास आदि से युक्त कुण्ड, द्वीप, पर्वत, और गृह आदि

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हैं। ८० योजन चौड़ी और ४०० योजन ऊँची धारा वाली सीतोदा नदी २०० योजनों द्वारा पर्वत को अन्तरित करती हुई जिनेन्द्र भगवान के शरीर पर से बहती है। पश्चात् सीतोदा कुण्ड के उत्तर द्वार से निकलकर देवकुरु नाम वाली उत्तम भोगभूमि क्षेत्र के मध्य से जाकर मेरु पर्वत के समीप (विद्युतप्रभ) गजदन्त पर्वत को भेदकर अर्थात् विद्युतप्रभ गजदन्त पर्वत की उत्तर दिशा सम्बन्धी गुफा में प्रवेश कर प्रदक्षिणा रूप से सुमेरु पर्वत को दो कोस (अर्ध योजन) दूर से ही छोड़कर पश्चिम भद्रशाल वन एवं पश्चिम विदेह क्षेत्र के मध्य से बहती हुई सीता के समान व्यास और अवगाह से युक्त सीतोदा नदी अपने पश्चिम प्रवेशद्वार से पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती है। इसके समुद्र द्वार के व्यास आदि का प्रमाण पूर्व समुद्र के सीता प्रवेशद्वार के व्यास आदि के सदृश ही है।

नारी नदी का वर्णन–

नारी नदी रुक्मी पर्वतस्थ महापुण्डरीक सरोवर के दक्षिण द्वार से निकलकर १६०५$\frac{५}{१९}$ योजन आगे बहती हुई रुक्मी पर्वत के तट भाग पर स्थित प्रणालिका द्वारा २०० योजन ऊपर से नीचे (भूमि पर) स्थित नारी कुण्ड में गिरती है। पश्चात् कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकलकर रम्यक क्षेत्र के मध्यभाग तक बहती हुई वहाँ स्थित (पद्मवान्) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से ही छोड़कर उसी नाभिगिरि की अर्ध प्रदक्षिणा करती हुई पूर्व समुद्र में प्रविष्ट हो जाती है।

नरकान्ता नदी का विवेचन–

नरकान्ता नदी नीलपर्वतस्थ केसरी सरोवर के उत्तर द्वार से निकलकर नील पर्वत के तट पर्यन्त आकर उसकी प्रणालिका द्वारा ४०० योजन ऊँचे से रम्यकक्षेत्र में स्थित नरकान्त कुण्ड में गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के उतर द्वार से निकलकर रम्यकक्षेत्र के मध्यभाग तक आकर वहाँ स्थित (पद्मवान्) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से ही छोड़कर उसकी अर्ध प्रदक्षिणा करती हुई पश्चिम समुद्र को प्राप्त हो जाती है।

इस रम्यक क्षेत्र नाम वाली मध्यम भोगभूमि क्षेत्र सम्बन्धी सरोवर के दोनों निर्गम द्वारों का व्यास एवं उदय, नारी–नरकान्ता दोनों नदियों का निर्गम व्यास एवं अवगाहना, दोनों प्रणालियों का व्यास आदि, पर्वत और नदी पतन का अन्तर, धारा का विस्तार, कुण्ड, द्वीप, पर्वत और गृह आदि तथा पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र के प्रवेश द्वारों के व्यास एवं उदय आदि तथा समुद्र प्रवेश के समय नदियों के व्यास आदि का समस्त प्रमाण हरिक्षेत्र के समान जानना चाहिए।

सुवर्णकूला नदी का वर्णन–

सुवर्णकूला नाम की नदी शिखिरिन् पर्वतस्थ पुण्डरीक सरोवर के दक्षिण द्वार से निकलकर पर्वत के तट पर स्थित प्रणालिका द्वारा १०० योजन मोटी धारा से सुवर्णकुण्ड में गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकलकर हैरण्यवत् क्षेत्र के मध्य में जाकर वहाँ स्थित (गन्धवान) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से ही छोड़ती हुई उसकी अर्ध प्रदक्षिणा करके पूर्व समुद्र में प्रविष्ट हो जाती है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

रूप्यकूला नदी–

रूप्यकूला नाम की नदी रुक्मि पर्वतस्थ महापुण्डरीक सरोवर के उत्तर द्वार से निकलकर २०० योजन ऊँची पर्वत के तट पर स्थित प्रणालिका द्वारा रूप्य कुण्ड में गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के उत्तर द्वार से निकलकर हैरण्यवत नाम की जघन्य भोगभूमि क्षेत्र के मध्य में जाकर वहाँ स्थित (विजयार्ध) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से ही छोड़कर उसकी अर्ध प्रदक्षिणा करती हुई पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती है। इस हैरण्यवत क्षेत्र में पूर्वी में कहे हुए सरोवर के नदी निर्गम द्वार को आदि लेकर समुद्र के नदी प्रवेशद्वार पर्यन्त समस्त व्यास आदि हैमवत क्षेत्र के समान जानना चाहिए।

रक्ता नदी–

शिखरिन् पर्वतस्थ पुण्डरीक सरोवर के पूर्वद्वार से निकलकर शिखरी पर्वत पर पूर्वाभिमुख ५०० योजन जाकर रक्ता कूट को अर्ध योजन दूर से ही छोड़कर दक्षिण दिशा में उसी पर्वत पर अर्ध कोस अधिक ५०० योजन आगे जाकर पर्वत के तट पर स्थित प्रणालिका द्वारा रक्ता कुण्ड में गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकलकर विजयार्ध के गुफा द्वार के देहली के नीचे प्रवेश करती हुई दक्षिण ऐरावत क्षेत्र के अर्धभागपर्यन्त दक्षिण में ही जाती है, पश्चात् पूर्व की ओर मुड़ कर अपने प्रवेशद्वार से पूर्व समुद्र में प्रवेश कर जाती है।

रक्तोदा नदी–

रक्तोदा नदी उसी शिखरिन् पर्वतस्थ पुण्डरीक सरोवर के पश्चिम द्वार से निकलकर उसी पर्वत पर पश्चिमाभिमुख ५०० योजन जाकर रक्तोदा कूट को अर्ध योजन दूर से ही छोड़ती हुई तट के ऊपर स्थित प्रणाली द्वारा भूमि पर स्थित रक्तोदा नामक कुण्ड में गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के उत्तर द्वार से निकलकर विजयार्ध के गुफा द्वार की देहली के नीचे प्रवेश करती हुई उत्तर ऐरावत क्षेत्र के मध्यभाग पर्यन्त उत्तराभिमुख ही जाती हुई पुनः पश्चिमाभिमुख होकर अपने प्रवेशद्वार से पश्चिम समुद्र में प्रवेश कर जाती है।

इन दोनों (रक्ता-रक्तोदा) नदियों के सरोवर के निर्गमद्वार का व्यास आदि, प्रणालियों का विस्तार आदि, नदी पतन कुण्ड से पर्वत तट का अन्तर, धारा की चौड़ाई एवं ऊँचाई, कुण्ड, द्वीप, पर्वत और गृह आदि का तथा समुद्र प्रवेशद्वार आदि के विष्कम्भ आदि का समस्त प्रमाण पूर्वोक्त गंगा सिन्धु के सदृश ही जानना चाहिए।

उपर्युक्त चौदह महानदियों के निर्गमद्वार के व्यासादि से लेकर उनके समुद्र प्रवेशद्वार के व्यास आदि पर्यन्त समस्त प्रमाण निम्नांकित तालिका द्वारा दर्शाया जा रहा है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नदियों के निर्गम-प्रवेश आदि से सम्बन्धित ११ स्थानों के व्यास आदि की एकत्रित तालिका

क्र.	नदियों के नाम	नदी निर्गम द्वारों की योजनों में			निर्गम स्थान पर नदियों की योजनों में		पर्वतस्थ प्रणालिकाओं की योजनों में			पर्वतों के मूल में स्थित कुण्डों की योजनों में		कुण्डों के मध्य द्वीपों की योजनों में		पर्वतों के ऊपर स्थित गंगा आदि देवियों के गृहों की योजनों में व्यास				
		गहराई	चौड़ाई	ऊँचाई	गहराई	चौड़ाई	मोटाई	ऊँचाई	चौड़ाई	गहराई	चौड़ाई	ऊँचाई	चौड़ाई	ऊँचाई	नीचे	मध्य	ऊपर	अभ्यन्तर
१	गंगा-सिन्धु	$\frac{१}{२}$	$६\frac{१}{४}$	$९\frac{३}{८}$	$\frac{१}{२}$	$६\frac{१}{४}$	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$	$६\frac{१}{४}$	१०	$६२\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$	८	१	$१\frac{१}{२}$	१	$\frac{१}{२}$	$\frac{३}{८}$
२	रोहित-रोहितास्या	१	$१२\frac{१}{२}$	$१८\frac{३}{४}$	१	$१२\frac{१}{२}$	१	१	$१२\frac{१}{२}$	२०	१२५	१	१६	२	३	२	१	$\frac{४}{७५०}$ ध.
३	हरित-हरिकान्ता	२	२५	$३७\frac{१}{२}$	२	२५	२	२	२५	४०	२५०	२	३२	४	६	४	२	$१\frac{१}{२}$
४	सीता-सीतोदा	४	५०	७५	४	५०	४	४	५०	८०	५००	४	६४	८	१२	८	४	३
५	नारी-नरकान्ता	२	२५	$३७\frac{१}{२}$	२	२५	२	२	२५	४०	२५०	२	३२	४	६	४	२	$१\frac{१}{२}$
६	सुवर्ण-रूप्यकूला	१	$१२\frac{१}{२}$	$१८\frac{३}{४}$	१	$१२\frac{१}{२}$	१	१	$१२\frac{१}{२}$	२०	१२५	१	१६	२	३	२	१	$\frac{४}{७५०}$
७	रक्ता-रक्तोदा	$\frac{१}{२}$	$६\frac{१}{४}$	$९\frac{३}{८}$	$\frac{१}{२}$	$६\frac{१}{४}$	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$	$६\frac{१}{४}$	१०	$६२\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$	८	१	$१\frac{१}{२}$	१	$\frac{१}{२}$	८

गृह द्वारों की धनुषों में		पर्वतों से नीचे गिरते समय की धारा योजनों में		पर्वतों के तटों से भूस्थित कुण्डों का अन्तर योजनों में	समुद्र प्रवेश समय नदियों की योजनों में		समुद्र में नदियों के प्रवेश द्वारा की योजनों में			
ऊँचाई	चौड़ाई	चौड़ाई	ऊँचाई		चौड़ाई	गहराई	ऊँचाई	चौड़ाई	मोटाई	नींव
८०	४०	१०	१००	२५	$६२\frac{१}{२}$	$१\frac{१}{४}$	$९३\frac{३}{४}$	$६२\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$
१६०	८०	२०	२००	५०	१२५	$२\frac{१}{२}$	$१८७\frac{१}{२}$	१२५	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$
३२०	१६०	४०	४००	१००	२५०	५	३७५	२५०	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$
६४०	३२०	८०	८००	२००	५००	१०	७५०	५००	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$
३२०	१६०	४०	४००	१००	२५०	५	३७५	२५०	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$
१६०	८०	२०	२००	५०	१२५	$२\frac{१}{२}$	$१८७\frac{१}{२}$	१२५	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$
८०	४०	१०	१००	२५	$६२\frac{१}{२}$	$१\frac{१}{४}$	$९३\frac{३}{४}$	$६२\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{२}$

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अथ महानदीनां परिवारनदीसंख्या प्रोच्यते–

गंगासिन्ध्वोः प्रत्येकं परिवार नद्यश्च चतुर्दशसहस्राणि भवन्ति। रोहित् रोहितास्ययोरष्टा-विंशतिसहस्राणि च। हरिद्धरिकान्तयोः पृथक् पृथक् परिवारनद्यः षट् पञ्चाशत्सहस्राणि भवेयुः। सीतायाः परिवारनद्यश्चतुरशीतिसहस्राणि, तथासीतोदायाश्च। नारीनरकान्तयोः प्रत्येकं परिवारनद्यः षट्पञ्चाशत्सहस्राणि। स्वर्णरूप्यकूलयोरष्टाविंशति सहस्राणि। रक्तायाः परिवारनद्यः चतुर्दशसहस्राणि, रक्तोदायाश्च। पूर्वापर विदेहस्थ द्वादश विभङ्गानदी रहित चतुःषष्टि मूलनदीनां प्रत्येकं प्रत्येकं चतुर्दश चतुर्दश सहस्र परिवारनद्यो भवन्ति। सर्वा मेलिताः परिवार नद्योऽष्टलक्षषण्णवतिसहस्राणि भवन्ति। द्वादशविभङ्गानाम् एकां एकां नदीं प्रति अष्टाविंशति-अष्टाविंशति सहस्राणि परिवारनद्यो भवन्ति। सर्वाः परिवारनद्यः पिण्डीकृताः त्रिलक्ष षट्त्रिंशत्सहस्राः। समस्त विदेहस्थ सीतादि सर्वनदीनां परिवरनद्यः चतुर्दशलक्षाणि। गंगादि षण्णां नदीनां एकत्रीकृताः सर्वाः परिवारनद्यः एकलक्षषण्णवति सहस्राणि। नार्यादिशेषनदीनां चैकलक्ष षण्णवति सहस्राणि भवन्ति। चतुर्दशगंगादयः, द्वादशविभङ्गानद्यः, चतुःषष्टि विदेहजा गंगादयः समस्तक्षेत्राणां नवतिमूलनद्यः। एताः एकत्रपिण्डीकृताः समस्तानद्यः जम्बूद्वीपे सप्तदशलक्ष-द्विनवतिसहस्रनवति प्रमाः ज्ञातव्या। एतत्पञ्चभिर्गुणिताः नरलोके सर्वा नद्यः ८९६०४५० भवन्ति॥

अब महानदियों के परिवार नदियों की संख्या कहते हैं–

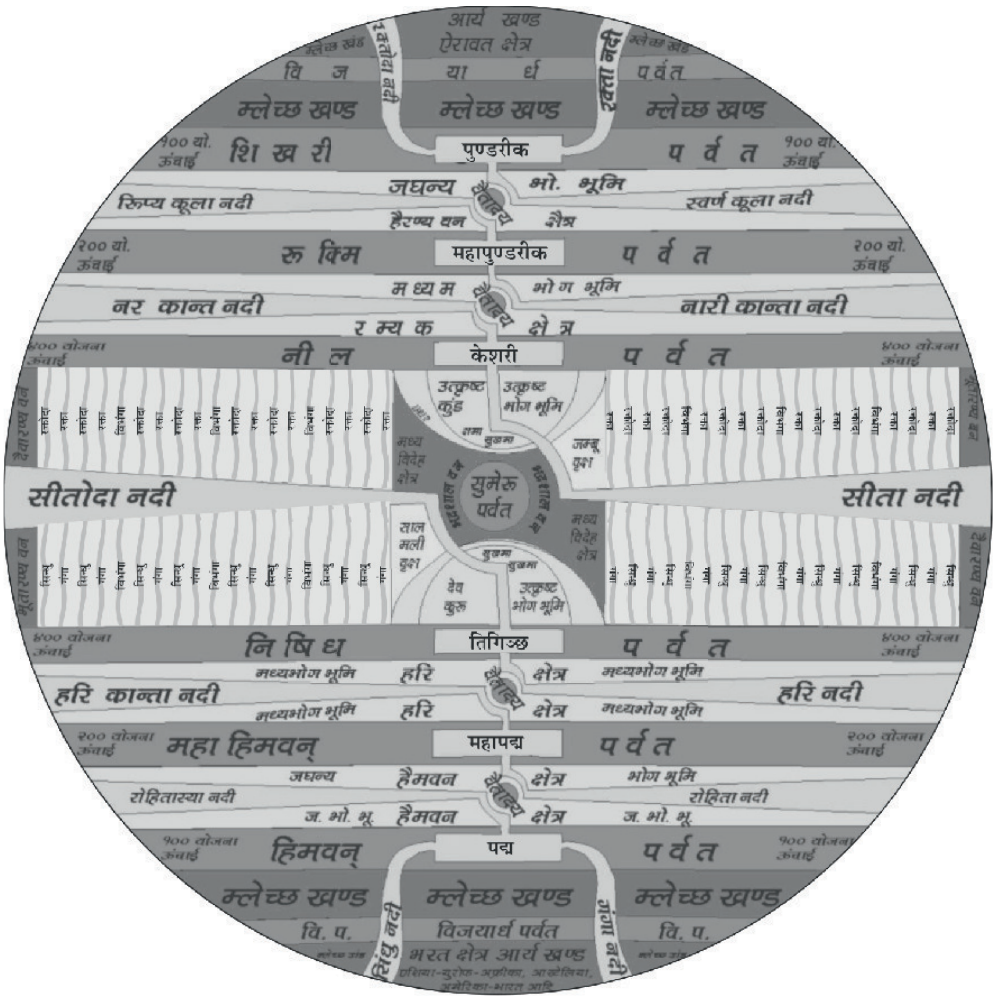
गंगा नदी की (पूर्व दिशा सम्बन्धी ढ़ाई म्लेच्छ खण्डों से ग्रहण की हुई) १४००० परिवार नदियाँ और सिन्धु नदी की (पश्चिम ढ़ाई म्लेच्छ खण्डों की) १४०००, परिवार नदियाँ हैं। रोहित् नदी की (पूर्व जघन्य भोगभूमि सम्बन्धी) २८००० और रोहितास्या की (पश्चिम जघन्य भोगभूमि सम्बन्धी) २८००० परिवार नदियाँ हैं। हरित् नदी की (पूर्व मध्यम भोगभूमि सम्बन्धी) ५६००० परिवार नदियाँ और हरिकान्ता नदी की (पश्चिम मध्यम भोगभूमि सम्बन्धी) ५६००० परिवार नदियाँ है। सीता महानदी की (उत्तरकुरु अर्थात् पूर्व उत्तम भोगभूमि सम्बन्धी) ८४००० और सीतोदा महानदी की (देवकुरु अर्थात् पश्चिम उत्तम भोग भूमि सम्बन्धी) ८४००० परिवार नदियाँ हैं। नारी नदी की ५६००० और नरकान्ता की ५६००० परिवार नदियाँ हैं। सुवर्णकूला की २८००० और रूप्यकूला की २८००० परिवार नदियाँ हैं। इसी प्रकार रक्ता नदी की १४००० हजार और रक्तोदा नदी की भी १४००० परिवार नदियाँ हैं।

पूर्व पश्चिम विदेह में १२ विभङ्गा नदियाँ और (३२ क्षेत्र सम्बन्धी) ६४ गंगा-सिन्धु नदियाँ हैं। इनमें से १२ विभङ्गा को छोड़कर ६४ गंगा-सिन्धु नदियों में प्रत्येक की परिवार नदियाँ चौदह-चौदह हजार हैं तथा इन सब का एकत्रित योग कर लेने पर ६४ मूल नदियों की परिवार संख्या (१४००० × ६४) = ८९६००० अर्थात् आठ लाख ९६ हजार होती है। १२ विभङ्गा नदियों में से प्रत्येक की अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार परिवार नदियाँ हैं। इन सब का एकत्रित योग करने पर (२८०००×१२)=३३६००० अर्थात् तीन लाख ३६ हजार होता है। इस प्रकार पूर्वापर विदेहस्थ सीता-सीतोदा की समस्त परिवार

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नदियाँ (८४००० + ८४००० + ८९६००० + ३३६०००) = १४००००० प्रमाण होती हैं अर्थात् सीता नदी की उत्तरकुरु की ८४०००+(६ विभङ्गा की) १६८०००+(पूर्व विदेह सम्बन्धी ३२ गंगासिन्धु की) ४४८०००+६ विभङ्गा+३२ गंगा+सिन्ध=७०००३८ परिवार नदियाँ सीता नदी की हैं और इसी प्रकार की ७०००३८ सहायक सीतोदा की हैं।

जम्बूद्वीपस्थ ९० प्रमुख नदियों का चित्रण निम्नप्रकार है–



इनमें से (३८+३८)=७६ तो मूल नदियाँ हैं और १४००००० सहायक हैं। गंगा, सिन्धु, रोहित्, रोहितास्या, हरित् और हरिकान्ता इन ६ मूल नदियों की परिवार नदियों का एकत्रित योग (१४००० + १४००० + २८००० + २८००० + ५६००० + ५६०००) = १९६००० अर्थात् एक लाख ९६ हजार होता है। इसी प्रकार नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा इन ६ मूल नदियों के परिवार का योग भी एक लाख ९६ हजार होता है। जम्बूद्वीप के समस्त क्षेत्रों की मूल नदियाँ ९० हैं। यथा–गंगादि महानदियाँ १४+विभंगा नदियाँ १२+ विदेहजगंगादि ६४=९०।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जम्बूद्वीपस्थ उपर्युक्त समस्त मूल और परिवार नदियों का एकत्रित योग करने पर १७९२०९० प्राप्त होता है। इसका विवरण निम्न प्रकार है–

जम्बूद्वीपस्थ भरत, हैमवत और हरि क्षेत्र सम्बन्धी गंगादि ६ नदियों का परिवार १९६००० है। विदेहज सीता-सीतोदा का परिवार १६८०००, १२ विभंगा का ३३६०००, विदेह के ३२ क्षेत्र सम्बन्धी ३२ गंगासिन्धु और ३२ रक्ता रक्तोदा इस प्रकार ६४ की ८९६००० परिवार नदियाँ तथा रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी नारी नरकान्ता आदि ६ की परिवार नदियाँ १९६००० है। इन सब का और मूल नदियों का समस्त योग (१९६००० + १६८००० + ३३६००० + ८९६००० + १९६००० + ९०) = १७९२०९० होता है। अढ़ाई द्वीप में पाँच मेरु पर्वत हैं, इसलिये इस योग को ५ से गुणित करने पर ढ़ाईद्वीपस्थ समस्त नदियों का (१७९२०९० × ५) = ८९६०४५० प्रमाण प्राप्त होता है।

समस्त नदियों की वेदिका आदि का वर्णन–

सर्वासां सरिता सन्ति रत्नसोपानपंक्तयः।
उभयोः पार्श्वयोर्नानाद्रुमवल्लीवनानि च ॥५६॥
जिनेन्द्रप्रतिमारत्नद्वारतोरण भूषिताः।
द्विक्रोशप्रोन्नता दिव्या क्रोशार्द्ध व्यास वेदिका॥५७॥

अर्थ–समस्त नदियों में पंक्तिबद्ध रत्नों की सीढ़ियाँ हैं तथा सरिताओं के दोनों पार्श्वभागों में नाना प्रकार के वृक्षों एवं वल्लियों से युक्त वन हैं। इनके तोरणद्वार रत्नमय प्रतिमाओं से विभूषित हैं, और इनके दोनों पार्श्वभागों में दो कोस ऊँची और सवा कोस चौड़ी वेदिकाएँ हैं ॥५६-५७॥

अब विजयार्ध पर्वत की स्थिति और उसके व्यास आदि का निर्धारण सात श्लोकों द्वारा करते हैं–

अथास्ति विजयार्धाद्रिर्मध्येऽस्य भरतस्य च।
श्वेतरत्नमयस्तुङ्गः पञ्चविंशतियोजनैः ॥५८॥
पञ्चाशद्योजनैरेष विस्तृतो भूतले ततः।
उभयोः पार्श्वयोर्मुक्त्वा दशास्य योजनानि च ॥५९॥
दशयोजन विस्तीर्णे दक्षिणोत्तरसंज्ञिके।
पूर्वापराब्धि संलग्ने द्वे श्रेण्यौ भवतः शुभे ॥६०॥
पूर्वापराब्धिदीर्घोऽयं विद्येशपुर सौधभूत्।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णो ह्यत्र स्यात् सुन्दराकृतिः ॥६१॥
दशयोजन संख्यं खं त्यक्त्वा तोऽस्यद्वि पार्श्वयोः।
प्रागुक्तायाम विस्तारे श्रेण्यौद्वेस्तोऽपरे शुभे ॥६२॥
दशयोजन विस्तीर्णोऽत्रैषोऽमर पुराङ्कितः।
नवकूटाङ्कितोमूर्ध्नि त्यक्त्वानुपञ्चयोजनात् ॥६३॥

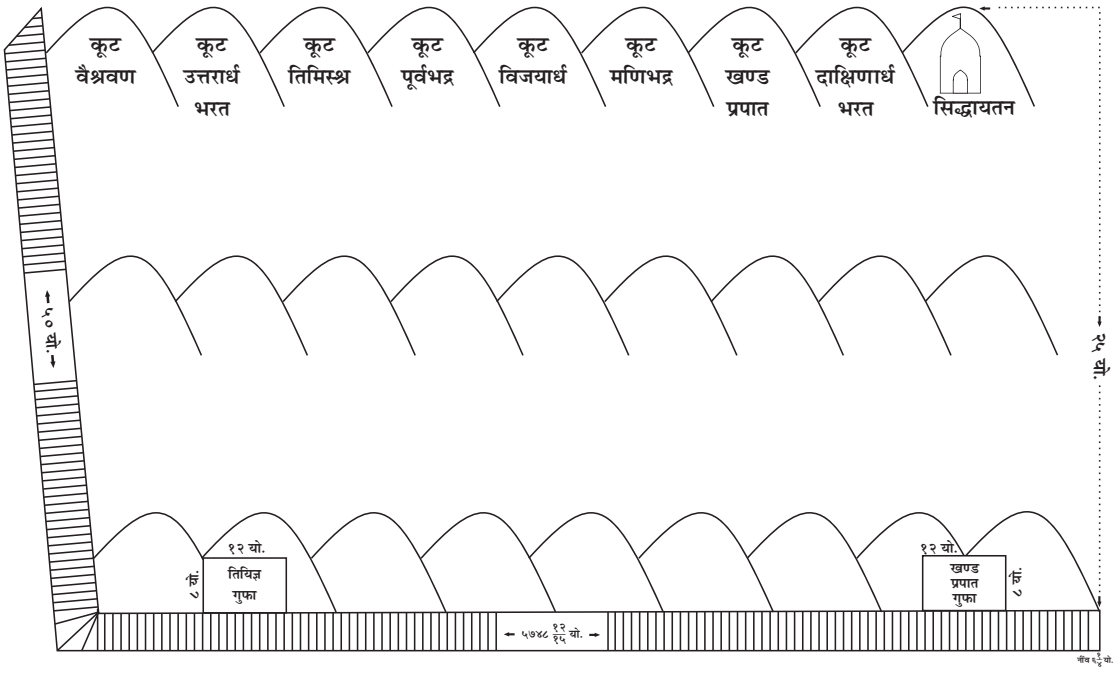
FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निजोदय चतुर्थांशावगाहो राजतेऽचलः।
खगेश्वाचारणैः श्वेतमणिभिः शुक्लपुञ्जवत् ॥६४॥

अर्थ—भरत क्षेत्र के ठीक मध्य में विजयार्ध नाम का एक श्वेतरत्नमय पर्वत है। जो पच्चीस योजन ऊँचा और भूतल पर ५० योजन चौड़ा है। यह ५० योजन की चौड़ाई १० योजन की ऊँचाई तक जाती है। इसके ऊपर (दक्षिणोत्तर) दोनों पार्श्वभागों में दस-दस योजन (की कटनी) छोड़कर १० योजन की ऊँचाई पर्यन्त ३० योजन चौड़ा है। इसी प्रथम कटनी पर १० योजन चौड़ी, पूर्व-पश्चिम समुद्र को स्पर्श करने वाली और दक्षिण-उत्तर नाम वाली दो शुभ श्रेणियाँ हैं। इन पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र पर्यन्त लम्बी उत्तर-दक्षिण दोनों श्रेणियों पर विद्याधरों के सुन्दर आकृति को धारण करने वाले महलों से युक्त नगर हैं। ३० योजन चौड़ाई में भी दोनों पार्श्वभागों में १०-१० योजन (की कटनी) छोड़कर पाँच योजन की ऊँचाई पर्यन्त केवल १० योजन चौड़ा जाता है। इस दूसरी कटनी पर पूर्वोक्त आयाम और विस्तार (१० योजन चौड़ी और पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक लम्बी) वाली अन्य दो श्रेणियाँ हैं, जो व्यन्तर देवों के नगरों से प्रलंकृत हैं। इन श्रेणियों से पाँच योजन ऊपर अर्थात् विजयार्ध का अग्रभाग नवकूटों से संयुक्त है। इस विजयार्ध पर्वत की नींव अपनी ऊँचाई (२५ योजन) का चतुर्थभाग अर्थात् ६ $\frac{१}{४}$ योजन प्रमाण है। श्वेत मणियों के साथ-साथ चारण ऋद्धिधारी मुनीश्वरों और विद्याधरों से व्याप्त यह विजयार्ध ऐसा शोभायमान होता है मानो शुक्लता का पुञ्ज ही हो ॥५८-६४॥

विशेषार्थ—

विजयार्ध की दक्षिणोत्तर दोनों तटों की प्रथम श्रेणी पर विद्याधर और द्वितीय श्रेणी पर व्यन्तर जाति के देव निवास करते हैं, तथा शिखर पर नवकूट हैं, जिसका चित्रण निम्न प्रकार है-



FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब दक्षिणोत्तर दोनों श्रेणियों पर स्थित विद्याधरों के नगरों की संख्या और उनके नाम कहते हैं–

संत्यस्य दक्षिणश्रेण्यां पञ्चाशन्नगराणि च।
षष्टिरेवोत्तरश्रेण्यां रम्याणि व्योमगामिनाम् ॥६५॥
किन्नामनगरं किन्नरगीतं नरगीतकम्।
बहुकेतपुरं पुण्डरीकं सिंहध्वजाह्वयम् ॥६६॥
पुरं श्वेतध्वजाभिख्यं गरुडध्वज संज्ञकम्।
श्रीप्रभं श्रीधराख्यं च लोहार्गलमरिञ्जयम् ॥६७॥
वैरार्गलं हि वैराख्यं विगतोर्ज्जपुरं जयम्।
शकटाख्यं चतुर्वक्रं पुरं बहुमुखाभिधम् ॥६८॥
अरजं विरजाभिख्यं रथनूपुरनामकम्।
मेखलाग्रपुरं क्षेमवर्यं ततोऽपराजितम् ॥६९॥
पुरं कामपुराभिख्यं वियच्चर समाह्वयम्।
विजयादि चराख्यं च शक्ताभिधानकं पुरम् ॥७०॥
सञ्जयन्तं जयन्ताख्यं विजयं वैजयन्तकम्।
क्षेमाकरं सुचन्द्राभं सूर्याभासं पुरोत्तमम् ॥७१॥
चित्रकूटं महाकूटं हैमकूटं त्रिकूटकम्।
मेघकूटं विचित्रादिकूटं वैश्रवणाभिधम् ॥७२॥
सूर्यप्रभाह्वयं चन्द्रप्रभाभिधानकं पुरम्।
नित्य[1] प्रद्योतसंज्ञं च नित्याभाख्यं पुरं ततः ॥७३॥
विमुखाख्य पुरं नित्यवाहिसंज्ञमिमान्यपि।
स्युः श्रेण्यां दक्षिणाख्यायां पञ्चाशात्सत् पुराणि च ॥७४॥
पुरं[2] बसुपुराभिख्यमर्जुनं चारुणाभिधम्।
कैलासं वारुणं विद्युत्प्रभं किलिकिलित्पुरम् ॥७५॥
चूडामणिपुरं नामशशिप्रभपुरं ततः।
विशालं पुष्पचूलाख्यं हंसगर्भ बलाहकम् ॥७६॥
शिवङ्करं च श्री सौधं चमरं शिवमन्दिरम्।
वसुमतापुरी नाम्नी ततो वसुमतीपुरी ॥७७॥
सिद्धार्थनगरी शत्रुञ्जयाभिधानिकापुरी।
केतुमालेन्द्रकान्ता गगनानन्दिन्यशोकिका ॥७८॥

---

१. प्रद्योति अ. ज. २. वसुमुखाभिख्य अ. ज.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विशोकावीतशोकाख्या चालका तिलकापुरी।
अपूर्वतिलका नाम्नी पुरी[1] मन्दिरसंज्ञिका ॥७९॥
कुमुदाख्यंपुरं कुन्दपुरं गगनवल्लभम्।
दिव्यादि तिलकं पृथ्वी तिलकाख्यं पुरं ततः ॥८०॥
गन्धर्वाख्यं पुरंमुक्ताहारं च नैमिषाह्वयम्।
अग्निजालं महाजालं श्रीनिकेतं जयाह्वयम् ॥८१॥
श्रीगृहं मणिवज्राख्यं भद्राश्वं च धनञ्जयम्।
गोक्षीरफेनमक्षोभं शैलशेखरसंज्ञकम् ॥८२॥
पृथ्वीधरं पुरं दुर्गं दुर्धराख्यं सुदर्शनम्।
पुरं महेन्द्रसंज्ञं विजयं सुगन्धिनामकम् ॥८३॥
पुरं वैरार्धनामाथरत्नाकराह्वयम् पुरम्।
ततो रत्नपुरम् चेमानि पुराणि खगामिनाम् ॥८४॥
षष्टिः स्युरुत्तरश्रेण्यां शाश्वतानि शुभानि च।
पश्चिमां दिशामारभ्य स्वःपुरा भान्यनुक्रमात् ॥८५॥
पुराणिदक्षिणश्रेण्यां[2] प्रागुक्तानि भवन्ति वै।
पंचाशत् पूर्वदिग्भागमादिं कृत्वा क्रमेण च ॥८६॥

अर्थ–(भरतैरावत सम्बन्धी विजयार्धों की पूर्व पश्चिम लम्बाई में) दक्षिण श्रेणी पर विद्याधरों के रमणीक ५० नगर और उत्तर श्रेणी पर ६० नगर हैं। पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर दक्षिण श्रेणीगत ५० नगरों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं–१ किन्नाम, २ किन्नरगति, ३ नरगीत, ४ बहुकेतपुर, ५ पुण्डरीक, ६ सिंहध्वज, ७ श्वेतध्वज, ८ गरुड़ध्वज, ९ श्रीप्रभ, १० श्रीधर, ११ लोहार्गल, १२ अरिञ्जय, १३ वैरार्गल, १४ वैराख्य, १५ विगतोञ्जपुर, १६ जय, १७ शकट, १८ चतुर्वक्र, १९ बहुमुख, २० अरजा, २१ विरजा, २२ रथनूपुर, २३ मेखलाग्रपुर, २४ श्रेमवर्य, २५ अपराजित, २६ कामपुर, २७ वियच्चर (गगनचर), २८ विजयचर, २९ शक्तपुर, ३० सञ्जयन्त, ३१ जयन्तपुर, ३२ विजय, ३३ वैजयन्त, ३४ क्षेमङ्कर, ३५ चन्द्राभ. ३६ सूर्याभा, ३७ पुरोत्तम, ३८ चित्रकूट, ३९ महाकूट, ४० हैमकूट, ४१ त्रिकूट, ४२ मेघकूट, ४३ विचित्रकूट, ४४ वैश्रवणकूट, ४५ सूर्यप्रभ, ४६ चन्द्रप्रभ, ४७ नित्यप्रद्योत, ४८ नित्याभा, ४९ विमुख और अन्तिम ५० नित्यवाहनी नाम वाले ५० नगर दक्षिण श्रेणी पर हैं।

उत्तर दिशा में पश्चिम श्रेणी से प्रारम्भ कर क्रमशः १ वसुपुर, २ अर्जुन, ३ अरुण, ४ कैलाश, ५ वारुणपुर, ६ विद्युत्प्रभ, ७ किलिकिलित्पुर, ८ चूड़ामणि, ९ शशिप्रभ, १० विशालपुर, ११ पुष्पचूल, १२ हंसगर्भपुर, १३ बलाहकपुर, १४ शिवङ्कर, १५ श्री सौधपुर, १६ चमरपुर, १७ शिव मन्दिर, १८

१. मन्दर अ. ज. २. शाश्वतानि अ. ज.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वसुमत्ता, १९ वसुमति, २० सिद्धार्थनगरी, २१ शत्रुञ्जयपुरी, २२ केतुमाल, २३ इन्द्रकान्तपुर, २४ गगननन्दिनी, २५ अशोकापुर, २६ विशोकापुर, २७ वीतशोकापुरी, २८ अलकापुरी, २९ तिलकापुरी, ३० अपूर्वतिलकापुरी, ३१ मन्दरपुरी, ३२ कुमुदपुर, ३३ कुन्दपुर, ३४ गगनवल्लभ, ३५ दिव्यतिलक, ३६ पृथ्वीतिलक, ३७ गन्धर्वपुर, ३८ मुक्ताहारपुर, ३९ नैमिषपुर, ४० अग्निजालपुर, ४१ महाजालपुर, ४२ श्रीनिकेतनपुर, ४३ जयावहपुर, ४४ श्रीवासपुर, ४५ मणिवज्रपुर, ४६ भद्राश्वपुर, ४७ धनञ्जयपुर, ४८ गोक्षीरफेनपुर, ४९ प्रक्षोभपुर, ५० शैलशेखरपुर, ५१ पृथ्वीधरपुर, ५२ दुर्गपुर, ५३ दुर्धरनगर, ५४ सुदर्शननगर, ५५ महेन्द्रपुर, ५६ विजयपुर, ५७ सुगन्धिनीनगर, ५८ वैरार्धपुर, ५९ रत्नाकरपुर और अन्तिम ६० रत्नाकर नाम वाले ६० नगर हैं। ये विद्याधरों के समस्त नगर रत्नमय हैं। पश्चिम दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः श्रेणीबद्ध उत्तर श्रेणी के ये ६० नगर शाश्वत, शुभ नाम वाले और स्वर्गपुरी की शोभा को धारण करने वाले हैं, इसी प्रकार पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः पूर्व कहे हुए दक्षिण श्रेणी के ५० नगर हैं ॥६५-८६॥

अब विद्याधरों के नगरों का सविस्तार वर्णन करते हैं–

दण्डैकैकान्तरास्तिस्त्रो जलान्ताः खातिकाः शुभाः।
प्रत्येकं नगराणां स्युर्मणिस्वर्णेष्टकाचिताः ॥८७॥
स्याच्चतुरस्त्रखातानां तासामन्तर्महीतले।
चतुर्दण्डान्तरो रम्यो हेमरत्नेष्टकामयः ॥८८॥
मुरजैः कपिशीर्षैश्च रचिताग्रः पुराणि च।
परितः शाश्वतस्तुङ्गः आकारो हि पृथक् पृथक् ॥८९॥
विष्कम्भचतुरस्राः स्युः शालाट्टलक पंक्त्यः।
त्रिंशच्चापान्तरास्तुङ्गा नानारत्नादि चित्रिताः ॥९०॥
उत्सेधसदृशारोहसोपानाश्चारुमूर्तयः ।
द्वयोरट्टालयोर्मध्ये रत्नतोरणभूषितम् ॥९१॥
पञ्चाशद्धनुरुत्सेधं गोपुरं विस्तृतं महत्।
पञ्चविंशति दण्डैश्च कपाटयुगलाङ्कितम् ॥९२॥
इत्यादि रचनाढ्यानि पूर्वमुखस्थितानि च।
दक्षिणोत्तर दीर्घाणि योजनैर्द्वादश प्रमैः॥९३॥
पूर्वापरेण विस्तारान्वितानि नवयोजनैः।
स्वः पुराणीव राजन्तेऽत्राखिलानि पुराण्यपि ॥९४॥
सहस्त्रगोपुरैः मार्गैः सहस्त्रद्वादशप्रमैः।
शतपंचलघुद्वारैः सहस्त्रैकचतुःपथैः ॥९५॥
कोटिग्रामाभवन्त्यत्रनगरं प्रतिशाश्वताः।
बहुखेटमटंवाद्या निवेशाश्च मनोहराः॥९६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नगरादिषु सर्वेषु जिनसिद्धालयाः शुभाः।
वनोपवन वाप्याद्याः स्युस्तुङ्गसौधपंक्त्यः॥९७॥
प्रागर्जितमहापुण्याविद्येशाश्चारुलक्षणाः ।
धर्मार्थादि विधातारो वसन्ति रत्नधामसु ॥९८॥

अर्थ—[विजयार्ध पर्वत की प्रथम श्रेणी विद्याधरों के (६०+५०)=११० नगरों से व्याप्त है] प्रत्येक नगर के चारों ओर मणियों से खचित स्वर्ण की ईंटों से बनी हुई तथा जल से भरी हुई, एक-एक धनुष के अन्तराल से तीन शुभ परिखाएँ (खाई) हैं। उन चारों परिखाओं के अन्दर भूमितल पर चार धनुष के अन्तर से जिनके शीर्ष पर वुरज व कंगूरे हैं ऐसे स्वर्ण व रत्नमयी ईंटों से बने हुए पुर हैं। जिनके चारों ओर शाश्वत उत्तुङ्ग, मेडियों की पंक्तियों सहित चार धनुष चौड़े पृथक्-पृथक् आकार हैं। तीस धनुष अन्तराल से उत्तुङ्ग, नाना रत्नों से खचित उत्सेध के सदृश चढ़ने के लिए सुन्दर आकार वाली (सोपान) सीढ़ियाँ हैं। दो-दो छज्जों के बीच में रत्न के तोरणों से विभूषित, कपाट युगलों से अलंकृत, ५० धनुष ऊँचे और २५ धनुष विस्तृत गोपुरद्वार हैं। इन सब को आदि लेकर और अनेक प्रकार की रचनाओं से युक्त तथा पूर्व दिशा की ओर हैं मुख जिनके ऐसे दक्षिणोत्तर बारह योजन लम्बे और पूर्व पश्चिम ९ योजन चौड़े. समस्त नगर स्वर्गपुरी के सदृश शोभायमान होते हैं। यहाँ के प्रत्येक नगर एक हजार गोपुर द्वारों से, पाँच सौ लघु द्वारों से, एक हजार चतुःपथों, बारह हजार मार्गों, करोड़ों ग्राम, बहुखेट एवं मटंब आदि की रचनाओं से मनोहर हैं। यहाँ के समस्त नगरों में जिनेन्द्र भगवान् एवं सिद्ध भगवान् के शुभ मन्दिर हैं तथा वन, उपवन, वापी आदि एवं ऊँचे ऊँचे महलों की पंक्तियाँ हैं। पूर्वोपार्जित महान् पुण्योदय से सुन्दर लक्षणों से युक्त विद्याधर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थों को करते हुए यहाँ रत्नों के महलों में रहते हैं ॥८७-९८॥

विजयार्ध की द्वितीय श्रेणी का वर्णन—

द्वितीयमेखलायां चाचलस्योभयपार्श्वयोः।
प्रतोली[१] वेदिकाढ्यानि जिनालयान्वितानि च॥९९॥
कल्पद्रुमादियुक्तानि पुराणि सन्त्यनेकशः।
सौधर्मैशानयोराभियोगिकानां सुधाभुजाम् ॥१००॥

अर्थ—विजयार्ध पर्वत की द्वितीय श्रेणी के दोनों पार्श्व भागों में प्रतोली और वेदिका आदि से सहित, जिनालयों से समन्वित तथा कल्पवृक्षों से युक्त अनेक नगर हैं। जिनमें सौधर्म ऐशान इन्द्रों के आभियोग (वाहन) जाति के देव निवास करते हैं ॥९९-१००॥

अब विजयार्ध के शिखर पर स्थित नव कूटों के नाम एवं उनके विस्तार आदि का प्रमाण कहते हैं—

---

१. प्रतोल्या ज.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शिखरेऽस्यातिरम्याणि नवकूटान्यमून्यपि।
सिद्धायतनकूटं च दक्षिणार्धक नामकम् ॥१०१॥
कूटं खण्डप्रपाताख्यं पूर्णभद्रसमाह्वयं।
विजयार्धाभिधं माणिभद्रं तिमिस्त्रसंज्ञकम् ॥१०२॥
उत्तरार्धाख्यकं वैश्रवणं कूटान्यमून्यपि।
नवोन्नतानि सक्रोशयोजनैः षट्प्रमाणकैः ॥१०३॥
मूलेऽमीषां च गव्यूत्यग्रषड्योजन सम्मिताः।
मध्येसार्धद्वि गव्यूत्यग्रचतुर्योजनप्रमः ॥१०४॥
वयासोस्ति नवकूटानांमूर्ध्नित्रियोजनप्रमः।
आदौ च परिधिविंशतियोजनैश्चसम्मिता ॥१०५॥
मध्येतुल्या च किञ्चिन्न्यूनपञ्चदशयोजनैः।
मस्तके योजनानां सविशेषा नवसंख्यकाः ॥१०६॥

अर्थ—विजयार्ध पर्वत के शिखर पर अत्यन्त रमणीक नौ कूट हैं। उनमें सब कूटों के (पूर्व दिशा की ओर से) प्रथम सिद्धायतन कूट, २ दक्षिणार्ध (भरत) कूट, ३ खण्डप्रपात, ४ पूर्णभद्र, ५ विजयार्धकूट, ६ माणिभद्र, ७ तिमिश्र, ८ उत्तरार्ध (भरत) कूट और (पश्चिम दिशा के अन्त में ९ वैश्रवण नाम का कूट है। ये सभी कूट ६ $\frac{१}{४}$ योजन ऊँचे, मूल में ६ $\frac{१}{४}$ योजन, मध्य में अढ़ाई कोस सहित ४ योजन और शिखर पर तीन योजन प्रमाण चौड़े (एवं लम्बे) हैं। इन नव कूटों की प्रथम परिधि (कुछ कम) बीस योजन प्रमाण, मध्यम परिधि कुछ कम पन्द्रह योजन प्रमाण और मस्तक पर कुछ अधिक नौ योजन प्रमाण मानी गई है ॥१०१-१०६॥

सिद्धायतन कूट का वर्णन—

क्रोशायामो जिनेन्द्राणां क्रोशार्धविस्तरान्वितः।
चैत्यालयश्चपादोनक्रोशोत्तुङ्गः स्फुरत्प्रभः ॥१०७॥
मणिस्वर्णमयेबिम्बैर्दिव्योपकरणैः परैः।
प्राकारतोरणैर्नाना मण्डपाद्यैरलंकृतः ॥१०८॥
सङ्गीतनाट्यशालाभिषेकक्रीडनसद्गृहैः ।
मणिमुक्ताफलस्वर्णमालाजालेश्चशोभितः ॥१०९॥
वनोपवनकेत्वाद्यैर्मङ्गलद्रव्यभूतिभिः ।
भासमानोऽस्ति सिद्धायतन[१] कूटोमनोहरः ॥११०॥

अर्थ—विजयार्ध पर्वत के अग्रभाग पर पूर्व दिशा की ओर जिनेन्द्र भगवान का सिद्धायतन नाम

१. कूटे अ. ज. न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

का एक चैत्यालय है। जो देदीप्यमान प्रभा से युक्त, एक कोस लम्बा, अर्ध कोस चौड़ा और $\frac{३}{४}$ (पौन) कोस ऊँचा है। वह मन को मोहित करने वाला सिद्धायतन कूट मणि एवं स्वर्ण बिम्बों से समन्वित, कोट, नाना प्रकार के तोरण द्वार तथा मण्डप आदि से अलंकृत, संगीतशाला, नाट्यशाला, अभिषेक गृह एवं उत्तम क्रीड़ागृह आदि से व्याप्त, मणियों, मुक्ताफलों और स्वर्ण मालाओं के समूहों से सुशोभित वन, उपवन आदि से वेष्टित और ध्वजा आदि मंगलद्रव्य रूपी विभूति से भासमान है ॥१०७-११०॥

अवशेष कूटों के स्वामी–

शेष कूटस्थसौधेषु वसन्ति व्यन्तरामराः।
स्व-स्वकूटोत्थ नामाढ्या विश्वेषु दीप्तिशालिषु ॥१११॥

अर्थ–अवशेष समस्त कूटों पर स्थित अपनी दीप्ति से मनोहर भवनों में अपने-अपने कूटों के सदृश नाम वाले व्यन्तर देव रहते हैं ॥१११॥

विजयार्ध सम्बन्धी वनों का विवेचन चार श्लोकों द्वारा करते हैं–

वनं द्विक्रोशविस्तीर्णं नानाद्रुमङ्कितं महत्।
पूर्वापराब्धिपर्यन्तं स्यादस्योभयपार्श्वयोः ॥११२॥
द्विकक्रोशोन्नतापञ्चशतचापसुविस्तृता ।
बहुतोरणयुक्तात्र [१]दीप्तास्तिवनवेदिका ॥११३॥
वनमध्येपुराणिस्युर्व्यन्तराणां महान्ति च।
सप्तभूमियुतोत्तुङ्ग रत्नधामाङ्किृतान्यपि ॥११४॥
चैत्यालययुतान्युच्चैः शालाद्यलंकृतानि वै।
इत्येषा वर्णनात्रैरावतरूप्याचले भवेत् ॥११५॥

अर्थ-विजयार्ध पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्रपर्यन्त अर्थात् पर्वतों के बराबर ही लम्बे, दो कोस चौड़े और नाना प्रकार के वृक्षों से संयुक्त महान् वन हैं। ये दोनों वन दो कोस ऊँची, ५०० धनुष चौड़ी, नाना तोरणों से युक्त और प्रकाशमान वनवेदिका से विभूषित हैं। उन वनों के मध्य में सात तलों वाले, उत्तुंग, रत्नमय गृहों से व्याप्त, चैत्यालयों से विभूषित और ऊँचे-ऊँचे कोटों आदि से अलंकृत व्यन्तर देवों के श्रेष्ठ नगर हैं। जैसा वर्णन भरतक्षेत्र स्थित विजयार्ध का किया गया है वैसा ही ऐरावत क्षेत्र में स्थित विजयार्ध पर्वत का जानना चाहिए ॥११२-११५॥

भरत क्षेत्र के छह खण्ड और आर्यों के स्वरूप का अवधारण करते हैं–

अखिलं भारतं क्षेत्रं षट्खण्डीकृतमादिमम्।
गङ्गासिन्धुनदीभ्यांस्याद्विजयार्धाचलेन च ॥११६॥

१. दीप्रा अ.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

रूप्याद्रेर्दक्षिणे भागेह्युत्तरे लवणाम्बुधेः।
गङ्गासिन्धुर्द्वयोर्मध्येऽस्त्यार्य खण्डं शुभाकरम् ॥११७॥
यत्रार्याः स्वर्गमोक्षादीन् साधयन्तितपोबलात्।
स्वर्मुक्तिश्रीसुखाधारमार्यखण्डं तदुत्तमम् ॥११८॥

अर्थ—विजयार्ध पर्वत और गंगा-सिन्धु इन दो नदियों के द्वारा समस्त भरतक्षेत्र के छह खण्ड होते हैं। इनमें विजयार्ध के दक्षिण में, लवण-समुद्र के उत्तर में और गंगा-सिन्धु इन दोनों नदियों के मध्य में शुभ क्रियाओं का आकर आर्यखण्ड है। स्वर्ग-लक्ष्मी और मुक्ति-लक्ष्मी के सुख का आधार यह उत्तम आर्यखण्ड ही है, अतः यहाँ आर्य जन अपने तपोबल से स्वर्ग और मोक्ष का साधन करते हैं ॥११६-११८॥

म्लेच्छखण्डों की अवस्थिति एवं म्लेच्छों का स्वरूप कहते हैं—

तस्यपूर्वे परे भागे भरतार्धेऽचलोत्तरे।
स्युः पञ्चम्लेच्छखण्डानि धर्माचारातिगानि च ॥११९॥
धर्मकर्मबहिर्भूता म्लेच्छानीचकुलान्विताः।
वसन्तिविषयासक्तास्तेषुदुर्गतिगामिनः ॥१२०॥

अर्थ—आर्य खण्ड के पूर्व-पश्चिम भाग में, अर्ध भरत क्षेत्र में विजयार्ध की उत्तर दिशा में धर्म आचरण से रहित पाँच म्लेच्छखण्ड हैं। जिनमें धर्म, कर्म से बहिर्भूत, नीचकुल से समन्वित, विषयाशक्त और दुर्गति जाने वाले म्लेच्छ जीव रहते हैं ॥११९-१२०॥

आर्यखण्ड में अयोध्या नगरी की अवस्थिति कहते हैं—

आर्यखण्डस्थ मध्ये स्याद्गङ्गासिन्ध्वोस्तदन्तरे।
अयोध्यानगरी चक्रवर्ति भोग्या परा भवेत् ॥१२१॥
अयोध्यालवणाम्बुध्योर्मध्येऽर्धचन्द्रसन्निभः ।
नानाजलचराकीर्णोपसमुद्रोस्ति चोर्मिभाक् ॥१२२॥

अर्थ—गंगा-सिन्धु नदियों के अन्तराल में आर्यखण्ड है और आर्यखण्ड के मध्य में चक्रवर्ती राजाओं के द्वारा भोग्य श्रेष्ठ अयोध्या नगरी है तथा अयोध्या और लवणसमुद्र के मध्य में नाना प्रकार के जलचर जीवों से आकीर्ण और कल्लोल मालाओं से व्याप्त अर्धचन्द्र के सदृश एक उपसमुद्र है ॥१२१-१२२॥

म्लेच्छ खण्ड के मध्य में स्थित वृषभाचल के स्वरूप का निरूपण करते हैं—

उत्तरे भारते क्षेत्रे म्लेच्छखण्डे च मध्यमे।
योजनानां शतोत्सेधो मूलेशतैकविस्तृतः ॥१२३॥
विस्तीर्णो मध्यभागे स्यात् पञ्चसप्ततियोजनैः।
पञ्चाशद्योजनव्यासो मस्तके शाश्वतो महान् ॥१२४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गतचक्रेशनामौघैश्चितो जिनालयाङ्कितः।
वनतोरणसद्वेदी नानाभवन भूषितः ॥१२५॥
वृत्ताकारो हि चक्रेशगर्वहृद् वृषभाचलः।
ऐरावतेऽप्ययं ज्ञेय ईदृशोऽद्रिः स्फुरत्प्रभः ॥१२६॥

अर्थ—उत्तरभरतक्षेत्रस्थ मध्यम म्लेच्छ खण्ड के मध्य में चक्रवर्तियों के मान को मर्दन करने वाला वृत्ताकार एक वृषभाचल पर्वत है। जो १०० योजन ऊँचा, मूल में १०० योजन विस्तृत, मध्य में ७५ योजन विस्तृत और शिखर पर ५० योजन विस्तृत तथा भूतकालीन चक्रवर्तियों के नाम समूह से व्याप्त, जिनालय से अलंकृत, वन, तोरणद्वार, उत्तम वेदी एवं अनेक भवनों से विभूषित, अकृत्रिम और महान् है ॥१२३-१२६॥

जघन्य भोगभूमि का स्वरूप—

हिमवन्तमथोल्लङ्घ्य क्षेत्रं हैमवताह्वयम्।
दशाधाकल्पवृक्षाढ्यं जघन्यं भोगभूतलम् ॥१२७॥
मद्यवाद्यान्नदीपांगा वस्त्रभाजनदामदाः।
ज्योतिर्भूषागृहांगाश्चदशधाकल्पशाखिनः ॥१२८॥
पात्रदानफलेनैते तत्रोत्पन्नार्यदेहिनाम्।
ददतेदशधाभोगान् सारान्सङ्कल्पितान्परान् ॥१२९॥

अर्थ—हिमवान् पर्वत का उल्लंघन करने पर हैमवत नाम का क्षेत्र प्राप्त होता है, जिसमें शाश्वत जघन्य भोगभूमि है। जिसका भूमितल निरन्तर दस प्रकार के कल्पवृक्षों से व्याप्त रहता है। पात्र दान के फल से जो जीव यहाँ उत्पन्न होते हैं, उन आर्यों को १ मद्य (पानांग), २ वाद्य (तूर्यांग), ३ अन्न (आहारांग), ४ दीपांग, ५ वस्त्रांग, ६ भाजन (पात्रांग), ७ दाम (पुष्पांग), ८ ज्योतिरांग, ९ भूषणांग और १० गृहांग ये दस प्रकार के कल्पवृक्ष संकल्प मात्र से दस प्रकार के उत्तम भोग देते हैं ॥१२७-१२९॥

नाभिपर्वतों के नाम, प्रमाण, स्थान एवं स्वामी आदि का वर्णन करते हैं—

शब्दवान् प्रथमो नाभिगिरिर्विकृतिवांस्ततः।
गन्धवान् माल्यवानेते चत्वारो नाभिपर्वताः ॥१३०॥
सहस्रयोजनोत्सेधावृत्ताः सर्वत्र सन्निभाः।
सहस्रयोजन्व्यासावनवेद्यादिभूषिताः ॥१३१॥
प्रत्येकं मूर्ध्निचैतेषांजिनेन्द्रभवनाङ्कितम्।
सप्तभूम्युन्नतैः सौधैर्वनवेदीसुतोरणैः ॥१३२॥
युतं स्यान्नगरं रम्यं व्यन्तराणां च शाश्वतम्।
क्षेत्रे हैमवते शब्दवानाद्यो नाभिपर्वतः ॥१३३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शब्दवान्नाभिशैलाग्र पुरे राजामरार्चितः।
स्वातिनामाऽमरोमान्यः पल्यैकायुष्कऊर्जितः ॥१३४॥
स्याद्धरिक्षेत्रमध्येविकृतिवान्नाभिसद्गिरिः ।
तदद्रिस्थपुरेराजारुणप्रभामरोमहान् ॥१३५॥
रम्यकक्षेत्रमध्येस्याद्गन्धवान्नाभिपर्वतः ।
तन्मूर्धस्थपुरेभूपः पद्मप्रभाह्वयः सुरः ॥१३६॥
स्याद्धैरण्यवतेवर्षेशैलो नाम्ना हि माल्यवान्।
तदग्रस्थपुरे स्वामी प्रभासाख्योऽमरोऽद्भुतः ॥१३७॥
ततोमहाहिमाद्रिं चोल्लङ्घ्यकल्पद्रुमाश्रितम्।
तृतीयं हरिसत्क्षेत्रां मध्यमं भोग-भूतलम् ॥१३८॥

अर्थ—(शरीर के मध्य नाभि के सदृश जो पर्वत क्षेत्र के ठीक मध्य में स्थित रहते हैं उन्हें नाभिगिरि कहते हैं)। शब्दवान्, विकृतिवान्, गन्धवान् और माल्यवान् ये चार नाभि पर्वत हैं। वन एवं वेदी आदि से विभूषित ये वृत्ताकार (गोल) पर्वत १००० योजन ऊँचे और १००० योजन चौड़े हैं। प्रत्येक नाभि पर्वतों के शिखर पर व्यन्तर देवों के वन वेदी से वेष्टित, उत्तम तोरणों से-युक्त, अत्यन्त रमणीक एवं शाश्वत नगर हैं, जो जिन चैत्यालयों से अलंकृत और सात तल ऊँचे श्रेष्ठ भवनों से युक्त हैं। हैमवत क्षेत्र के मध्य में प्रथम शब्दवान् नाम का नाभिपर्वत स्थित है। उस शब्दवान् नाभिपर्वत के शिखर पर स्थित नगर का राजा (हजारों) देवों से पूजित और एक पल्य की उत्कृष्ट आयु वाला स्वाति नाम का देव है। हरिक्षेत्र के मध्य में विकृति (विजटा) वान् नाभिगिरि अवस्थित है, जिसके शिखर पर स्थित नगर का राजा अरुणप्रभ नाम का श्रेष्ठ देव है। रम्यक क्षेत्र के मध्य में गन्धवान् नाम का नाभिगिरि पर्वत है, जिसके शिखर पर स्थित नगर का राजा पद्मप्रभ नाम का देव है। इसी प्रकार हैरण्यवत क्षेत्र के मध्य में स्थित माल्यवान् नाभिगिरि है जिसके शिखर पर स्थित नगर का स्वामी प्रभास नाम का अद्भुत बलशाली देव है ॥१३०-१३७॥

महाहिमवान् पर्वत के बाद जो हरि नाम का तृतीय क्षेत्र है, उसमें शाश्वत मध्यम भोगभूमि है और उसकी भूमि निरन्तर कल्पवृक्षों को आश्रय देती है। अर्थात् कल्पवृक्षों से व्याप्त रहती है ॥१३८॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत नाम के सात क्षेत्र हैं, जिनमें भरतैरावत क्षेत्रों के मध्य में विजयार्ध (नाभिगिरि) पर्वत स्थित हैं और इन दोनों क्षेत्रों के आर्य खण्डों में काल परिवर्तन के निमित्त से अस्थिर भोगभूमियों की और कर्मभूमि की रचना होती रहती है। म्लेच्छखण्ड शाश्वत रहते हैं। हैमवत और हैरण्यवत इन दो क्षेत्रों के मध्य में क्रमशः शब्दवान् और माल्यवान् नाभिगिरि अवस्थित हैं, तथा इन क्षेत्रों में शाश्वत जघन्य भोगभूमि की रचना है। हरि और रम्यक इन दो क्षेत्रों के मध्य में क्रम से विकृतिवान् और गन्धवान् नाभिगिरि अवस्थित

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हैं तथा इनमें शाश्वत मध्यम भोगभूमि की रचना है। विदेह क्षेत्र के मध्य में सुदर्शन मेरु नाभिगिरि अवस्थित है। इस क्षेत्र में देवकुरु, उत्तरकुरु, नाम की शाश्वत उत्तम भोगभूमियों के साथ-साथ अन्य ३२ विदेह शाश्वत कर्मभूमि की रचना से युक्त हैं। विदेहक्षेत्र का सम्पूर्ण वर्णन आगे छठे अधिकार में किया जा रहा है।

अब इस अधिकार का संकोच करते हैं–

एते सद्भरतादयोत्र विधिना वर्षास्त्रयो वर्णिताः,
व्यासाद्यैश्च यथा तथा बुधजनैरैरावताद्यास्त्रयः।
ज्ञेयाः कर्मसुभोगभूमिकलिता आर्येतराद्यैश्चिताः,
पुण्यापुण्यफलप्रदाबहुविधाः सर्वज्ञदृग् गोचराः ॥१३९॥

अर्थ–इस प्रकार सर्वज्ञ प्रभु के ज्ञानगोचर होने वाले भरत आदि तीन क्षेत्रों के व्यास आदि का उपयुक्त विधि के अनुसार जैसा वर्णन किया है वैसा ही ज्ञानीजनों के द्वारा ऐरावत आदि तीन क्षेत्रों का भी जान लेना चाहिए। अनेक प्रकार के पुण्य और पाप के फल को प्रदान करने वालीं ये कर्मभूमियाँ एवं भोगभूमियाँ आर्य जनों से एवं अन्य जनों से निरन्तर व्याप्त रहतीं हैं ॥१३९॥

अधिकारान्त मङ्गलाचरण–

सर्वज्ञान् श्रीगणेशान् श्रुतसकलकृतः संयतान्विश्ववन्द्यान्,
पञ्चाचारादि भूषांस्त्रिभुवनमहितान् पाठकान् ज्ञातविश्वान्।
प्राप्तान्सर्वाङ्गपारं त्रिकसमयसुयोगोग्रदीप्तादि सर्वैः,
सारैर्युक्तांस्तपोभिस्तदसमगुणसिद्ध्यै च साधून् नमामि ॥१४०॥

इति सिद्धान्तसारदीपक महाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते चतुर्दशमहानदी, विजयार्ध, वृषभाद्रि नाभिगिरि वर्णनोनाम पञ्चमोऽधिकारः ॥५॥

अर्थ–विश्ववन्दनीय सर्व अरहन्तों को, द्वादशांग की रचना करने वाले गणधर देवों को, संयम एवं पञ्चाचार से विभूषित जगत् पूज्य आचार्यों को, द्वादशांग के पार पहुँचकर प्राप्त किया है समस्त तत्त्वों का ज्ञान जिन्होंने, ऐसे उपाध्यायों को तथा तीनों समयों (ऋतुओं) में उत्तम आतापन आदि योगों एवं उग्र और दीप्त आदि सारभूत सर्व तपों को धारण करने वाले साधु परमेष्ठियों को मैं उन अनुपम गुणों की सिद्धि के लिये नमस्कार करता हूँ ॥१४०॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नाम महाग्रन्थ में चौदह महानदियों, विजयार्धों, वृषभाचलों और नाभिगिरि पर्वतों का वर्णन करने वाला पंचम अधिकार समाप्त।

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

षष्ठ अधिकार

विदेहक्षेत्र वर्णन

मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा

विदेहस्थान् जिनेन्द्रादीन् प्रणम्य परमेष्ठिनः।
तन्मूर्त्यादींश्च वक्ष्येऽहं विदेहक्षेत्रमुत्तमम् ॥१॥

अर्थ—विदेह क्षेत्रों में स्थित विद्यमान तीर्थंकरों को, उन [अर्हन्तों] की प्रतिमाओं को तथा पञ्च परमेष्ठियों को नमस्कार करके मैं उत्तम विदेह क्षेत्र को कहूँगा अर्थात् विदेह क्षेत्र का विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा ॥१॥

विदेहक्षेत्रस्थ सुदर्शनमेरु का सविस्तार वर्णन—

तस्यमध्ये महामेरुः सुदर्शनाह्वयोमहान्।
नवाधिकनवत्या चोच्छ्रितःसहस्रयोजनैः ॥२॥
योजनानां सहस्रैककन्दस्त्रिक्षण[1] ऊर्जितः।
विचित्राकारसंस्थानोनाभिवद्भाति सुन्दरम् ॥३॥
सहस्रयोजनैर्वज्रमयश्चित्राधरान्तगः ।
नानारत्नमयो मध्ये स्यादेकषष्टिसम्मितैः ॥४॥
सहस्रयोजनेश्चाग्रेशातकुम्भमयोगिरिः ।
नित्यो[2] दीप्तोयमत्राष्टत्रिंशत्सहस्रयोजनैः ॥५॥

अर्थ–विदेह क्षेत्र के मध्य में सुदर्शन नाम का एक श्रेष्ठ महामेरु है, जो ९९००० योजन ऊँचा, १००० योजन की जड़ वाला, अनादिनिधन, श्रेष्ठ, सुन्दर और नानाप्रकार के आकारों से युक्त तथा जम्बूद्वीप की नाभि के सदृश शोभायमान होता है। यह सुमेरु पर्वत चित्रा पृथ्वी के अन्त पर्यन्त अर्थात् मूल में एक हजार योजन प्रमाण वज्रमय, मध्य में इकसठ हजार योजन पर्यन्त अनेकों रत्नमय और अग्रभाग में ३८००० योजन पर्यन्त देदीप्यमान स्वर्णमय एवं अकृत्रिम है ॥२–५॥

अस्य विस्तार व्याख्यानं बालावबोधाय संस्कृतभाषया वक्ष्ये—

चित्राऽवनिं भित्त्वा स्थितस्य मेरोः कन्दतले व्यासः नवत्यधिकदशसहस्रयोजनानि योजनैकादश-भागीकृतानां दशभागाः, परिधिश्चैकत्रिंशत्सहस्रनवशतदशोत्तरयोजनानि योजनैकदशभागानां साधिकौ द्वौ भागौ। ततः क्रमह्रासेन पृथ्वोतलेऽस्य विस्तारः दशसहस्रयोजनानि, परिधिश्चैक त्रिंशत्सहस्र-षट्शतकिञ्चिदून–त्रयोविंशतियोजनानि। ततः क्रमहान्या[3] तस्य पार्श्वे पञ्चशतयोजनान्यूर्ध्वं गत्वा

१. त्रिकाले २. दीप्नो अ, ज. न. ३. क्रमहान्यैतस्य अ. ज. न.।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पञ्चशतयोजन विस्तृतं नानापादपाद्याकीर्णं सुन्दरं नन्दनाख्यं वनं विद्यते। तत्र नन्दनवनसहित मेरोर्बाह्ये विष्क्रम्भः नवसहस्र-नवशतचतुःपञ्चाशद्योजनानि, योजनैकादशभागानां षड्भागाः, परिधिश्चैक त्रिंशत्सहस्रचतुःशतैकोनाशीति-योजनानि। नन्दनवनादृते मेरोरभ्यन्तरे व्यासः अष्टसहस्रनवशत-चतुःपंचाशद्योजनानि योजनैकादशभागानां षड्भागाः, परिधिश्चाष्टाविंशतिसहस्रत्रिशतषोडशयोजनानि, योजनैकादशभागानां षड्भागाः[१], ततोस्य सार्धद्विषष्टि सहस्रयोजनान्यूर्ध्वं भागं मुक्त्वा तृतीयं सौमनसाख्यं वनं स्यात्। तेषां सार्धद्विषष्टिसहस्रयोजनानां मध्येऽयं मेरुः एकादशसहस्रयोजन पर्यन्तं समपार्श्व ऋजुर्भवति। ततः क्रमह्रान्या सार्धैक पञ्चाशत्सहस्रयोजन-पर्यन्तमेष ह्रस्वोऽस्ति। तत्र पञ्चशतयोजन-विस्तृतं तद्वनं मुक्त्वाऽस्याभ्यन्तरे विष्कम्भः द्विसप्तत्यधिक-द्वात्रिंशच्छतयोजनानि, योजनैकादश-भागानामष्टौ भागाः, परिधिश्च नवसहस्रनव-शतचतुर्णवतियोजनानि, योजनैकादशभागानां षट्भागाः। ततोऽस्य षट्त्रिंशत्सहस्रयोजनान्युर्ध्वमितिक्रम्य चतुर्णवत्यग्रचतुःशत-योजनविस्तारं चतुर्थं पाण्डुकवनं स्यात्।

तेषां षड्त्रिंशत्सहस्रयोजनानां मध्येऽयं एकादशसहस्रयोजनपर्यन्तं हानिवृद्धिरहितः सर्वत्र सदृशोऽस्ति। ततः क्रमहान्या पञ्चविंशतिसहस्रयोजनान्तं ह्रस्वो भवति। तत्रास्य मस्तके वनाङ्कृते विस्तृतिः सहस्रयोजनानि परिधिश्च किञ्चिदग्र द्वि षष्ट्यधिकैक त्रिंशच्छतयोजनानि। तस्य शिरोमध्यभागे चत्वारिंशद्योजनोन्नता, मूले द्वादशयोजनव्यासा, मध्येऽष्ट योजनविस्तीर्णा मूर्ध्नि चतुर्योजनविस्तृता वैडूर्यरत्नमयी उत्तरकुरुभोगभूमिजार्य बालान्तरेण सौधर्म स्वर्गस्याद्यपटलस्थ[२]। मृजुविमानमस्पृशन्ती चूलिकास्ति।

मेरोः पूर्वापर दिग् भागयोः प्रत्येकं द्वाविंशतिसहस्रयोजनायामं, दक्षिणोत्तरे सार्धद्विशतयोजनविस्तृतं नानापादपाकीर्णं रम्यं भूतले भद्रशालाख्यं वनं स्यात्। तत्रास्य चतुर्दिक्षु नानाविभूतिकलिताश्चत्वारः श्रीजिनालयाः सन्ति। तथा नन्दनसौमनसपाण्डुकवनानां प्रत्येकं चत्वारश्चैत्यालयाभवन्ति। अमीषां चैत्यालयानां व्यासेनाग्रे व्याख्यानं करिष्यामि।

नन्दनवनेऽस्यैशान्यां दिशिशतयोजनोच्छ्रितं, मूलेशतयोजनविस्तृतं, मस्तके पञ्चाशद्योजनविष्कम्भं नानारत्नमयं बलभद्रनामकूटं स्यात्। तस्योपरि विचित्रप्राकारगोपुरवनादि भूषितानि पुराणि सन्ति। तेषु प्रभुर्व्यन्तरामरो बलभद्राख्यो वसति। तस्मिन्नन्दनेवने मणिसंज्ञचारणाह्वयगन्धर्वाख्य चित्रनामानि, पञ्चाशद्योजनोत्सेधानि, त्रिंशद्योजनायामविष्कम्भानि, नानामणिविचित्रितानि मेरोश्चतुर्दिक्षु चत्वारि भवनानि सन्ति। तेषु प्रत्येकं रूपलावण्यादिभूषिताः सार्धत्रिकोटिप्रमा दिक्कन्यावसन्ति।

तेषां गृहाणां पतयः रक्तकृष्णस्वर्णाभश्वेतवस्त्राद्यलंकृताः देववृन्दान्विताः सोम-यम-वरुण-कुवेराह्वयाः लोकपाला भवेयुः।

वज्राख्यवज्रप्रभसुवर्णसुवर्णप्रभनामानि पञ्चविंशति योजनोत्सेधानिपञ्चदशयोजनायाम विस्तराणि

---

१. अष्टौ भागा अ.ज. न.। २. मुडु विमान प्र. ज. न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चत्वारिगृहाणि सौमनस वने मेरोश्चतुर्दिक्षु भवन्ति।

लोहिताञ्जनहारितपाण्डुराह्वयानि सार्धद्वादशयोजनोन्नतानि सार्धसप्तयोजनदीर्घविस्तृतानि वरसिंहासनपल्यङ्कादि सहितानि, पञ्चवर्णरत्नमयानि चत्वारि भवनानि पाण्डुकवनेऽस्य पूर्वादिदिक्चतुष्टये सन्ति। एतेषु अष्टभवनेषु प्रत्येकं सार्धत्रिकोटि दिक्कुमार्यो वसन्ति। अमीषामष्टगृहाणां स्वामिनोजिन-बिम्बाङ्कितशेखराः देववृन्दावृताः, रक्तकृष्णस्वर्णाभश्वेतवस्त्रनेपथ्याद्यलंकृताः, स्वयंप्रभारिष्टजलप्रभ-वर्गप्रभविमानवासिनः सोमयमवरुणकुवेराख्याः सौधर्मैशान सम्बन्धिनो विख्याता लोकपाला भवन्ति। सोमवरुणयोरायुः सार्द्धपल्यद्वयं स्यात्। यमकुवेरयोरायुः पादोनपल्यत्रयं च।

तत्रैव नन्दनवने पूर्वदिक् चैत्यालयस्य पार्श्वयोर्द्वयोः नन्दनमन्दराख्ये द्वे कूटे भवतः। दक्षिण-दिग्भागस्थजिनालयस्य द्वि पार्श्वयोः निषधहिमवत्संज्ञे कूटे द्वे स्तः। पश्चिमदिग् चैत्यालयस्योभयपार्श्वयोः रजतरुचकाह्वये द्वे कूटे स्यातां। उत्तरदिग्जिनालयस्य द्वयोः पार्श्वयोः सागरवज्राभिधे कूटे भवतः। अमीषामष्ट-कूटानां उदयः पञ्चशतयोजनानि, भूव्यासः पञ्चशतयोजनानि, मध्यविस्तारः पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशतयोजनानि, मुखविष्कम्भः सार्धद्विशतयोजनानि। शिखरे च क्रोशायामाः, अर्धक्रोशविस्तृताः पादोनक्रोशोन्नता नानारत्नमयाः दिग्वधूनां प्रासादा भवन्ति। तेषु प्रासादेषु मेघङ्करा-मेघवती-सुमेघामेघमालिनी-तोयन्धराविचित्रा-पुष्पमालिन्यनन्दिताख्याः, दिक्कुमार्यो वसन्ति। एवं सर्वकूटदिग्वधूप्रासादानन्दनवनवत्सौमनसवने भवन्ति।

मेरोराग्नेयदिग्भागे उत्पला-कुमुदा-नलिन्युत्पलोज्ज्वलाऽह्वयाश्चतस्रो वापिका भवेयुः। नैऋत्यदिशि भृङ्गा-भृङ्गनिभा-कज्जला-कज्जलप्रभाख्याश्चतस्रो वाप्यः सन्ति। वायुदिग्भागे श्रीभद्रा[१] श्रीकान्ता-श्रीमहिता-श्रीनिलयाभिधावापिकाः स्युः। ऐशानीदिशि नलिनी-नलिन्यूर्मि-कुमुदा-कुमुदप्रभासंज्ञाश्चतस्रो वाप्यो भवन्ति।

एतामणितोरणवेदिकादि मण्डिता, विचित्ररत्नसोपानाः, पञ्चाशद्योजनायामाः, पञ्चविंशतियोजन विस्तृताः, दशयोजनावगाहाः, चतुष्कोणाः षोडश वाप्यो हंस-सारस-चक्रवाकादि ध्वानैस्तरां विभान्तिस्म। तासां सर्वासां वापीनां मध्यभागे सार्धद्विषष्ठियोजनोत्सेधाः, क्रोशाधिकैकत्रिंशद्योजनायामविस्ताराः, सिंहासन-सभास्थानाद्यलंकृताः, द्विक्रोशावगाहा, रत्नमयाः प्रासादाः सन्ति। तेषु आग्नेयनैऋत्यदिक्स्थित प्रासादेषु सौधर्मेन्द्रः स्वामी लोकपालादि देव शचीभिः समं विविधां क्रीडां करोति। वायव्यैशान दिग्भागस्थ गेहेष्वैशानेन्द्रः पतिः देव्यादिभिश्चमुदा क्रीडति। यथात्रनन्दनवनेवापीप्रासादाः सौधर्मेशानेन्द्रयोर्वर्णिता तथोक्तक्रमेण-वापीप्रासादाः सर्वे सौमनसवनेऽपि भवन्ति नात्रकश्चिद्विशेषः।

पाण्डुकवने चूलिकायाः प्रदक्षिणं ऐशानादि विदिक्षुशतयोजनायामाः पञ्चाशद्योजनविस्तीर्णाः अष्ठयोजनोन्नताः अर्धचन्द्रोपमाः रत्नतोरणवेदिकाद्यलंकृताः स्वस्वक्षेत्रसन्मुखाः स्फुरत्तेजोमयाः पाण्डुकशिला-द्याश्चतस्रोदिव्याः शिलाः सन्ति। तासामाद्या स्वर्णवर्णा पूर्वापरदीर्घा भरतक्षेत्रोत्पन्नतीर्थकराणां

१. श्रीप्रभा न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जन्मस्नान पीठिका पाण्डुकशिला भवति। द्वितीया अर्जुनच्छाया दक्षिणोत्तरदीर्घा अपरविदेहजजिनेन्द्राणां जन्माभिषेक पीठिका पाण्डुकम्बलाख्या आग्नेयदिशि शिलाऽस्ति। तृतीया तपनीयनिभापूर्वापरदीर्घा, ऐरावतवर्षज तीर्थकृज्जन्माभिषेकनिबद्धा रक्ताह्वया नैऋत्यदिग्भागे शिला स्यात्। चतुर्थीपद्मवर्णा दक्षिणोत्तरदीर्घा पूर्वविदेह-जातश्रीजिनानां जन्मस्नानहेतुभूतावायुदिग्भागे रक्तकम्बलाख्याशिलाविद्यते। आसां चतुः शिलानामुपरिप्रत्येकं स्फुरद्रत्नमयानि त्रीणि सिंहासनानि भवन्ति। तेषां सिंहासनानां मध्यस्थ सिंहासनं पञ्चशतधनुस्तुंगं, पञ्चशतचापभूविस्तृतं सार्ध द्विशतदण्डाग्रव्यासं तीर्थकृतां जन्माभिषेकस्थित्यै स्यात्। दक्षिणदिग्भागस्थितं सिहासनं जिनाभिषेक समये सौधर्मेन्द्रस्योपवेशनाय भवति। उत्तरदिशास्थ-हरिविष्टरं तीर्थकृज्जन्माभिषेचनसमये ऐशानेन्द्रस्य संस्थितयेऽस्ति।

घण्टासिंहनादशङ्खस्वरभेरीध्वानासन कम्पनादि चिन्हैर्जिनोत्पत्तिं विज्ञायकल्पवासिज्योतिष्क-भवनवासिव्यन्तरवासवाः, परया भूत्या छत्र ध्वजविमानाद्यैर्नभोंगणमाच्छादयन्तः, नाना पटहादि-ध्वानैर्वधिरीकृत दिग्मुखाः, तीर्थकृज्जन्माभिषेकोत्सवाय सानन्दाः, धर्मरागरसोत्कटा मेरुं प्रति स्वस्थानादागच्छन्ति। तस्मिन् जन्माभिषेक समये इंद्राणां मुख्यः सामरः ऐरावतगजेन्द्रारूढः त्रिभिः [तिसृभिः] परिषद्भिः सप्तानीकैश्चालंकृतः सौधर्मेंद्रः स्वर्गादत्रायाति। अस्येन्द्रस्य प्रथमायामभ्यन्तरायां परिषदि दिव्यरूपानना: प्रहरणाभरणाद्यलंकृताः, द्वादशलक्षदेवा भवन्ति। मध्यमपरिषदिचतुर्दशलक्षाः सुराः, बाह्यपरिषदि षोडशलक्षनिर्जराः भवेयुः। अन्तर्मध्यबाह्यपरिषदां क्रमेण रवि-शशि-यदुपामहत्तरमराः सन्ति। वृषभरथतुरंगगजनृत्यानीकगन्धर्वभृत्यनामानि प्रत्येक सप्तसप्तकक्षायुतानि, सप्तानीकानि प्रथमदेवराजस्य पुरो महताडम्बरेण जन्माभिषेक समये व्रजन्ति। आद्य कक्षायां शंख कुन्देन्दु धवलाश्चतुरशीतिलक्षाः वृषभाः गच्छन्ति। अष्टषष्टिलक्षैककोटि वृषभाः जपापुष्पाभाश्चद्वितीय कक्षायां यान्तिस्म। तृतीयानीके नीलोत्पल सन्निभाः षट्त्रिंशल्लक्षत्रिकोटि वृषभाश्च। चतुर्थानीके द्विसप्ततिलक्षषट्कोटिवृषभाः मरकतमणिवर्णाश्च। पञ्चम्यां कक्षायां कनकनिभाश्चत्वारिंशल्लक्ष-त्रयोदशकोटिवृषभाश्च। षष्ट्यां अञ्जनाभाः अष्टाशीतिलक्षषड्विंशतिकोटिवृषभाश्च। सप्तमानीके किंशुक-कुसुमप्रभाः षट्सप्ततिलक्षत्रिपञ्चाशत्कोटिवृषभाव्रजन्ति। ध्वनन्नानापटहादि तूर्यान्तरिताः घण्टाकिंकिणीवर-चामरमणिकुसुममालाद्यलंकृताः, रत्नमयमृद्वासनाः, देवकुमारैर्वाहिताः षडधिक-शतकोट्यष्टषष्टिलक्षप्रमाः, दिव्यरूपाः सप्तकक्षान्विताः सर्वे वृषभास्तस्मिन्महोत्सवे व्रजन्ति।

यथैताः द्विगुणद्विगुणसंख्याः सप्तवृषभानीकानां वर्णिताः तथाशेषरथादिषडनीकानां समानसंख्याः ज्ञातव्याः।

आद्ये अनीके शशितुषाराभाः धवलातपत्रालंकृताः धवलरथाः गच्छन्ति। द्वितीये वैडूर्यमणिविनिर्मित-चतुश्चक्रविराजमाना मन्दारकुसुमनिभा महारथाश्च। तृतीये कनकातपत्रचमरध्वजाङ्किताः, निष्टप्तकाञ्चन-निर्मितारथाश्च। चतुर्थेमरकतमणिमय बहुचक्रोत्पन्नशब्दगम्भीराः, दूर्वावर्णारथाश्च। पञ्चमे कर्के[१]तमणि-

१. कर्केतन अ. न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जात-बहुचक्रोत्पन्न सत् स्वराः, नीलोत्पलदलाभारथाश्च। षष्ठे पद्मरागमणिघटित चारुचक्रधराः कमलवर्णाः रथाश्च। सप्तमे अनीके शिखिकण्ठवर्णमणिगणोत्थकिरणपिञ्जरिताः इन्द्रनीलमणिप्रभाः महारथाः गच्छन्ति। एते सप्त सेनान्विताः, बहुदेवदेवीपूर्णाः, वरचमरछत्रकेतुकुसुममालादिभासमानाः, कक्षान्तरान्तर ध्वनन्नाना-देवानका नभस्तलमाच्छादयन्त उत्तुङ्गाः पृथुरथा जिनजन्माभिषेकोत्सवे शक्रस्य महतापुण्येन पुरः व्रजन्ति।

प्रथमायां अश्वसेनायां क्षीराब्धितरङ्गनिभाः, सितचामरालंकृता धवलाश्वा गच्छन्ति। द्वितीयायां उदयभानुसन्निभाश्चलद्वरचामरास्तुरङ्गाश्च। तृतीयायां निष्टप्तकनकसमखुरोत्थरेणु पिञ्जरिता गोरोचनवर्णा अश्वाश्च। चतुर्थ्यां मरकतमणिवर्णाः शीघ्रगामिनोऽश्वा गच्छन्ति। पंचम्यां रत्नाभरणभूषिता, नीलोत्पल-पत्राभाहयाश्च। षष्ठ्यां जपापुष्पवर्णा अश्वाश्च। सप्तम्यां सेनायां इन्द्रनीलप्रभाघोटकायान्ति। एते सप्तसेनान्विताः, नानाभरणभूषिताः, स्वस्वसेनाऽग्रोत्थवाद्यरवान्तरिता, वररत्नासना, देवकुमारैर्वाहिता, दिव्योन्नतकाया, अश्वास्तज्जन्माभिषेकोत्सवे गच्छन्ति।

चतुरशीतिलक्षप्रमा गोक्षीरवर्णा आदिमे गजसैन्येपर्वतसमोन्नत पृथुदेहा गजाः व्रजन्ति। द्वितीये भानुतेजसस्तद्द्विगुणा दन्तिनश्च। तृतीये तेभ्यो द्विगुणा निष्टप्तकनकाभागजाश्च। चतुर्थे सर्षपकुसुम-वर्णास्तद्द्विगुणा वारणाश्च।

पंचमेतेभ्यो द्विगुणा नीलोत्पलाभा-गजाश्च। षष्ठे तद् द्विगुणा जपापुष्पप्रभा दन्तिनश्च सप्तमे सैन्ये षट्सप्ततिलक्षत्रिपंचाशत्कोटिगणना, अंजनाद्रिसमतेजसो हस्तिनोव्रजन्ति। एते सर्वे एकत्रीकृताः षडग्रशतकोट्यष्टषष्टि लक्षसंख्यानाः सप्तसेनान्विता उत्तुङ्गदन्तमुसला, गुडुगुडुगर्जन्तो गलन्मदलिप्तांगाः, प्रलम्बित-रत्नघण्टाकिंकिणीकुसुमदामशोभिता, नानापताकाछत्रचमरमणिकनकरज्ज्वाद्यलंकृताः अंतरान्तरध्वनद्वेवानका, वरदेवदेव्यारोहिताश्चलद्गिरिसमोन्नतमहादिव्यदेहा गजेन्द्रास्तस्मिन् जिनजन्मोत्सवे सौधर्मेंद्रस्य प्रवरं पुण्यफलं लोकानां दर्शयन्त इव स्वर्गान्मेरुं प्रत्यागच्छन्ति।

प्रथमे नर्तकानीके विद्याधर कामदेव राजाधिराजानां चरित्रेणनटन्तोऽमरा गच्छन्ति। द्वितीयेसकलार्ध महामण्डलीकानां वरचरित्रेण नर्तनं कुर्वन्तः सुराश्च। तृतीये बलभद्रवासुदेवप्रतिवासुदेवानांवीर्यादि-गुणनिबद्धचरित्रेण नृत्यन्तो देवा गच्छन्ति। चतुर्थे चक्रवर्तिनां विभूति वीर्यादिगुणनिबद्धचरित्रेण महानर्तनं भजन्तोऽमराश्च। पञ्चमे चरमांगयतिलोकपाल सुरेन्द्राणां गुणरचितचरित्रेण नटन्तो निर्जराश्च। षष्ठे गणधरदेवानां ऋद्धिज्ञानादि गुणोत्पन्नवरचरित्रेण तद्गुणरागरसोत्कटाः परं नृत्यं कुर्वाणाः सुराः यान्ति। सप्तमे नर्त्तकानीके तीर्थकराणां चतुस्त्रिंशदतिशयाष्टप्रातिहार्यानन्तज्ञानादिगुणरचितचरित्रेण तद्गुणरागरसोत्कटा नाकिनः प्रवरं नर्त्तनं प्रकुर्वन्तो गच्छन्ति। अमी सप्तानीकाश्रिता महानृत्यविशारदाः, सानन्दा, दिव्यवस्त्रा-भरणभूषिता, महारूपा नटन्तो नर्त्तकामराः मेरुं प्रत्युत्पतन्ति।

अमीभिः सप्तस्वरै र्जिनेन्द्रगणधरादि गुणनिबद्धानि नानामनोहरगीतानि गायन्तो दिव्यकण्ठा वस्त्राभरणमण्डिता गन्धर्वामरास्तस्मिन् जिनजन्ममहोत्सवे सप्तानीकान्विता गच्छन्ति। आद्य अनीके षड्ज स्वरेण जिनेन्द्रगुणान् गायन्तः, द्वितीये ऋषभस्वरेण च गानं कुर्वन्तस्तृतीये गान्धारनादेन गायन्ती

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गन्धर्वा गच्छन्ति। चतुर्थे मध्यमध्वनिना जन्माभिषेकसम्बन्धिगीतान् गायन्तः। पञ्चमे पञ्चमस्वरेण गानं कुर्वाणाः। षष्ठे धैवतध्वानेन च गायन्तः, सप्तमे निषादघोषेणकलं गीतगानं कुर्वन्तो गन्धर्वा व्रजन्ति। एते स्वस्वदेवीयुताः सप्तानीकाश्रिताः किन्नरैः किन्नरीभिश्च सार्धं वीणामृदङ्गझल्लरी-तालादिभिर्जिनजन्माभिषेकोत्सवेगुणगणैः रचितानि, बहुमधुरशुभमनोहरगीतानि गायन्तो धर्मरागरसोत्कटा गन्धर्वसुरास्तन्महोत्सवे व्रजन्ति।

ततः सप्तसेनान्विता दिव्याभरणालंकृता अनेकवर्णध्वजछत्रारोपितकरा देवभृत्या गच्छन्ति। प्रथमायां सेनायां अञ्जनप्रभा ध्वजकराङ्किता भृत्यामरा यान्ति। द्वितीयायां मणिकाञ्चनदण्डशिखरस्थचलच्च-मरान्वितनीलध्वजारोपितपाणयो भृत्याश्च। तृतीयायां वैडूर्यदण्डाग्रस्थधवलकेतुकृतकरा देवाश्च। चतुर्थ्यां करिसिंहवृषभदर्पण शिखिसारस गरुडचक्ररविरूपाकार कनकध्वजाश्रितमरकतमणिदण्डगृहीतहस्ताः भृत्यसुरा व्रजन्ति। पञ्चम्यां विकसित कमलाभपद्मध्वजारोपितविद्रुममणिमयतुंगदण्डाङ्कितकराश्च। षष्ठ्यांगोक्षीरवर्णश्वेतपताकाश्रितकनकदण्डयुक्तकराश्च, स्फुरन्मणिगणनिबद्धदण्डाग्रस्थैर्मुक्तादामालंकृत-छत्रनिवहैर्धवल-वर्णैर्युतपाणयो भृत्यामराः सप्तम्यां सेनायां गच्छन्ति। एते सप्तानीकाङ्किता, जिनभक्तिपरायणा भृत्यामराः सोद्यमास्तन्महोत्सवे प्रयान्ति। अमी षट्सैन्यानां पिण्डीकृताः सर्वे द्विनवति लक्षद्विपञ्चाशत्कोटिप्रमाणास्तस्मिन् महोत्सवे गच्छन्तो मरुद्वशात् (द्) दिव्याध्वजास्तरांराजन्ते। षट्सप्ततिलक्षत्रिपंचाशत् कोटिप्रमाः श्वेतछत्राश्च। एते सर्वे वृषभादिभृत्यदेवांता एकोनपंचाशदनीका-नामेकत्रीकृताः सप्तशतषट् चत्वारिंशत्कोटिषट्सप्ततिलक्षा भवन्ति।

यथैताः सप्तविधाः सेनाः सौधर्मेन्द्रस्यात्र जिनजन्ममहोत्सवे आगच्छन्ति। तथा सर्वेन्द्राणां प्रत्येकं सप्तसेनाः स्वस्व सामानिकाद्द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति च आयान्ति। इत्युक्त सेनात्रिपरिषदावृतः सौधर्मेन्द्र ऐरावत गजेन्द्रं शच्यासममारुह्य महामहोत्सवेन स्वर्गान् जिनजन्मकल्याणनिष्पत्यै निर्गच्छति। अंगरक्षाः नानायुधालंकृताः सुरेशं परितः निर्यान्ति। प्रतीन्द्रसामानिक त्रायस्त्रिंशल्लोकपालाद्याः शेषामरा इन्द्रेण सह दिवो मेरुं प्रत्यागच्छन्ति।

अब मन्दबुद्धिजनों को समझाने के लिये इस सुमेरु पर्वत का निरूपण विस्तार पूर्वक किया जा रहा है—

सुदर्शन मेरु की जड़ चित्रा पृथ्वी को भेद कर एक हजार योजन नीचे तक गई है। जड़-नींव के नीचे मेरु का व्यास १००९०$\frac{१०}{११}$योजन और इसकी परिधि का प्रमाण ३१९१० $\frac{२}{११}$, योजन (कुछ अधिक) है। इसके बाद क्रम से हीन होता हुआ (एक हजार की ऊँचाई पर) पृथ्वीतल पर मेरु की चौड़ाई १०००० योजन और परिधि का प्रमाण कुछ कम ३१६२३ योजन है। इसके बाद क्रमशः हानि होते हुए मेरु के दोनों पार्श्वभागों में ५०० योजन ऊपर जाकर ५०० योजन विस्तार वाला नानाप्रकार के वृक्षों से व्याप्त एक सुन्दर नन्दन नाम का वन विद्यमान है। वहाँ नन्दनवन सहित मेरु का बाह्यविष्कम्भ ९९५४ $\frac{६}{११}$ योजन है। जिसकी परिधि ३१४७९ योजन प्रमाण है। नन्दनवन के बिना मेरुपर्वत का अभ्यन्तर व्यास ८९५४$\frac{६}{११}$, योजन और परिधि २८३१६$\frac{६}{११}$योजन है। इसके बाद मेरु पर्वत पर ६२५०० योजन ऊपर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जाकर तृतीय सौमनस नाम का सुन्दर वन है। उन ६२५०० योजन के मध्य अर्थात् नन्दनवन के मध्य से मेरु की चौड़ाई ११००० योजन ऊपर तक दोनों पार्श्वभागों में समान रूप से जाती है। इसके बाद ५१५०० योजन की ऊँचाई पर्यन्त मेरु की चौड़ाई में क्रमशः हानि होती जाती है। इसके बाद वहाँ मेरु की चौड़ाई को युगपत् ५०० योजन अर्थात् दोनों पार्श्वभागों में १००० योजन कम हो जाने से वहाँ मेरु के अभ्यन्तर विष्कम्भ का प्रमाण ३२७२ $\frac{८}{११}$ योजन और वहीं की परिधि का प्रमाण ९९९४ $\frac{६}{११}$ योजन प्रमाण है। इस सौमनस वन से ३६००० योजन ऊपर जाकर ४९४ योजन व्यास वाले चतुर्थ पाण्डुकवन की प्राप्ति होती है। उन ३६००० योजनों के मध्य अर्थात् सौमनस वन के मध्य से ११००० योजन की ऊँचाई पर्यन्त मेरु का व्यास हानिवृद्धि से रहित सर्वत्र सदृश ही है। इसके बाद अर्थात् समरुन्द्र (समान चौड़ाई) के ऊपरी भाग से २५००० योजन की ऊँचाई पर्यन्त क्रमिक हानि द्वारा ह्रस्व होता जाता है। वहाँ पर अर्थात् (सौमनसवन से ३६००० योजन ऊपर) मेरु के मस्तक पर पाण्डुकवन सहित मेरु का विस्तार १००० योजन और उसकी परिधि कुछ अधिक ३१६२ योजन प्रमाण प्राप्त होती है। मेरु के इस १००० योजन विस्तार वाले पाण्डुक वन के अर्थात् मेरु के शिखर के मध्य भाग में ४० योजन ऊँची, मूल में १२ योजन चौड़ी, मध्य में ८ योजन चौड़ी और शिखर पर ४ योजन चौड़ी, वैडूर्यरत्नमयी तथा उत्तरकुरु भोगभूमिज आर्य के एक बाल के अंतराल से स्थित सौधर्म स्वर्ग के प्रथम पटलस्थ ऋजुविमान को स्पर्श नहीं करने वाली चूलिका है।

सुमेरु पर्वत की मूल पृथ्वी (भूमि) पर भद्रशाल नाम का एक अत्यन्त रमणीय वन है। जो अनेक प्रकार के वृक्षों से व्याप्त है, तथा जिसकी पूर्व दिशा गत चौड़ाई २२००० योजन, पश्चिम दिशागत चौड़ाई २२००० योजन, उत्तर दिशागत चौड़ाई २५० योजन और दक्षिण दिशागत चौड़ाई भी २५० योजन प्रमाण है। (इन वन का आयाम विदेह क्षेत्र के विस्तार बराबर है। जम्बूद्वीप पण्णत्ति ४/४३) वहाँ भद्रशालवन की चारों दिशाओं में अनेक प्रकार की विभूतियों से युक्त चार जिनालय हैं। इसी प्रकार नन्दन, सौमनस और पाण्डुक इन प्रत्येक वनों में भी चार-चार चैत्यालय हैं। इन चैत्यालयों के व्यास आदि का विवेचन मैं (आचार्य) आगे करूँगा।

नन्दनवन की ऐशान दिशा में सौ योजन ऊँचा, मूल में सौ योजन चौड़ा, और शिखर पर ५० योजन चौड़ा अनेक रत्नमय बलभद्र नामका एक कूट है। उस कूट के ऊपर अनेक प्रकार के कोट, प्रतोलिका, गोपुरद्वार एवं वन आदि से वेष्टित नगर हैं। जिनका अधिपति बलभद्र नाम का व्यन्तरदेव है, जो वहीं रहता है। नन्दन वन में मेरु की पूर्वादि चारों दिशाओं में मानी, चारण, गन्धर्व और चित्र नाम के भवन हैं। जो ५० योजन ऊँचे और ३० योजन चौड़े तथा नाना प्रकार की मणियों से खचित हैं। इन भवनों के स्वामी क्रमशः रक्त, कृष्ण, स्वर्ण और श्वेत वर्ण के आभूषणों से अलंकृत तथा देव समूह से समन्वित सोम, यम, वरुण और कुबेर हैं। इन प्रत्येक लोकपालों की रूप लावण्य आदि से विभूषित साढ़े तीन करोड़ व्यन्तर जाति की दिक्कन्याएँ हैं।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विशेषार्थ—नन्दनवन में मेरु की पूर्व दिशा में मानी नाम का भवन है, जिसमें रक्तवर्ण के अलंकारों से अलंकृत सोम लोकपाल साढ़े तीन करोड़ दिक्कुमारियों के साथ रहता है। दक्षिण के चारण भवन में कृष्णवर्ण के अलंकारों से सुशोभित यम लोकपाल अपनी साढ़े तीन करोड़ दिक्कुमारियों के साथ रहता है। पश्चिम दिशा सम्बन्धी गन्धर्व नामक भवन में स्वर्णाभा सदृश आभूषणों से विभूषित वरुण लोकपाल अपनी साढ़े तीन करोड़ दिक्कुमारियों के साथ और उत्तर दिशा सम्बन्धी चित्र नामक भवन में श्वेतवर्ण के आभूषणों से युक्त कुबेर नाम का लोकपाल अपनी साढ़े तीन करोड़ दिक्कन्याओं के साथ निवास करता है।

सौमनसवन में मेरु की चारों दिशाओं में क्रमशः वज्र, वज्रप्रभ, सुवर्ण और सुवर्णप्रभ नाम के चार भवन हैं। जो पच्चीस योजन ऊँचे और पन्द्रह योजन चौड़े हैं।

पाण्डुकवन में मेरु की चारों दिशाओं में उत्कृष्ट सिंहासन एवं पल्यंक आदि से सहित पंचवर्ण के रत्नमय क्रमशः लोहित, अंजन, हारित और पाण्डु नाम के चार भवन हैं। जो १२$\frac{१}{२}$ योजन ऊँचे और ७$\frac{१}{२}$ योजन चौड़े हैं। इन उपर्युक्त आठों भवनों में से प्रत्येक में साढ़े तीन करोड़ दिक्कुमारियाँ निवास करती हैं। इन आठों गृहों के स्वामी जिनबिम्ब के चिह्न से चिह्नित मुकुट वाले, देव समूह से वेष्टित तथा क्रमशः रक्त, कृष्ण, स्वर्ण और श्वेत। वस्त्र एवं अलंकारों से अलंकृत, क्रमानुसारं स्वयंप्रभ, अरिष्ट, जलप्रभ और वर्गप्रभ (कल्प) विमानों में निवास करने वाले तथा सौधर्मैशान इन्द्रों के सम्बन्ध को प्राप्त सोम, यम, वरुण और कुबेर नाम के लोक प्रसिद्ध चार लोकपाल हैं। इनमें सोम और यम लोकपालों की आयु २$\frac{१}{२}$ पल्य तथा वरुण और कुवेर की आयु पौने तीन (२$\frac{३}{४}$) पल्य प्रमाण है।

वहाँ नन्दनवन में पूर्वदिशा स्थित चैत्यालय के दोनों पार्श्व भागों में नन्दन और मन्दर नाम के दो कूट हैं। दक्षिण दिशा स्थित चैत्यालय के दोनों पार्श्व भागों में निषध और हिमवत् नाम के दो कूट हैं। पश्चिम दिशा सम्बन्धी चैत्यालय के दोनों पार्श्व भागों में रजत और रुचक नाम के दो कूट हैं तथा उत्तर दिशा सम्बन्धी जिनालय के दोनों पार्श्व भागों में सागर और वज्र नाम के दो कूट हैं। इन आठों कूटों की ऊँचाई ५०० योजन, भूव्यास ५०० योजन, मध्य व्यास ३७५ योजन और मुख व्यास २५० योजन प्रमाण है। इन कूटों के शिखरों पर दिक्कुमारियों के एक कोस लम्बे, अर्धकोस चौड़े और पौन कोस ऊँचे तथा नानाप्रकार के रत्नमय भवन बने हैं। इन आठों भवनों में क्रमशः मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयन्धरा, विचित्रा, पुष्पमालिनी और अनन्दिता नाम की दिक्कुमारियाँ निवास करतीं हैं। इस प्रकार नन्दन वन के समान सर्वकूट, दिक्कुमारियों के भवन आदि सौमनस वन में भी हैं।

(नन्दनवन में) मेरुपर्वत की आग्नेय दिशा में उत्पला, कुमुदा, नलिनी और उत्पलोज्ज्वला नाम की चार वापिकाएँ हैं। नैऋत्य दिशा में भृंगा, भृंगनिभा, कज्जला और कज्जलप्रभा नाम की चार

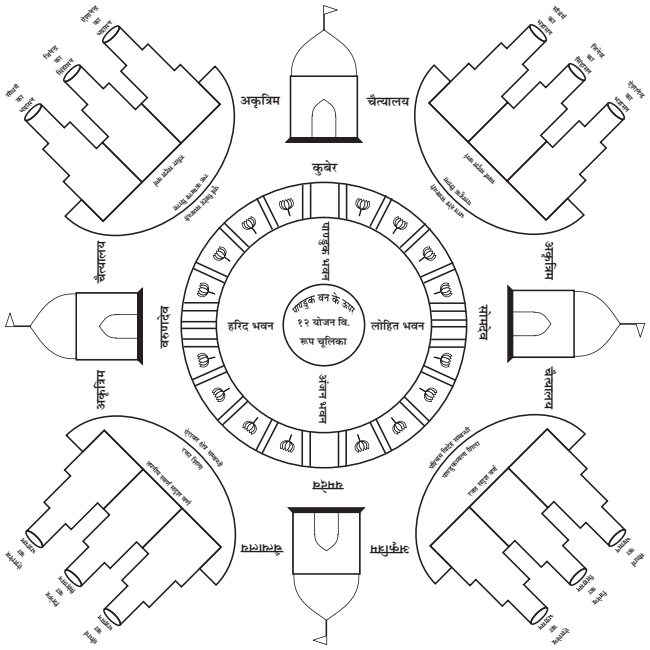
FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वापिकाएँ हैं। वायव्य दिशा में श्रीभद्रा, श्रीकान्ता, श्रीमहिता और श्रीनिलया नाम की चार वापिकाएँ हैं तथा ऐशान दिशा में नलिनी, नलिनीऊर्मि, कुमुद और कुमुदप्रभा नाम की चार वापिकाएँ हैं। ये सोलह वापिकाएँ मणियों के तोरणों एवं वेदिका आदि से मण्डित, नानाप्रकार के रत्नों की सीढ़ियों से युक्त, पचास योजन लम्बी, पच्चीस योजन चौड़ी और दस योजन गहरी हैं। ये सभी वापिकाएँ चतुष्कोण हैं तथा हंस, सारस और चक्रवाक आदि पक्षियों के शब्दों से अत्यन्त शोभायमान हैं। इन सभी वापियों के मध्य भाग में ६२ $\frac{१}{२}$ योजन ऊँचे, ३१ $\frac{१}{२}$ योजन चौड़े, अर्ध ($\frac{१}{२}$) योजन गहरी नींव से संयुक्त, सिंहासन एवं सभास्थान आदि से अलंकृत रत्नमय भवन हैं। इन आग्नेय और नैऋत्य दिशा सम्बन्धी वापिकाओं में स्थित भवनों में सौधर्म इन्द्र अपने लोकपाल आदि देव और शचि आदि देवांगनाओं के साथ नाना प्रकार की क्रीड़ा करता है तथा वायव्य और ईशान दिशा स्थित वापिकाओं के भवनों में ऐशान इन्द्र अपने परिवार देवों एवं देवांगनाओं के साथ प्रसन्नता पूर्वक क्रीड़ा करता है। जिस प्रकार नन्दनवन में सौधर्मैशान सम्बन्धी वापी एवं प्रासाद आदि का वर्णन किया है, उसी प्रकार क्रम से वापी प्रासाद आदि का सभी वर्णन सौमनसवन में जानना चाहिए, क्योंकि नन्दनवन से यहाँ कोई विशेषता नहीं है।

मेरु पर्वत के ऊपर पाण्डुकवन में चूलिका की प्रदक्षिणा रूप से ऐशान आदि विदिशाओं में सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची, अर्धचन्द्र की उपमा को धारण करने वालीं, रत्नमय तोरण एवं वेदिका आदि से अलंकृत, अपने अपने क्षेत्रों के सम्मुख, स्फुरायमान तेजमय पाण्डुक आदि चार दिव्य शिलाएँ हैं। इन चारों शिलाओं में प्रथम पाण्डुक नाम की शिला ऐशान दिशा में है। जो स्वर्ण सदृश वर्ण से युक्त पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा भरतक्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थकरों के जन्म स्थान की पीठिका सदृश है। द्वितीय पाण्डुकम्बला नाम की शिला आग्नेय दिशा में है, जो अर्जुन (चाँदी) सदृश वर्ण से युक्त, दक्षिणोत्तर लम्बी और पश्चिम विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले जिनेन्द्रों के जन्माभिषेक की पीठिका सदृश है। तृतीय रक्ता नाम की शिला, नैऋत्य दिशा में है, जो तपाये हुए स्वर्ण के सदृश वर्ण से युक्त, ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों के जन्माभिषेक से निबद्ध तथा पूर्व-पश्चिम लम्बी है। इसी प्रकार रक्तकम्बला नाम की चतुर्थ शिला वायव्य-दिशा में, दक्षिण-उत्तर लम्बी, आरक्त वर्ण से युक्त और पूर्वा विदेह में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकर देवों के जन्माभिषेक से सम्बद्ध है। इन चारों शिलाओं में से प्रत्येक शिला के ऊपर देदीप्यमान रत्नमय तीन तीन सिंहासन हैं। उन सिंहासनों में से बीच का सिंहासन पाँच सौ धनुष ऊँचा, भूमि पर पाँच सौ धनुष चौड़ा, अग्रभाग पर दो सौ पचास धनुष चौड़ा तथा जिनेन्द्रदेव सम्बन्धी अर्थात् तीर्थंकरों के जन्माभिषेक की स्थिति के लिये है। दक्षिण दिशा में स्थित सिंहासन जिनेन्द्र भगवान् के जन्माभिषेक के समय सौधर्म इन्द्र के बैठने के लिये होते हैं और उत्तर दिशा स्थित सिंहासन तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के समय ऐशानेन्द्र की संस्थिति अर्थात् बैठने के लिये हैं।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पाण्डुक आदि चारों शिलाओं एवं सिंहासन आदि का चित्रण निम्न प्रकार है–



कल्पवासी, ज्योतिष्क, भवनवासी और व्यन्तरवासी देवों के इन्द्र क्रमशः घण्टा, सिंहनाद, शङ्ख एवं उत्तम भेरी के शब्दों तथा आसन आदि कम्पित होने रूप चिह्नों द्वारा जिनेन्द्र भगवान् की उत्पत्ति को जानकर परम विभूति एवं छत्र ध्वजा आदि से युक्त विमानों द्वारा आकाश रूपी प्रांगण को आच्छादित करते हुए तथा अनेक प्रकार के पटह आदि के शब्दों द्वारा दसों दिशाओं को बहरी करते हुए जिनेन्द्र भगवान् के जन्माभिषेक का उत्सव मनाने के लिये अपूर्व आनन्द एवं धर्मरागरूपीरस से उत्कट अपने-अपने स्थानों से सुमेरु पर्वत की ओर आते हैं। इस जन्माभिषेक के समय इन्द्रों का प्रमुख देव सौधर्मेन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर अपनी तीन परिषदों एवं सात अनीकों से अलंकृत होता हुआ स्वर्ग से मध्य लोक में आता है। इस सौधर्मेंद्र की प्रथम अभ्यन्तर परिषद् में दिव्यरूप और दिव्य मुखवाले, आयुध एवं अलंकारों से अलंकृत बारह लाख देव होते हैं। मध्यम परिषद् में चौदह लाख देव और बाह्यपरिषद् में सोलह लाख देव होते हैं। आभ्यन्तर, मध्य और बाह्य परिषदों के क्रम से रवि, शशि और यदुप नाम के महत्तर (प्रधान) देव हैं। वृषभ, रथ, तुरंग, गज, नर्तक, गन्धर्व और भृत्य हैं नाम जिनके ऐसे सात-सात कक्षाओं से युक्त सात अनीकें सेनाएँ सौधर्मेन्द्र के आगे जन्माभिषेक के समय में महान् आडम्बर से युक्त होतीं हुईं चलतीं हैं।

प्रथम कक्षा में शंख एवं कुन्द पुष्प के सदृश धवल चौरासी लाख वृषभ चलते हैं। द्वितीय कक्षा में जपा पुष्प के सदृश वर्ण वाले एक करोड़ अड़सठ लाख वृषभ चलते हैं। तृतीय कक्षा में नील कमल के सदृश वर्ण वाले तीन करोड़ छत्तीस लाख वृषभ हैं। चतुर्थ कक्षा में मरकत (नील) मणि की कान्ति सदृश वर्ण वाले छह करोड़ बहतर लाख वृषभ हैं। पंचम कक्षा में स्वर्ण सदृश वर्ण वाले तेरह करोड़ चवालीस लाख वृषभ हैं। षष्ठ कक्षा में अञ्जन सदृश वर्ण वाले छब्बीस करोड़ अठासी लाख वृषभ

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हैं और सप्तम अनीक में किंशुक (केसु) पुष्प की प्रभा सदृश वर्ण वाले त्रेपन करोड़ छयत्तर लाख वृषभ आगे आगे चलते हैं। शब्द करते हुए नाना प्रकार के पटह आदि एवं तूर्य आदि से अन्तरित अर्थात् इन सेनाओं के मध्य मध्य में इन बाजों से युक्त, घण्टा, किंकिणी, उत्तम चँवर एवं मणिमय कुसुममालाओं से अलंकृत, रत्नमय कोमल आसन (पलान) से युक्त, देवकुमारों द्वारा चलाये जाने वाले और दिव्य रूप को धारण करने वाले सप्तकक्षाओं से समन्वित समस्त वृषभ अनीकों की संख्या एक सौ छह करोड़ अड़सठ लाख है जो इस जन्माभिषेक महोत्सव में जाती है। जिस प्रकार इन सात वृषभ अनीकों की दूनी दूनी संख्या का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार शेष रथ आदि छह अनीकों की संख्या जानना चाहिए।

प्रथम कक्षा में हिम की आभा के सदृश धवल छत्रों से विभूषित धवल रथ चलते हैं। द्वितीय कक्षा में वैडूर्यमणि से निर्मित, चार चाकों से विराजमान और मन्दार पुष्पों के सदृश वर्ण वाले महारथ गमन करते हैं। तृतीय कक्षा में स्वर्णमयछत्र, चामर और ध्वज समूहों से समन्वित तथा तपाये हुए स्वर्ण से निर्मित रथ जाते हैं। चतुर्थ कक्षा में मरकत मणियों से निर्मित बहुत चाकों से उत्पन्न हुए शब्दों से गम्भीर और दूर्वांकुर वर्ण सदृश रथ होते हैं। पञ्चम कक्षा में कर्केतन मणियों से निर्मित बहुत चाकों से उत्पन्न शब्दों से युक्त तथा नीलोत्पलपत्रों के सदृश रथ हैं। षष्ठम कक्षा में पद्मराग मणियों से निर्मित, सुन्दर चाकों को धारण करने वाले तथा कमल के सदृश वर्ण वाले रथ हैं, और सप्तम कक्षा में मयूर कण्ठ सदृश वर्ण वाले मणियों के समूह से उत्पन्न किरणों से देदीप्यमान इन्द्र नीलमणि की प्रभा के सदृश वर्ण वाले महारथ जाते हैं। इन सप्त सेनाओं से समन्वित, बहुत से देव देवियों से परिपूर्ण, उत्तम चमर, छत्र, ध्वजाएँ एवं पुष्पों की मालाओं से प्रकाशमान, सब रथ कक्षाओं के मध्य में शब्द करते हुए देव वादित्रों से युक्त और आकाश को आच्छादित करते हुए ऊँचे एवं विस्तृत रथ जिनेन्द्र भगवान के जन्माभिषेक महोत्सव में इन्द्र के महान् पुण्योदय से आगे आगे जाते हैं।

अश्वों की प्रथम कक्षा में क्षीरसमुद्र की तरंगों के सदृश तथा श्वेत चामरों से अलंकृत धवल अश्व जाते हैं। द्वितीय कक्षा में उदित होते हुए सूर्य के वर्ण सदृश एवं चलते हुए उत्तम चामरों से युक्त (रक्त वर्ण के) तुरंग होते हैं। तृतीय कक्षा में तपाये हुए स्वर्ण के सदृश खुरों से उत्पन्न धूलि से पिञ्जरित अश्व गोरोचन (पीत) वर्ण वाले होते हैं। चतुर्थ कक्षा में मरकत मणि के सदृश वर्ण वाले एवं शीघ्रगामी अश्व चलते हैं। पञ्चम कक्षा में रत्नों के आभूषणों से विभूषित तथा नीलोत्पल पत्र सदृश वर्ण वाले घोड़े चलते हैं। षष्ठ कक्षा में जपा पुष्प सदृश (रक्त) वर्ण वाले और सप्तम कक्षा में इन्द्रनील मणि की प्रभा वाले घोड़े होते हैं। इस प्रकार ये सात कक्षाओं से युक्त, अनेक प्रकार के आभरणों से विभूषित, अपनी अपनी सेनाओं के आगे उत्पन्न होने वाले वादित्रों के शब्दों से अन्तरित, उत्तम रत्नों के आसनों (पलानों) से युक्त, देवकुमारों द्वारा चलाये जाने वाले दिव्य और उत्तुंग काय घोड़े भगवान् के जन्माभिषेक के महोत्सव में जाते हैं।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रथम कक्षा की गज सेना में गोक्षीर (धवल) वर्ण सदृश और पर्वत के समान उन्नत एवं विस्तृत देह वाले चौरासी लाख हाथी होते हैं। द्वितीय कक्षा में सूर्य (बाल सूर्य) के तेज सदृश कान्ति वाले हाथी दुगुने (एक करोड़ अड़सठ लाख) होते हैं। तृतीय कक्षा में दूसरी कक्षा से दुगुने और तपाये हुए स्वर्णाभा सदृश हाथी जाते हैं। चतुर्थ कक्षा में इससे भी दुगुने और तपाये हुए स्वर्ण की कान्ति सदृश हाथी होते हैं। पञ्चम कक्षा में चतुर्थ कक्षा से दुगुने और नीलोत्पल आभा युक्त हाथी षष्ठम कक्षा में पञ्चम कक्षा से दुगुने तथा जपा पुष्प सदृश हाथी और सप्तम कक्षा में अञ्जनगिरि के सदृश कान्ति वाले त्रेपन करोड़ छ्यत्तर लाख हाथी जाते हैं। इन सातों कक्षाओं के हाथियों की संख्या का योग एक सौ छह करोड़ अड़सठ लाख है। इन सात सेनाओं से युक्त, उन्नत दाँत रूपी मूसलों से सहित, गुड-गुड गरजने वाले, गलते हुए मद से हैं लिप्त अंग जिनके, लटकते हुए रत्नमय घण्टा, किंकिणी एवं पुष्प मालाओं से सुशोभित, अनेक प्रकार की ध्वजाओं, छत्र, चमर एवं मणि और स्वर्ण की रस्सियों से अलंकृत, प्रत्येक कक्षा के अन्तरालों में बजने वाले वादित्रों के शब्दों से युक्त, उत्तम देव देवियों की सवारियों से सहित, चलते-फिरते पर्वत के समान उन्नत एवं महादिव्य देह को धारण करने वाले हाथी, इन जिनेन्द्र भगवान के जन्म महोत्सव में सौधर्म इन्द्र के श्रेष्ठ पुण्य के फल को लोगों को दिखाते हुए ही मानो स्वर्ग से मेरु पर्वत की ओर आते हैं।

नर्तक अनीक देव प्रथम कक्षा में विद्याधर, कामदेव, राजा और अधिराजाओं के चरित्रों द्वारा अभिनय करते हुए नर्तकी देव जाते हैं। द्वितीय कक्षा के नर्तक देव समस्त अर्धमण्डलीक एवं महामंडलीकों के उत्तम चारित्र का अभिनय करते हैं। तृतीय कक्षा के नर्तक देव बलभद्र, वासुदेव और प्रतिवासुदेवों (प्रतिनारायणों) के वीर्यादि गुणों से सम्बद्ध चारित्र द्वारा महानर्तन करते हुए जाते हैं। चतुर्थ कक्ष के नर्तक देव चक्रवर्तियों की विभूति एवं वीर्यादि गुणों से निबद्ध चारित्र के द्वारा महा अभिनय करते हुए जाते हैं। पञ्चम कक्षा के नर्तक देव चरमशरीरी यतिगण, लोकपाल और इन्द्रों के गुणों से रचित उनके चरित्र द्वारा अभिनय करते हैं। षष्ठम कक्ष के नर्तक देव विशुद्ध ऋद्धियों एवं ज्ञान आदि गुणों से उत्पन्न उत्तम चारित्र द्वारा उनके गुणरूपी रागरस से उत्कट होते हुए श्रेष्ठ नृत्य करते हुए जाते हैं, और सप्तम कक्ष के नर्तक देव चौंतीस अतिशय, अष्ट प्रातिहार्य और अनन्तज्ञान आदि गुणों से सम्बद्ध चारित्र द्वारा उनके गुणरूपी रागरस में डूबे हुए तथा सर्वोत्कृष्ट नर्तन करते हुए जाते हैं। ये सात अनीकों के आश्रित, उत्तम नृत्य करने में चतुर, आनन्द से युक्त, दिव्य वस्त्र और दिव्य अलंकारों से विभूषित तथा महा विक्रिया रूप नृत्य करते हुए मेरु पर्वत की ओर जाते हैं।

संगीत के सात स्वरों द्वारा जिनेन्द्र भगवान् के और गणधरादि देवों के गुणों से सम्बद्ध अनेक प्रकार के मनोहर गीत गाते हुए, दिव्य कण्ठ, दिव्य वस्त्र एवं दिव्य आभरणों से मण्डित गन्धर्व देव जिनेन्द्र के जन्माभिषेक महोत्सव में सात अनीकों से समन्वित होते हुए जाते हैं। प्रथम कक्ष में षड्ज स्वरों से जिनेन्द्र के गुण गाते हैं। द्वितीय कक्ष में ऋषभ स्वर से गुणगान करते हैं। तृतीय कक्ष में गान्धार

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्वर से गाते हुए जाते हैं। चतुर्थ कक्ष में मध्यम स्वर से जिनाभिषेक सम्बन्धी गीतों को गाते हैं। पञ्चम कक्ष में पञ्चम स्वर से गान करते हैं। षष्ठम कक्ष में धैवत स्वर से गाते हैं, और सप्तम कक्ष में निषात स्वर से युक्त गान करते हुए गन्धर्व देव जाते हैं। इस प्रकार अपनी अपनी देवियों से संयुक्त, सप्त अनीकों के आश्रित, किन्नर और किन्नरियों के साथ वीणा, मृदङ्ग, झल्लरी और ताल आदि के द्वारा जिनाभिषेक महोत्सव के गुण समूह से रचित, बहुत मधुर, शुभ और मन को हरण करने वाले गीत गाते हुए, धर्मराग रूपी रस से उद्धत होते हुए गन्धर्व देव उस महामहोत्सव में जाते हैं।

सात प्रकार की सेनाओं से युक्त, दिव्य आभूषणों से अलंकृत, अनेक वर्णों की ध्वजाएँ एवं छत्रों से सहित हैं हाथ जिनके ऐसे भृत्यदेव जाते हैं। प्रथम कक्ष में अञ्जन सदृश प्रभा वाली ध्वजाएँ हाथ में लेकर भृत्यदेव जाते हैं। द्वितीय कक्ष के भृत्यदेव अपने हाथों में मणि एवं स्वर्णदण्ड के शिखर पर स्थित चलते (ढुलते) हुए चामरों से संयुक्त नीली ध्वजाएँ लेकर चलते हैं। तृतीय कक्ष के भृत्यदेव अपने हाथों में वैडूर्य मणिमय दण्डों के अग्रभाग पर स्थित धवल ध्वजाएँ लेकर चलते हैं। चतुर्थ कक्षा के भृत्यदेव अपने हाथों में हाथी, सिंह, वृषभ, दर्पण, मयूर, सारस, गरुड़, चक्र, रवि एवं चन्द्राकार कनक (पीली) ध्वजाओं के आश्रय भूत मरकत मणिमय दण्ड लेकर चलते हैं। पञ्चम कक्षा के भृत्यदेव अपने हाथों में विकसित कमल की कान्ति वाली पद्मध्वजाओं से आरोपित विद्रुममणि (मूँगे) के ऊँचे ऊँचे दण्ड लेकर चलते हैं। षष्ठम कक्ष के भृत्यदेव अपने हाथों में गोक्षीर वर्ण सदृश धवल ध्वजाओं से युक्त स्वर्णदण्ड लेकर तथा सप्तम कक्षा के भृत्यदेव अपने हाथों में देदीप्यमान मणि समूह से रचित दण्ड के अग्रभाग पर स्थित, मोतियों की मालाओं से अलंकृत धवल छत्रों को लेकर जाते हैं। इस प्रकार सात अनीकों से युक्त, जिनभक्ति में तत्पर भृत्यदेव उत्साह और अपूर्व उद्यम पूर्वक उस महोत्सव में जाते हैं। इन भृत्यदेवों की सात अनीक कक्षाओं में से छह कक्षा के भृत्यदेव मात्र ध्वजाएँ लेकर चलते हैं जिनका सर्वयोग बावन करोड़ बान्नवे लाख (५२९२०००००) प्रमाण है, जो इस जन्ममहोत्सव में चलती हुई पवन के वश से हिलने वाली दिव्य ध्वजाओं से अत्यन्त शोभायमान होते हैं सप्तम कक्षा के भृत्य श्वेत छत्र लेकर चलते हैं, जिनका प्रमाण त्रेपन करोड़ छयत्तर लाख ५३७६००००० है। इस प्रकार वृषभ से भृत्यदेव पर्यन्त (४९) उनचास अनीक कक्षाओं का एकत्र योग करने पर सात सौ छयालीस करोड़ छयत्तर लाख प्रमाण है। यथा–

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सात अनीक सम्बन्धी ४९ कक्षाओं का एकत्रित प्रमाण

कक्ष	वृषभ	रथ	घोड़े	हाथी	नर्तक	गन्धर्व	भृत्यवर्ग
१	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००
२	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००
३	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००
४	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००
५	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००
६	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००
७	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००
योग	१०६६८०००००	१०६६८०००००	१०६६८०००००	१०६६८०००००	१०६६८०००००	१०६६८०००००	१०६६८०००००
	+	+	+	+	+	+	+
सम्पूर्ण योग					=७४६७६०००००		कुल प्रमाण हुआ

सौधर्मेन्द्र जिस प्रकार सात अनीकों के ७४६ करोड़ ७६ लाख सेना के साथ यहाँ जिनेन्द्र के जन्म महोत्सव मैं आता है, उसी प्रकार समस्त इन्द्रों में से प्रत्येक इन्द्र को सेना का प्रमाण अपने-अपने सामानिक देवों की सेना से दूना दूना होता है, जिसे लेकर वे सब आते हैं। इस तरह उपर्युक्त समस्त सेना और तीनों पारिषद देवों से वेष्टित सौधर्म इन्द्र शचि के साथ ऐरावत हाथी पर चढ़कर महामहोत्सव के साथ स्वर्ग से जिनेन्द्र के जन्म कल्याणक की निष्पत्ति के समय निकलता है। अनेक आयुधों से अलंकृत अङ्गरक्षक देव इन्द्र को वेष्टित किये हुए निकलते हैं। प्रतीन्द्र, सामानिक देव, त्रायस्त्रिंश देव एवं लोकपाल आदि अवशेष देव इन्द्र के साथ स्वर्ग से मेरु पर्वत की ओर आते हैं।

अथेन्द्रस्यैरावतदन्तिनः किञ्चिद् वर्णनं करोमिः—

जम्बूद्वीपप्रमाणाङ्गं, वृत्ताकारं शंखेन्दु कुन्दधवलं नानाभरणघण्टाकिंकिणी तारिकाहेमकक्षादि भूषितं कामगं कामरूपधारिणं महोन्नतं ऐरावतगजेन्द्रं नागदत्ताख्याभियोग्येशो वाहनामरो विकरोति। तस्यदन्तिनः बहुवर्णा, विचित्रतानि रम्याणि द्वात्रिंशद्वदनानि [१]एकैकस्मिन् वदने मृदुस्थूलायता अष्टौदन्ताः स्युः। एकैकस्मिन् दन्ते एकैकं चलत्कल्लोलरम्यं सरोवरं स्यात्। एकैकस्मिन्सरसि एकैका कमलिनी भवति। एकैकस्याः कमलिन्या एकैकस्मिन् दिग्भागे मणिवेदिकाङ्कितं एकैकं तोरणं भवेत्। प्रफुल्लद्वात्रिंशत्कमलानि च सन्ति। एकैकस्मिन् कमले एकैकयोजन सुगन्धायतानि द्वात्रिंशन्मनोहर पत्राणि स्युः। एकैकस्मिन् पत्रे दिव्यरूपाः सरसा द्वात्रिंशन्नटिकाः स्युः। एकस्मिन्नेकस्मिन् प्रत्येकं नाटके दिव्यरूपा द्वात्रिंशत्सुरनर्तक्यो

१. सउवयणअट्ठदन्ता दन्तेसरसदनालिनी पणवीसा। पणवीसा स उ कमलाकमले अट्ठुत्तरंसयंपत्तं।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नानारूपाणि विकृत्य मृदङ्गादि तूर्यैर्नानाचरणविन्यासैः करपल्लवैः कटीतटादिलयैः सानन्दा नृत्यन्ति। सर्वाः सप्तविंशति कोटिप्रमाः अप्सरसोऽष्टौमहादेव्यो लक्षबल्लभिकाश्च तद् गजेन्द्रपृष्ठमारुह्य तस्मिन् जन्मोत्सवे गच्छन्ति।

ऐरावतो हि शक्रस्य कीदृशो भवति प्रभो।
लक्षयोजनप्रोतुङ्गो विस्तरोपि तथा भवेत् ॥१॥
द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य दन्ता अष्टौ मुखं प्रति।
दन्तं प्रतिसरश्चैकं नलिन्यैकासरंप्रति ॥२॥
द्वात्रिंशत्कमलान्येव चैकैकां पद्मिनीं प्रति।
द्वात्रिंशदस्य पत्राणि प्रतिपद्मं विराजते ॥३॥
प्रतिपत्रं च द्वात्रिंशन्नृत्यंत्यप्सरसो वराः।
केषाञ्चित्संयतानां तु श्रूयतां भो! मतान्तरं ॥४॥
चतुर्मुखो गजो ज्ञेयो दन्तयुग्मं मुखं प्रति।
सरसीनां शतं ज्ञेयं प्रतिदन्तं जलेर्भृतम् ॥५॥
सरः प्रतिनलिनीनां पञ्च विंशतिकं ततः।
नलिनीं प्रतिपद्मानां पञ्चविंशत्यधिकं शतं ॥६॥
नर्तकीनां प्रतिपद्ममष्टोत्तरशतं परं।
एवं वैभवसंयुक्तं गजं शक्रः स्थितोमुदा ॥७॥

अब इन्द्र के ऐरावत हाथी का संक्षिप्त वर्णन करते हैं–

आभियोग्य देवों का अधिपति नागदत्त नामक वाहन जाति का देव जम्बूद्वीप प्रमाण अर्थात् एक लाख योजन प्रमाण गोल देह की विक्रिया करके इन्द्र का ऐरावत हाथी बनता है। जो शंख, चन्द्र और कुन्द पुष्प के समान धवल अलंकारों, घण्टा, किंकिणी, तारिकाओं (धवल बिन्दुओं) एवं स्वर्ण कक्षा अर्थात् हाथी के पेट पर बाँधने की रस्सी आदि से विभूषित, अत्यन्त सुन्दर, विक्रियारूप को धारण करने वाला तथा महा उन्नत होता है। उस हाथी के अनेक वर्णों से युक्त रमणीक बत्तीस मुख होते हैं। एक-एक मुख में कोमल, मोटे और लम्बे आठ-आठ दाँत होते हैं। (३२ मुख×८=२५६ दाँत हुए)। एक-एक दाँत पर उठती हुई कल्लोलों से रमणीक एक-एक सरोवर होता है। (२५६ सरोवर हुए)। एक एक सरोवर में एक एक कमलिनी होती है। एक एक कमलिनी पर एक-एक दिशा में मणियों की वेदिकाओं से अलंकृत एक एक तोरण होता है, प्रत्येक कमलिनी के साथ प्रफुल्लित रहने वाले बत्तीस बत्तीस कमल होते हैं (२५६×३२=८१९२ कमल होंगे)। एक-एक कमल में एक एक योजन पर्यन्त सुगन्ध फैलाने वाले बत्तीस बत्तीस पत्र होते हैं-(८ १९२ कमल ×३२=२६२१४४ पत्र हुए)। एक-एक पत्र पर दिव्य रूप को धारण करने वाले अतिमनोज्ञ बत्तीस नाटक (नाट्यशाला) होते हैं (२६२१४४×३२= ८३८८६०८) और एक-एक नाट्यशालाओं में दिव्यरूप को धारण करने वालीं बत्तीस-बत्तीस

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अप्सराएँ नृत्य करतीं हैं (८३८८६०८ × ३२ = २६८४३५४५६ अप्सराएँ)। जो अनेक प्रकार की विक्रिया धारण करके मृदंग आदि वादियों द्वारा, नाना प्रकार के चरण विन्यास द्वारा, हाथ रूपी पल्लवों द्वारा और कटितट आदि की लय के द्वारा आनन्द पूर्वक नृत्य करती हैं। ये समस्त सत्ताईस करोड़ अप्सराएँ, आठ महादेवियाँ और एक लाख बल्लभिकाएँ उस ऐरावत हाथी की पीठ पर चढ़ कर उस जन्म महोत्सव में जाते हैं।

विशेषार्थ—विक्रिया धारण करने वाले ऐरावत हाथी के ३२ मुख और प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत इत्यादि उपर्युक्त क्रम से मानने पर अप्सराओं की कुल संख्या छब्बीस करोड़ चौरासी लाख पैंतीस हजार चार सौ छप्पन (२६८४३५४५६) होती हैं, किन्तु आचार्य इनकी संख्या सत्ताईस करोड़ लिख रहे हैं, तथा अन्य आचार्यों के मतानुसार भी अप्सराओं की संख्या २७ करोड़ ही है। यथा—

इस ऐरावत हाथी के सौ मुख होते हैं। प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत (१००×८=८००) होते हैं। प्रत्येक दाँत पर जल से भरे हुए सरोवर (८००) होते हैं। प्रत्येक सरोवरों में पच्चीस-पच्चीस नलिनी (८००×२५=२०००) होतीं हैं, प्रत्येक नलिनी पर एक सौ पच्चीस कमल (२००००×१२५= २५०००००) होते हैं। प्रत्येक कमल में एक सौ आठ-एक सौ आठ पत्र (२५०००००×१०८=२७०००००००) होते हैं, और प्रत्येक पत्र पर एक-एक अप्सरा नृत्य करती है, अतः कुल अप्सराओं की संख्या सत्ताईस करोड़ है।

नोट—पृष्ठ २१५ श्लोक ५-७ के अनुसार—४ मुख ×२ दन्त = ८ दन्त, प्रत्येक दाँत पर १०० सरोवर, ८ × १०० = ८०० सरोवर, प्रत्येक सरोवर में २५ नलिनी, ८०० × २५ = २०००० नलिनी, प्रत्येक नलिनी पर १२५ कमल, २०००० × १२५ = २५००००० कमल, प्रत्येक कमल पर १०८ पत्र २५००००० × १०८ = २७०००००० पत्र, प्रत्येक पत्र पर एक एक अप्सरा अर्थात् कुल अप्सराएँ २७ करोड़ हैं।

अब ऐशान आदि अन्य इन्द्रों और अहमिन्द्रों आदि की स्थिति कहते हैं—

यादृशी दक्षिणेन्द्रस्य सप्तानीकानां संख्यावर्णिता तादृशी संख्योत्तरेन्द्रस्य स्यात्। ईशानेन्द्रोऽपि दिव्यं तुरङ्गमारुह्यस्वपरिवारालंकृतो महाविभूत्यात्रागच्छति। शेषा सनत्कुमारेन्द्राद्या अच्युतेन्द्रपर्यन्ता देवेन्द्राः सप्तानीकत्रिपरिषद्वेष्टिताः स्वस्ववाहनविभूत्याश्रिताः सामराः सकलत्रास्तदायान्ति। भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष्क देवेशाः सप्तानीक त्रिपरिषदावृताः स्वस्ववाहन विमानाद्यारूढा महाविभूत्या स्वदेवदेवीभिः सहात्रागच्छन्ति सर्वे अहमिन्द्रा आसनकम्पेन तज्जन्मोत्सवं विज्ञाय सप्तपदान् गत्वा भक्त्या मूर्ध्ना स्थानस्था एव जिनेन्द्रं प्रणमति। इत्यादि परया विभूत्या चतुर्णिकायसुरेन्द्राः, सामराः सकलत्राः नानादेवानकध्वानैर्बधिरीकृतदिग्मुखाः, ध्वजछत्रचामर विमानादिभिर्नभोङ्गण छादयन्तः स्वर्गात्तीर्थेशोत्पत्ति-पुरमागच्छन्ति।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—जिस प्रकार दक्षिणेन्द्र के सात अनीकों की संख्या का वर्णन किया है। उसी प्रकार की संख्या आदि उत्तरेन्द्र के भी होती है। ऐशान इन्द्र भी दिव्य अश्वों पर चढ़कर अपने परिवार से अलंकृत होता हुआ, महाविभूति के साथ जन्माभिषेक में आता है। शेष सनत्कुमार इन्द्र आदि को लेकर अच्युत इन्द्र पर्यन्त के सभी देवेन्द्र सात अनीकों एवं तीन पारिषदों से वेष्टित, अपने-अपने वाहनरूपी विभूति का आश्रय लेकर समस्त देवों के साथ यहाँ आते हैं। भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिष्क देवों के इन्द्र भी सात अनीकों एवं तीन पारिषदों से वेष्टित होते हुए, अपने-अपने वाहन एवं विमान आदि पर चढ़कर महाविभूति से युक्त होते हुए अपनी-अपनी देवियों के साथ यहाँ आते हैं। समस्त अहमिन्द्र आसन कम्पायमान होने से जिनेन्द्र के जन्म उत्सव को जानकर और सात पैर आगे जाकर मस्तक से अपने स्थान पर स्थित होकर ही जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार करते हैं। इस प्रकार परम विभूति से युक्त होते हुए चतुर्निकाय के इन्द्र अपने समस्त देवों के साथ नाना प्रकार के देववादित्रों के शब्दों द्वारा दिशाओं को बहरी करते हुए तथा ध्वजा, छत्र, चामर और विमान आदि के साथ आकाशतल को व्याप्त करते हुए स्वर्ग से उस नगर में आते हैं, जहाँ तीर्थंकर की उत्पत्ति होती है।

अब बाल तीर्थंकर के जन्माभिषेक आदि की समस्त प्रक्रिया का सविस्तार वर्णन करते हैं—

तत्रेन्द्राणी प्रसवागारं प्रविश्य मातुरन्ते परं मायाशिशुं निधाय तीर्थेशं प्रणम्यादाय गूढ़वृत्त्यानीय सौधर्मेन्द्रस्य करे ददाति। सोपितं तीर्थंकरं मुदाप्रणम्यस्तुत्वामहोत्सवेन मेरुमानीयपरीत्य पाण्डुकशिलास्थ मध्यसिंहासने धत्ते। ततः क्षीराब्धेः क्षीराम्बुभृतैः अष्टयोजनगम्भीरैर्योजनैकमुख विस्तृतैर्मुक्ता-दामाम्भोजचन्दना[1]द्यलंकृतैरष्टोत्तरसहस्रैः, कनत्काञ्चनकलशैर्गीतनृत्यभ्रूपोत्क्षेपादि [भ्रत्क्षेपादि] महोत्सवशतैः, परया भक्त्या विभूत्या च नाकेन्द्राः सम्भूय जिनेन्द्रं स्नपयन्ति। यदि चेत्ता महत्योजलधारा यस्याद्रेरुपरि पतन्ति सोऽद्रिस्तत्क्षणं शतखण्डतां याति। अप्रमाणमहावीर्यः परमेश्वरस्तद्धारापतनं जलविन्दुवन्मन्यते। इतिध्वनद्वाद्यशतैर्जयजयादि निर्घोषैः शुद्धाम्बुस्नपनं सम्पूर्णं विधायान्ते सुगन्धिद्रव्य-मिश्रितैः गन्धोदक कुम्भैर्गन्धोदकस्नपनं शक्रा अस्य कुर्वन्ति। ततस्तद्गन्धोदक्रमभिवन्द्य दिव्यगन्धादिभिः स्वर्गोपनीतैर्महापूजाद्रव्यैर्जिनं प्रपूज्योत्तमांगेनदेवेन्द्रा इन्द्राणीदेवादिभिः सहोच्चैः प्रणमन्ति। पुनः शची नानासुगन्धद्रव्यदिव्यांशुक शाश्वत मणिनेपथ्यैस्तीर्थेशस्य महत्मण्डनं करोति, तदा सौधर्मेन्द्रो जगद्गुरोर्महारूप सम्पदोवीक्ष्य तृप्तिमप्राप्य पुनर्वीक्षितुं सहस्रनयनानि विदधाति। ततः परमानन्देन परमेश्वरं स्तुतिशतैः स्तुत्वा तत्पुरं नीत्वा पित्रोः समर्प्य तत्रानन्दनाटकं कृत्वा परं पुण्यमुपार्ज्य चतुर्णिकाय देवेशाः स्वस्वस्थानं गच्छन्ति।

अर्थ—प्रभु के जन्म नगर में आकर इन्द्राणी प्रसूतिगृह में प्रवेश करके माता के समीप जाकर सर्वप्रथम बाल तीर्थंकर को प्रणाम करती है और उसी समय माता के समीप मायामयी बालक रखकर भगवान् को उठाकर तथा गूढ़वृत्ति से लाकर सौधर्म इन्द्र के हाथों में दे देती है। वह इन्द्र भी उन तीर्थंकर

१. चन्दनाद्यैरलंकृतै अ. ज.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रभु को प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करके एवं स्तुति करके महामहोत्सव के साथ मेरुपर्वत पर लाकर और मेरु की तीन प्रदक्षिणा देकर पाण्डुक शिला पर स्थित मध्य के सिंहासन पर प्रभु को विराजमान कर देता है। इसके बाद क्षीरसागर के क्षीर सदृश जल से भरे हुए आठ योजन (६४ मील) गहरे, एक योजन (८ मील) मुख विस्तार वाले, मोतियों की माला, कमल एवं चन्दन आदि से अलंकृत, अत्यन्त शोभायमान स्वर्ण के एक हजार आठ कलशों के द्वारा, गीत, नृत्य एवं भ्रूउपक्षेपण [भ्रू उत्क्षेपण] आदि सैकड़ों महा उत्सवों के साथ, उत्कृष्ट भक्ति एवं परम विभूति से सभी इन्द्र एकत्रित होकर जिनेन्द्र भगवान् को स्नान कराते हैं। भगवान् के ऊपर गिरने वाली वह महान् जल की धारा यदि कहीं उस पर्वत के ऊपर गिर जाये तो उस पर्वत के उसी क्षण सौ खण्ड हो जायें किन्तु अपरिमित महावीर्य को धारण करने वाले बाल जिनेन्द्र उन धाराओं के पतन को जलबिन्दु के समान मानते हैं। इस प्रकार शब्द करते हुए सैकड़ों वादित्रों और जय-जय आदि शब्दों के द्वारा शुद्ध जल का अभिषेक समाप्त करके अन्त में इन्द्र सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित, सुगन्धित जल से भरे हुए घड़ों के द्वारा सुगन्धित जल से अभिषेक करता है। पश्चात् उस गन्धोदक की अभिवन्दना करके महापूजा के लिये स्वर्ग से लाये हुए दिव्य गन्ध आदि द्रव्यों के द्वारा बाल जिनेन्द्र की पूजा करके इन्द्र अपनी इन्द्राणी एवं अन्य देवों के साथ उत्साहपूर्वक प्रणाम करते हैं। इसके बाद शची अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से, दिव्य वस्त्रों से और मणियों के आभूषणों से तीर्थेश का महान शृंगार करती है। उस समय सौधर्म इन्द्र जगद्गुरु की महारूप स्वरूप सम्पदा को देखकर तृप्त नहीं होता और पुनः पुनः देखने के लिये एक हजार नेत्र बनाता है। ततः उत्कृष्ट आनन्द से युक्त होता हुआ भगवान् की सैकड़ों स्तुतियाँ करता है अर्थात् सहस्रों प्रकार से भगवान् की स्तुति करता है। इसके बाद नगर में लाकर पिता को सौंप देता है, पश्चात् पितृगृह के प्राङ्गण में आनन्द नाम का नाटक करके, तथा उत्कृष्ट पुण्य का उपार्जन करके इन्द्र एवं चतुर्निकाय के देव अपने-अपने स्थानों को वापिस चले जाते हैं।

अब भद्रशाल वन में स्थित जिनालयों के प्रमाण का वर्णन करते हैं–

अथ मेरोश्चतुर्दिक्षु भद्रशालवनस्थितान्।
वर्णयामि मुदोत्कृष्टांश्चतुरः श्रीजिनालयान्।
अद्रेः पूर्वदिशाभागे योजनैकशतायतः।
पञ्चाशद् विस्तृतस्तुङ्गः पञ्चसप्ततियोजनैः ॥७॥
क्रोशद्वयावगाहश्च विचित्रमणिचित्रितः।
अद्भुतः स्याज्जिनागारस्त्रैलोक्यतिलकाह्वयः ॥८॥

अर्थ–सुमेरुपर्वत की चारों दिशाओं में भद्रशाल वन है जिसमें उत्कृष्ट चार जिनालय हैं, अब मैं (आचार्य) उन जिनालयों का प्रसन्नतापूर्वक वर्णन करता हूँ ॥६॥

सुदर्शन मेरु की पूर्व दिशा (भद्रशाल वन) में नाना प्रकार की मणियों से रचित त्रैलोक्यतिलक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नाम का एक अद्भुत जिनालय है, जो सौ योजन लम्बा, पचास योजन चौड़ा, पचहत्तर योजन ऊँचा और अर्ध योजन अवगाह (नींव) वाला है ॥७-८॥

त्रैलोक्यतिलक जिनालय के दरवाजों का वर्णन–

अस्य पूर्वप्रदेशेऽस्ति चोत्तरे दक्षिणे महत्।
एकैकमूर्जितं द्वारं रत्नहेममयं परम्॥९॥
राजते नितरां द्वारं तयोः पूर्वस्थमादिमम्।
अष्टयोजनविस्तीर्णं तुङ्गं षोडशयोजनैः ॥१०॥
दक्षिणोत्तरदिग्भागस्थे द्वे द्वारे परे शुभे।
भातोऽष्टयोजनोत्तुङ्गे चतुर्योजन विस्तरे ॥११॥

अर्थ–इस त्रैलोक्य तिलक जिनभवन के पूर्व, उत्तर और दक्षिण में रत्न एवं स्वर्णमय एक एक उत्कृष्ट द्वार हैं। उत्तर-दक्षिण दोनों द्वारों के मध्य पूर्व दिशा में स्थित प्रथम द्वार अत्यन्त शोभायमान है, जिसकी ऊँचाई सोलह योजन और चौड़ाई आठ योजन प्रमाण है। जिनालय की दक्षिणोत्तर दिशा में जो एक-एक द्वार सुशोभित हैं, उनकी ऊँचाई आठ योजन और चौड़ाई चार योजन प्रमाण है ॥९-११॥

अब जिनालय के अभ्यन्तर एवं बाह्य भागों में स्थित मालाओं, धूपघटों एवं स्वर्ण घटों का प्रमाण आदि कहते हैं–

भवनस्यास्य चाभ्यन्तरे पूर्वे विस्फुरन्त्यलम्।
विचित्रामणिमालाश्चाष्टसहस्राणिलम्बिताः ॥१२॥
तासामन्तरभागेषु चतुर्विंशतिसम्मिताः।
सहस्राणां विराजन्ते माला रत्नांशुसञ्चयैः ॥१३॥
चतुर्विंशसहस्राणि दिव्या धूपघटाः शुभाः।
सुगन्धि द्रव्य धूपैः स्युः सुगन्धीकृतदिग्मुखाः ॥१४॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राणि कलशा भानुतेजसः।
सुगन्धिदामराशीनां सन्मुखा मणिहेमजाः ॥१५॥
तद्बहिर्भागदेशेषु मणिमालाः प्रलम्बिताः।
चत्वारि च सहस्राणि सन्ति दीप्ता मनोहराः ॥१६॥
द्वादशैवसहस्राणि स्युः काञ्चनस्त्रजोऽमलाः।
तस्मिन्नेव बहिर्भागे दिव्याधूपघटाः स्मृताः ॥१७॥
द्विषट्सहस्रसंख्याताः सहस्रषोडशप्रमाः।
दीप्ताः[1] काञ्चनकुम्भाश्च स्फुरन्तिस्वाङ्गरश्मिभिः ॥१८॥

अर्थ–उस जिनालय के अभ्यन्तर भाग में स्थित पूर्व दिशा के द्वार पर अत्यन्त देदीप्यमान नाना प्रकार की मणियों की आठ हजार मालाएँ लटकतीं हैं, और इनके मध्य में रत्नकिरणों से उपचित

१. दीप्राः अ, ज. न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चौबीस हजार मालाएँ विराजमान होती हैं। सुगन्धित द्रव्य एवं धूप के द्वारा दिशाओं को सुगंधित करने वाले चौबीस हजार धूपघट स्थित हैं। सुगन्धित माला समूहों के अभिमुख, सूर्य सदृश तेज पुञ्ज से संयुक्त बत्तीस हजार मणि एवं स्वर्णमय कलश स्थित हैं। मुख्यद्वार के बाह्य भाग में जो द्वार हैं, उन पर अति मनोहर और दीप्तवान चार हजार मणिमय मालाएँ और बारह हजार स्वर्णमय मालाएँ हैं। इनके भी बाह्य भाग में बारह हजार प्रमाण दिव्य धूपघट और स्फुरायमान होने वाली अपनी किरणों से दीप्त सोलह हजार स्वर्ण कलश स्थित हैं ॥१२-१८॥

अब पीठ, सोपान एवं पीठ वेदियों के व्यास आदि का और जिन प्रतिमाओं का वर्णन चौदह श्लोकों द्वारा करते हैं—

जिनागारेऽत्र सन्त्येवदीर्घाणिषोडशप्रमै:।
साधिकैर्योजनैर्विस्तृतान्यष्टाधिकयोजनै: ॥१९॥
द्वियोजनोच्छ्रितानि श्रीमत्पीठानिशुभानि च।
वज्रेन्द्रनीलरत्नादिमयानि परमान्यपि ॥२०॥
मणिसोपान पंक्ति: स्यात्तत्रदीर्घा च योजनै:।
द्व्यष्टभिरष्टभिर्व्यासाषड्योजनोन्नता शुभा ॥२१॥
क्रोशद्वयावगाहास्यादष्टोत्तर शतान्यपि।
सोपानानि भवन्त्येवप्रोन्नतानि चतु:शतै: ॥२२॥
किञ्चिदूनैश्चचापै: पञ्चचत्वारिंशदग्रगै:।
पीठपर्यन्तभागेऽस्ति दिव्या:सद्रत्नवेदिका: ॥२३॥
क्रोशद्वयोन्नता: पञ्चशतचापप्रविस्तृता:।
तेषु पीठेषु दिव्याङ्गा अष्टोत्तरशतप्रमा: ॥२४॥
स्फुरन्नानामणिस्वर्णमय्योऽविनश्वरा: शुभा:।
धनु: पंचशतोतुङ्गमनोज्ञावीक्षणप्रिया: ॥२५॥
निराभरणदीप्ताश्च[1] निरम्बरमनोहरा:।
कोट्येकभानुतेजोऽधिक सुतेजो विराजिता: ॥२६॥
लक्षणैर्व्यंजनैर्युक्ता: पल्यङ्कासनसंस्थिता:।
पूर्णसोममुखा: सौम्या: समस्तविक्रियातिगा: ॥२७॥
दिव्यभामण्डलान्तर्बाह्योच्छेदिततमश्चया: ।
प्रफुल्लपद्मसद्धहस्ता (सादृश्या) आरक्तचरणाम्बुजा:॥२८॥
अञ्जनाभमहाकेशा अताम्रनयनोत्पला:।
विद्रुमाभाधरा: छत्रत्रयशोभितमस्तका: ॥२९॥
दिव्यसिंहासनारूढा भामण्डलात्तविग्रहा:।
महार्चनार्चितायक्षैर्व्रीज्यमाना: प्रकीर्णकै: ॥३०॥

१. दीप्राश्च अ, ज. न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निरौपम्या जगन्नेत्रप्रियाः पुण्याकरा इव।
हसन्त्यो वा वदन्त्यो वा मुखचन्द्रेण संततम् ॥३१॥
त्रिजगन्नृसुराराध्यावन्द्याः स्तुत्यामया सदा।
राजन्ते श्रीजिनेन्द्राणां प्रतिमादिव्य मूर्तयः ॥३२॥

अर्थ—त्रैलोक्यतिलक जिनभवन में वज्र एवं इन्द्रनीलमणिमय एक पीठ है, जो कुछ अधिक सोलह योजन लम्बा, आठ योजन चौड़ा, दो योजन ऊँचा, अत्यन्त शुभ और परमोत्कृष्ट है। वहाँ पर सोलह योजन लम्बी, आठ योजन चौड़ी, छह योजन ऊँची और अर्ध योजन नींव से युक्त मणिमय सोपान पंक्ति है, तथा उस सोपान पंक्ति में एक सौ आठ सोपान हैं, जिनमें से प्रत्येक सोपान कुछ कम चार सौ पैंतालीस धनुष ऊँचे हैं। पीठ पर दिव्य और उत्तम रत्न वेदियाँ हैं, जो अर्ध धनुष ऊँची और पाँच सौ धनुष चौड़ी हैं। उन वेदिकाओं पर श्री जिनेन्द्र भगवान् की ऐसी एक सौ आठ प्रतिमाएँ सुशोभित हैं, जो अत्यन्त विभावान् मणि एवं स्वर्णमय हैं। अविनश्वर अर्थात् अकृत्रिम हैं। अत्यन्त शुभ, मनोज्ञ, देखने में अति प्रिय और दिव्य अंग वालीं हैं। पाँच सौ धनुष ऊँची हैं, वस्त्राभूषणों से रहित अर्थात् दिगम्बर मुद्रा युक्त हैं और करोड़ों सूर्यों के तेज से भी अधिक कान्तिवान हैं ॥१९-२६॥

वे जिन प्रतिमाएँ (१०८) लक्षणों एवं (९००) व्यञ्जनों से युक्त तथा पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख वालीं हैं। उनकी शरीराकृति अत्यन्त सौम्य और सर्व विकारों से रहित है, वे सभी पद्मासन से स्थित हैं। उनका भामण्डल अन्तर-बाह्य अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाला है। उनके करकमल एवं चरणकमल खिले हुए कमल सदृश अर्थात् कुछ कुछ लाल हैं, केश अञ्जन सदृश काले, नेत्र कमल लालिमा से रहित, होंठ विद्रुम की आभा सदृश लाल और मस्तक तीन छत्रों से सुशोभित है। दिव्य सिंहासन पर विराजमान उनका शरीर अत्यन्त कान्तिवान् है। वे महापूजा से पूज्य, यक्षों द्वारा वीज्यमान चामरों से युक्त, उपमा रहित, तीन लोक के नेत्रों को अत्यन्त प्रिय और पुण्य की खान के समान हैं। वे जिन प्रतिमाएँ शोभायमान मुख चन्द्र से मानो निरन्तर हँस रहीं हैं और बोल रहीं हैं तथा तीन लोक के मनुष्यों एवं देवों से पूज्य और मेरे द्वारा सदा वन्दनीय एवं स्तुत्य हैं ॥२७-३२॥

धर्मोपकरणों (मङ्गल द्रव्यों) का वर्णन—

अकृत्रिमा महाभूत्या धर्मोपकरणैः परैः।
प्रत्येकं भिन्नभिन्नैर्मुदाष्टोत्तरशतप्रमैः ॥३३॥
अशोकवृक्षशोभाढ्यादेवदुन्दुभिभूषिताः ।
सुरैः कृतमहापुष्पवृष्ट्याच्छादितमूर्तयः ॥३४॥

अर्थ—अकृत्रिम और महाविभूति स्वरूप भिन्न-भिन्न मंगल द्रव्यों (झारी, कलश, दर्पण, पंखा, ध्वजा, चामर, छत्र और ठोनों) की संख्या एक सौ आठ-एक सौ आठ है। वे प्रतिमाएँ छत्र, चमर, सिंहासन, भामण्डल, अशोक वृक्ष की शोभा से युक्त, देव दुन्दुभि से विभूषित और देवों द्वारा की हुई

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

महापुष्पवृष्टि से आच्छादित (व्याप्त) होती हैं ॥३३-३४॥

गर्भगृह का वर्णन—

शुद्धस्फटिकभित्त्याढ्यं वैडूर्यस्तम्भशोभितम्।
नानारत्नप्रभाकीर्णं दिव्यामोदात्तदिग्मुखम् ॥३५॥
जिनेन्द्रप्रतिमानां तद्देवच्छन्दान्यनामधृत्।
गर्भगृहं जगत्सारं राजते नितरांश्रिया ॥३६॥

अर्थ—शुद्ध-निर्विकार स्फटिक मणिमय दीवालों से युक्त, वैडूर्यमणिमय खम्भों से सुशोभित, अनेक प्रकार के रत्नों की प्रभा से व्याप्त, दिव्य आमोद से ग्रहण-सुगन्धित किया है दिशाओं को जिसने, ऐसा जगत् के सार स्वरूप जिनेन्द्र प्रतिमाओं सम्बन्धी देवच्छन्द नाम का गर्भगृह अत्यन्त शोभा से सुशोभित होता है ॥३५-३६॥

ध्वजाओं, मुखमण्डपों और प्राकारों का निर्धारण करते हैं—

सद्रत्नवेदिकाग्रेषु सुपीठ शिखरेषु च।
मणिस्तम्भेषु राजन्ते महान्तोऽत्र ध्वजोत्कराः ॥३७॥
सिंहहस्तिध्वजा हंसवृषभाब्ज शिखिध्वजा।
मकरध्वजचक्रातपत्राख्यागरुडध्वजाः ॥३८॥
एते महाध्वजा रम्या दशभेद युताः शुभाः।
प्रत्येकं च पृथग्रूपा अष्टोत्तरशतप्रमाः ॥३९॥
एकैक सद्ध्वजानां सम्बन्धिनः क्षुल्लकध्वजाः।
अष्टाग्रशतसंख्याताः सन्ति मुक्तास्त्रगङ्किताः ॥४०॥
एते सर्वे ध्वजव्राता गोपुरेभ्यः समुन्नताः।
मुखमण्डपसंज्ञानां त्रयाणां स्युर्बहिर्दिशि ॥४१॥
सुवर्णमणिसद्रूप्यमयाश्च योजनोच्छ्रिताः।
स्युः प्राकारास्त्रयस्तत्र महान्तो रचनाङ्किताः ॥४२॥
प्राकारं प्रति चत्वारि सद्रत्नगोपुराण्यपि।
सन्त्युत्तुङ्गानि दीप्तानि योजनैः षोडशप्रमैः ॥४३॥
शतैकयोजनायामाः पञ्चाशद्विस्तरान्विताः।
क्रोशद्वयावगाहाः प्रोन्नताः षोडशयोजनैः ॥४४॥
संतप्तहेमदीप्ताङ्गा विचित्ररत्नचित्रिताः।
नित्योत्सवयुतारम्या विज्ञेया मुखमण्डपाः ॥४५॥

अर्थ—श्रेष्ठ रत्न वेदिकाओं के अग्रभाग पर, पीठ के शिखर पर और मणिमय खम्भों के ऊपर महान ध्वजाओं के समूह शोभायमान होते हैं। वे अत्यन्त रमणीय महा ध्वजा समूह सिंह, हाथी, हंस,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वृषभ, कमल, मयूर, मकरध्वज, चक्र, आतपत्र और गरुड़ के भेद से दश प्रकार के हैं। इन प्रत्येक भेदों की भिन्न-भिन्न एक सौ आठ-एक सौ आठ (१०८×१०=१०८०) ध्वजाएँ होतीं हैं और उन १०८ ध्वजाओं के भी पृथक्-पृथक् एक सौ आठ, एक सौ आठ छोटी ध्वजाएँ (१०८०×१०८=११६६४०) मुक्ता की मालाओं से सुशोभित होती हैं ॥३७-४०॥

ये समस्त ध्वजाओं के समूह गोपुरों से ऊँचे हैं। तीनों मुखमण्डपों के बाहर तीन कोट हैं। ये तीनों कोट, स्वर्ण, मणि एवं रजतमय हैं, एक योजन ऊँचे तथा महान रचना से सहित हैं। प्रत्येक कोट में उत्तम रत्नों से भास्वर एवं उत्तुङ्ग चार-चार गोपुरद्वार (प्रतोली) हैं, जो सोलह योजन ऊँचे हैं ॥४१-४३॥

तपाये हुए स्वर्ण के सदृश देदीप्यमान, नानाप्रकार के रत्नों से खचित, सदैव होने वाले महा महोत्सवों से युक्त और अत्यन्त रमणीय मुखमण्डप भी सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े, सोलह योजन ऊँचे और अर्ध योजन नींव वाले जानना चाहिए ॥४४-४५॥

अब प्रेक्षागृह एवं सभागृहों का वर्णन करते हैं-

तदग्रे योजनानां च शतैकायामविस्तराः।
भवन्त्यर्धावगाहाः प्रोतुङ्गाः षोडशयोजनैः ॥४६॥
नानारत्नमया रम्याः प्रेक्षागृहा मनोहराः।
तेषां च पुरतः सन्तितुङ्गाः षोडशयोजनैः ॥४७॥
योजनानां चतुःषष्टिदीर्घव्यासान्विताः पराः।
हेमरत्नमयास्तेजोजालावृताः सभागृहाः ॥४८॥
तेषां सभागृहाणां कांचन पीठानिसन्ति च।
अशीतियोजनायामविस्तृतानि शुभान्यपि ॥४९॥
द्वियोजनोच्छ्रितान्युच्चैः पद्मवेदीयुतानि वै।
मनोहराणि रम्याणि प्रदीप्तैर्मणि तोरणैः ॥५०॥

अर्थ-उन मुखमण्डपों के आगे सौ योजन लम्बे, सौ योजन चौड़े, सोलह योजन ऊँचे, अर्ध योजन नींव से युक्त अनेक रत्नों से व्याप्त, अत्यन्त रमणीक और मन को हरण करने वाले प्रेक्षागृह हैं। उन प्रेक्षागृहों के आगे सोलह योजन ऊँचे, चौंसठ योजन लम्बे, चौंसठ योजन चौड़े, दीप्ति समूह से आवृत्त स्वर्ण एवं रत्नमय उत्तम सभागृह हैं। उन सभागृहों के पीठ स्वर्णमय हैं तथा अस्सी योजन लम्बे, अस्सी योजन चौड़े और अत्यन्त सुन्दर हैं। वे पीठ देदीप्यमान मणियों के दो योजन ऊँचे तोरणों से संयुक्त, अत्यन्त रमणीक और मनोहर पद्मवेदी से रम्य हैं ॥४६-५०॥

अब नवस्तूप और मानस्तम्भ का वर्णन करते हैं-

तेषां सभालयानां पुरतः स्तूपा नवोर्जिताः।
योजनानां चतुःषष्ट्यायामव्यासोन्नताः शुभाः ॥५१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY